कृष्णावतार : १

बंसी की धुन

कृष्णावतार : १

बंसी की धुन

लेखक

कन्हैयालाल मुंशी

अनुवादक

ओंकारनाथ शर्मा

क्रम

स्तवन

नमोऽस्तुते व्यास विशालबुद्धे फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र।
येन त्वया भारततैलपूर्णः प्रज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीपः ॥

प्रपन्नपारिजाताय तोत्रवेत्रैकपाणये।
ज्ञानमुद्राय कृष्णाय गीतामृतदुहे नमः ॥

वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम्।
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वंदे जगद्गुरुम् ॥

मूकं करोति वाचालं पंगुं लङ्घयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वंदे परमानन्दमाधवम् ॥

हे विशालबुद्धि व्यास, मै आपकी वन्दना करता हूँ। विशाल दृष्टि के स्वामी, आपने भारत रूपी तेल से जगत् मे ज्ञान का प्रदीप प्रज्वलित किया है।

हे भगवान् कृष्ण, शरणागतो के कल्पवृक्ष, पापियों के नियामक, सर्वज्ञान के मूलरूप गीतामृत को दोहनेवाले प्रभु, मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

हे वासुदेव, कंस एवं चाणूर के मर्दन करनेवाले, देवकी के परमानन्द-स्वरूप, जगद्गुरु श्रीकृष्ण, मै आपकी वन्दना करता हूँ।

जिसकी कृपा से गूँगे वाचाल हो जाते है, पगु पर्वत लाँघ जाते है, उसी परमानन्द-स्वरूप माधव को मेरा सविनय नमस्कार है।

प्राक्कथन

प्रिय पाठक,

महाकाव्यों और पुराणों की सामग्री पर आधारित श्रीकृष्ण-चरित्र पर एक सुन्दर कथा लिखने की मैं कई दिनों से सोच रहा था। 'भगवान् परशुराम' नामक उपन्यास लिखने के बाद भगवान् श्रीकृष्ण की जीवन-गाथा का गान मेरे लिए उपयुक्त ही होगा, ऐसा मेरा ख़याल था। यह विषय तो मेरे लिए और भी आकर्षक है, क्योंकि मैं श्रीकृष्ण को अवतार मानता हूँ और गीता के गायक को जगद्गुरु।

इस हृदयहारी कथा को लिखते समय मेरा अनुमान था कि मुझे सभी सामग्री 'श्रीमद्भागवत' से ही मिल जाएगी। किन्तु 'महाभारत', 'हरि-वंश', 'विष्णुपुराण', 'भागवत' और उनके बाद के 'पद्मपुराण', 'ब्रह्मवैवर्त पुराण', 'गीतगोविन्द' तथा 'गर्गसंहिता' का जब मैंने पुनः अवलोकन किया, तो मुझे मालूम हुआ कि इन ग्रन्थों में भगवान् के जीवन से सम्बन्धित घटनाएँ एक-सी नहीं मिलतीं, बल्कि कहीं-कहीं तो एक-दूसरे से विरोधी वर्णन भी मिलता है; विशेषकर प्रथम दो ग्रन्थों में, जो अन्य सभी ग्रन्थों के आधार हैं, बिलकुल ही विपरीत परम्पराओं का समावेश है। बाद के सभी ग्रन्थों में अपने-अपने रचनाकाल में लोक-मानस पर श्रीकृष्ण के प्रभाव के साथ-साथ उस काल की आध्यात्मिक आवश्यकताओं का भी वर्णन मिलता है।

इस विविध बिखरी हुई सामग्री में से एक सुगठित कथा का सूत्र

पाने, घटनाओं के बीच-बीच में जो रिक्तता आ गई है उसे पूरा करने और आधुनिक रुचि के अनुसार उनमें तारतम्य बिठाने की मैं महीनों कोशिश करता रहा। मुझे लगा कि इससे जिस रचना का निर्माण होगा, उसे 'श्रीमद्‌भागवत' का भाषान्तर तो नहीं ही कहा जा सकेगा। मेरा विनम्र प्रयास तो श्रीकृष्ण-गाथा को एक ऐसे रूप में सुगठित करना होगा जिससे कि श्रीकृष्ण के जीवन-काल में ही उनके महान् समकालीन वेदव्यास ने उन्हें जो साक्षात् प्रभु माना है, उसका औचित्य मेरे इस आख्यान से सिद्ध हो सके।

इसलिए यदि मेरे पाठक मुझसे 'श्रीमद्‌भागवत' के भाषान्तर की आशा करते हों, तो मैं उनसे क्षमा चाहता हूँ। मैं तो केवल श्रीकृष्ण के महान् व्यक्तित्व के प्रमुख लक्षणों को समझने की कोशिश कर रहा हूँ और यदि उसकी एक थोड़ी-सी झलक भी दिखाने में समर्थ हुआ तो अपने को भाग्यशाली मानूँगा। वैसे, अनन्त को कौन शब्दों में सीमाबद्ध कर सकता है ?

आपका,

कन्हैयालाल मुन्शी

पूर्व भूमिका

श्री भगवान् नारायण अनन्तकालरूपी शेषनाग पर शयन कर रहे थे। पृथ्वी माता, जो हम सबकी जननी हैं, अश्रुपूर्ण नयनों से उनकी शरण में आईं और हाथ जोड़कर कातर कण्ठ से कहने लगीं, 'सर्वशक्तिमान प्रभु, आर्तों के परम आश्रय, अपने दुःख का भार और अधिक वहन करने में मै अब असमर्थ हूँ।

'प्रभो! आपने तो मुझे आज्ञा दी थी कि मैं ऐसे पुत्र-पुत्रियों का प्रसव करूँ जो आनन्द का अनुभव करते हुए आपकी भक्ति में लीन हों; परन्तु प्रभु! मेरी कोख से स्त्री-पुरुषों की एक ऐसी नई पीढ़ी ने जन्म लिया है जिसके पापाचार की सीमा नहीं। वह स्वयं आपसे भी विमुख रहना चाहती है। शासक अति स्वार्थी बन गए हैं। उनके विचार भ्रष्ट हो गए हैं। सत्ता के मद में वे मेरी सन्तानों को कष्ट देते हैं, उन पर अत्याचार करते है और धर्म की अवहेलना करते हैं। पति-पत्नी के बीच वे सम्बन्ध-विच्छेद कराते है, सन्तान को माता-पिता के प्रतिकूल बनाते है और जहाँ प्रेम तथा शान्ति विराजमान थी, वहाँ वैमनस्य व द्वेष के बीज बोते है। ये पापाचारी शासनकर्ता जबरदस्ती अथवा छल-कपट से लोगों को गुमराह करते है और अपनी समृद्धि व शक्ति का दुरुपयोग कर लोगों को सत्ता की पूजा करना सिखाते हैं। नृत्य, मदिरा तथा व्यभिचार मे आसक्त बनाकर वे मेरी सन्तानों की अधोगति करते है, और उन्हें भगवान् की अवहेलना करना सिखाते हैं।

'ये शासक अपनी महत्ता के मिथ्या गर्व में मस्त रहते हैं, घरों में फूट डालते हैं, देवमन्दिरों को भ्रष्ट करते हैं, सन्तों की विडम्बना करते है और उन्हें नाना प्रकार के कष्ट देकर नष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। प्रभो! मेरा तो इस कष्ट से बहुत बुरा हाल है।

'कृपानिधि, अपने वचन का निर्वाह कर मेरा उद्धार कीजिये। मैं आपकी शरणागत हूँ।'

पृथ्वी माता को इस प्रकार दुःखी देखकर दीनबन्धु, करुणावत्सल श्री भगवान् ने स्नेहस्निग्ध वाणी में कहा, 'पुत्री, तुमने जो कहा वह सब मुझे ज्ञात है। तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करो। निर्भय होओ! मैंने जो वचन दिया है उसका निर्वाह मै सदा करूँगा। जब-जब भी धर्म की ग्लानि होती है, तब अधर्म का नाश करने के लिए मैं पृथ्वी पर अवतार लेता हूँ। मेरे भक्तों का विनाश कभी नहीं हो सकता। न मे भक्तः प्रणश्यति।'

पृथ्वी माता ने प्रभु से विनती की, 'प्रभो! मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि आप धरती पर शीघ्र पधारकर मेरी सन्तानों की रक्षा करें।'

और, भगवान् ने उसे अभयवचन दिया, 'मै अवश्य आऊँगा।'

१

वसुदेव और देवकी

द्वापर युग के मध्य में यादवो ने यमुना के फलद्रुप तट पर आकर अपनी बस्तियाँ बसाई । यह स्थान ब्रजभूमि के नाम से प्रसिद्ध था और अत्यन्त मनोहारी एव रमणीय था । शीतल छाया प्रदान करनेवाले सघन वृक्ष, सुन्दर पुष्पों से लदी लताएँ और दूर-दूर तक फैली हरीतिमा ! विशाल सुन्दर वनो मे यहाँ गोकुल विचरते थे । यादवो की वास्तविक सम्पत्ति यही गो-धन था । धनधान्य से भरपूर इस समृद्ध भूमि मे गोवर्धन पर्वत सुमेरु के समान सुशोभित था । यादव इसकी पूजा किया करते थे ।

कुक्कुर, अन्धक, वृष्णि, सात्वत, भोज, मधु, शूर आदि जातियों से यादव सघ बना था । उसे वृष्णिसघ भी कहा जाता था । शासन-व्यवस्था उसकी गणतन्त्रीय थी, फिर भी अन्धक इन सब कुलो मे सर्वाधिक शक्तिमान थे और अपने मुखिया को 'राजा' की पदवी से विभूषित करते थे ।

यादव संघ शक्तिशाली एव वीर्यवान था । उसे गर्व था कि सृष्टि की सारी प्रजाओं में वही सर्वश्रेष्ठ है और उसकी उत्पत्ति स्वयं ब्रह्मा से हुई है ।

ब्रह्मा के दो पुत्र थे—अत्रि तथा दक्ष । दक्ष को अदिति प्राप्त हुई, जिसके गर्भ से विवस्वत ने जन्म लिया । विवस्वत का पुत्र मनु के नाम से विख्यात हुआ । मनु की पुत्री इला ने सोम से विवाह किया । उसका

पुत्र पुरुरवा था, जिसने अपने यौवन-काल मे देवताओं की प्रिय अप्सरा उर्वशी से प्रेम किया।

पुरुरवा के दो पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्र का नाम आयुष था। आयुष के पाँच पुत्र हुए, जिनमे से नहुष अति बलवान था।

नहुष का पुत्र था ययाति, जो सबसे प्रभावशाली पृथ्वीपति हुआ। उसने देव और दानव दोनो को जय किया था। ययाति की प्रथम पत्नी देवयानी थी। वह भृगु-कुलोत्पन्न शुक्राचार्य की पुत्री थी। इस महान् तपस्वी ने देवताओ का मद भी चूर किया था। देवयानी के दो पुत्र थे—यदु तथा तुर्वसु।

यदु के पुत्र ही यादव कहलाये। यदु के पुत्र का नाम क्रोष्टु था, क्रोष्टु के पुत्र का नाम देवमिढुष और उसके पुत्र का नाम शूर था।

त्रेता युग में मधु नामक राक्षस व्रजभूमि मे राज्य करता था। जब उसका प्रभाव अधिक बढ गया तब इस भूमि को मधुवन कहा जाने लगा। मधु ने जगलों को साफ कराया और यमुना के किनारे एक नगर की स्थापना की। इसी का नाम मथुरा पड़ा।

मधु के पुत्रों ने जब अतिशय अत्याचार करना शुरू कर दिया और लोग उनके नाम से थर्राने लगे, तब भगवान् के अवतार श्री रामचन्द्र के लघु भ्राता शत्रुघ्न ने क्रोधित हो मथुरा पर चढाई की और पापाचारी मधुपुत्रो का विनाश किया। इसके बाद दूर-दूर तक फैले मधुवन पर इक्ष्वाकु वंश के राजाओं का राज्य हुआ।

बाद में, यादवों में अति प्रभावशाली शूर हुआ। उसने मथुरा पर आक्रमण कर शत्रुघ्न के वशजो को निकाल दिया। तब यादवो ने यमुना के तट-प्रदेश में अपनी स्थापना की और वे वहाँ काफी समृद्धिशील हुए। उन्होने गोधन को ही अपनी विपुल सम्पत्ति बनाया। तब से व्रजभूमि शूरसेन कही जाने लगी।

वसुदेव राजा शूर के वंशज थे। उनके जन्म के समय ग्रहों का योग अच्छा था। उस समय स्वर्ग में दुदुभि बजी, इसीलिए उनका नाम आनक-दुंदुभि पड़ा। देवताओं ने उन पर पुष्पवृष्टि भी की। वे चन्द्रमा के समान

स्वरूपवाले थे और उनकी कीर्ति अक्षय व अनन्त काल तक स्थिर रहने वाली थी।

वसुदेव के पाँच बहनें थीं। उनमें से एक—पृथा को कुन्तीभोज राजा ने दत्तक लिया। उसका विवाह हस्तिनापुर के राजा पाण्डु से हुआ और वह पाँच पाण्डवों में से तीन की माता बनी।

वसुदेव की दूसरी बहन श्रुतश्रवा ने चेदिराज का वरण किया और उसकी कोख से शिशुपाल का जन्म हुआ।

वसुदेव वीर शूरवंशियों के अग्रणी थे और अनेक गोकुलों के स्वामी थे। किन्तु अन्धक वंश उनसे भी अधिक प्रतापी था और उसके अग्रणी राजा उग्रसेन उसके नायक थे। उग्रसेन के पाँच पुत्र और नौ पुत्रियाँ थीं। सबसे बड़े पुत्र का नाम कंस था।

राजा उग्रसेन के भाई देवक के चार पुत्र और सात पुत्रियाँ थीं, जिनमें से देवकी परम रूपवान थी।

शूरों और अन्धकों के बीच प्रायः झगड़े हुआ करते। उनके ग्वालों के बीच रोज मारपीट होती। आखिर, दोनों कुलों के मुखियाओं ने निश्चय किया कि इन झगड़ों का अन्त करने के लिए शूरश्रेष्ठ वसुदेव का देवकी से विवाह कर दिया जाए। राजा उग्रसेन ने बड़ी धूमधाम से यह ब्याह रचाया।

वसुदेव और देवकी ने वेदी के आसपास सप्तपदी की विधि सम्पन्न की। चन्द्रमुखी देवकी का जब पाणिग्रहण हुआ तब इस शुभ प्रसंग पर शंख और दुन्दुभि के जयघोष हुए।

यादवों के हर्ष का पार नहीं था। ऐसे सुयोग्य दम्पति का संयोग उन्हें सौभाग्य से ही देखने को मिला था।

२

कंस का प्रकोप

भारत मे उस समय सबसे दुष्ट और अधम राजपुत्र कंस ही था। वह उद्धत, अभिमानी, कपटी, राग-द्वेष से पूर्ण और हठी था। अपने पिता राजा उग्रसेन की भी वह परवाह न करता। देव अथवा मनुष्य, किसी का भी नियन्त्रण उसे स्वीकार नही था। विद्वानो की वह अवहेलना करता, साधु-सन्तो की हँसी उड़ाता, और प्रभुभक्तों से द्वेष रखता। शक्तिशाली राजाओ का समर्थन पाकर वह अति उद्दण्ड हो चला था; शत्रु और मित्र दोनो ही उससे त्रस्त थे।

जिस समय देवकी का पाणिग्रहण वसुदेव के साथ हो रहा था, तभी नारद मुनि कंस के पास पहुँचे। यथोचित सत्कार के बाद कस ने उनसे आशीर्वाद की कामना की। मुनि ने पाप के मार्ग पर न चलने की सलाह देते हुए उससे कहा कि धर्म की अवहेलना कर आज तक संसार मे कोई विजयी नही बन सका।

कस उद्दण्ड तो था ही। एक विद्रूप हँसी हँसकर उसने कहा, 'मुनि-वर, ऐसी तो कोई शक्ति मुझे दिखाई नही पड़ती जो मेरे मार्ग मे बाधक बन सके। मुझे भय किसका? ईश्वर! वह तो निर्बल मन के मनुष्यो को डराने के लिए खड़ा किया गया भूत है। किन्तु मै निर्बल नही, समर्थ हूँ। मेरी इच्छा ही मेरे लिए सब-कुछ है; वही शासन है, वही नियम है। इसके अतिरिक्त और कोई बन्धन मुझे स्वीकार नही। देखता हूँ, मेरी इच्छा के विरुद्ध जाने का साहस किसमे है!'

नारदमुनि किंचित् मुस्करा पड़े। मन्द-मन्द मुस्कराकर उन्होने कहा, 'वत्स, धर्म अविचल है; उसका उल्लघन कोई नही कर सकता। तुम्हारे लिए भी वह सम्भव नही होगा। इस सृष्टि का आधार ही धर्म है और जब-जब धर्म की ग्लानि होती है, ईश्वर स्वयं उसकी पुन स्थापना के लिए धरती पर अवतार ग्रहण करते हैं।'

कंस ने इसका उत्तर एक अट्टहास के साथ देते हुए कहा, 'मुनिवर, देव अथवा मनुष्य, मेरी राह मे रोड़े अटकाने की किसी की क्या मजाल है ? मै सर्वजयी हूँ ।'

इस उद्धत वाणी को सुन नारदमुनि ने कहा, 'कस, यदि तुझे अपनी शक्ति का इतना अधिक गर्व है, तो तेरा नाश अवश्यम्भावी है। यही सनातन नियम है। युग-युग से दुष्ट मनुष्यो का उत्थान और पतन मैने स्वय अपनी आँखो से इसी प्रकार होते देखा है।'

'मेरी ओर अँगुली उठाने की भी हिम्मत किसी की है ?' कंस ने तिरस्कारपूर्वक कहा ।

नारदमुनि क्षण-भर तो ध्यानमग्न रहे, फिर बोले, 'कुमार, तुझे तेरे बल का मिथ्याभिमान है, किन्तु मै जानता हूँ कि तेरे विनाश की व्यवस्था ईश्वर ने पहले से ही कर रखी है। तेरी चचेरी बहन देवकी का आठवाँ पुत्र ही तेरा सहारक होगा ।'

इतना कहकर भक्तराज नारद कंस के उत्तर की अपेक्षा किये बिना ही अन्तर्धान हो गए ।

कस के क्रोध की सीमा नही थी। उसके पिता उग्रसेन तो केवल नाममात्र के राजा थे, असली सत्ता तो उसी के हाथ मे थी। कस से केवल उसकी अपनी प्रजा ही नही, बल्कि आसपास के नरेश तथा उनकी प्रजाएँ भी भयभीत थी। ऐसा कोई नही था जो उसका विरोध कर सके। इस भविष्यवाणी को सुनकर वह आगबबूला हो गया और सीधा वही पहुँचा जहाँ वसुदेव-देवकी का व्याह रचा जा रहा था। नारदमुनि की वाणी किसी प्रकार सार्थक न हो, इसलिए वह वही, तत्काल देवकी की हत्या कर देना चाहता था। न रहेगा बॉस, न बजेगी बॉसुरी ! जब देवकी ही नही रहेगी तो फिर उसकी सन्तान कैसी ? कौन-सा आठवाँ पुत्र फिर उसका सहारक बनेगा ?

राजप्रासाद के द्वार पर लाल-लाल आँखें किये कस जब पहुँचा तो उस समय वर-वधू की सवारी की तैयारियाँ हो रही थीं। विवाह-मण्डप मे बड़े-बड़े प्रतिष्ठित एव सम्माननीय व्यक्ति उपस्थित थे। कस उन्हे उस समय साक्षात् यम ही दिखाई पड़ा। उसे इस प्रकार कुपित देखकर

सभी की ख़ुशी काफ़ूर हो गई, रग मे भग पड गया। ढोल, नगाड़े, शहनाई, शखध्वनि सभी बन्द हो गए। लोग भयविह्वल, विमूढ-से खड़े रह गए।

वसुदेव और देवकी जिस रथ पर बैठ थे, वहाँ पहुँचकर कस ने क्रोध से काँपते हुए हाथो से देवकी की चोटी पकडी और उसे रथ पर से नीचे खीच लिया। राजा उग्रसेन एव अन्य राजवशी स्वजन पास ही खडे, भयभीत हो, देखते रहे। क्षण-भर पहले सुख-सपनो मे खोई राजकुमारी देवकी नई-नवेली दुलहन लाज छोड़ भय से चीख पडी।

उग्रसेन अच्छी तरह जानते थे कि उनका पुत्र कस कितना हठी और स्वेच्छाचारी है। उसके इस दुष्कृत्य से उन्हे गहरा आघात लगा, लेकिन कंस के क्रोधी और तामसी स्वभाव से परिचित होने के कारण वह कुछ कह न सके, मात्र दिग्विमूढ-से खड़े देखते रह गए। तभी तरुण यादव कुमार वसुदेव रथ पर से कूदकर कस के पास जा पहुँचे और उन्होने उसका वह हाथ थाम लिया जिसमे तलवार पकड़े वह देवकी की हत्या करने को तत्पर हो रहा था।

आश्चर्यचकित हो उन्होने पूछा, 'यह क्या भोजकुलोत्पन्न, उदार चरित राजकुमार! आप चाहते क्या है? लग्नमण्डप से विदा हो रही, मोद-भरी नव-वधू, आपकी अपनी बहन का आप सहार करना चाहते है? लेकिन क्यो, किसलिए, किस अपराध के कारण?'

कस वसुदेव को बलपूर्वक दूर हटाते हुए गरज उठा, 'हट जाओ मेरे सामने से! मै कुछ नही सुनना चाहता!' उसकी आँखे क्रोध उगल रही थी।

राजा उग्रसेन के भाई, देवकी के पिता देवक ने तब लपककर कस का हाथ पकड़ लिया और कहा, 'वत्स, देवकी को छोड़ दो! उसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?'

कंस ने जोर से धरती पर पैर पछाड़कर कहा, 'कदापि नही! मै देवकी को कभी नही छोड़ सकता, उसे अभी समाप्त करता हूँ।'

वसुदेव युवक होते हुए भी गम्भीर थे। वह जानते थे कि कस जब क्रोधित होता है, तब किसी की नही सुनता। उसका प्रतिकार करना

निष्फल है। इसके अतिरिक्त कस की सत्ता को स्वीकार कर चलने मे ही उन्हें अपनी भलाई दीखती थी। इसीलिए हाथ जोडकर कस से उन्होने प्रार्थना की, 'भोजकुलोत्तम कुमार, कृपया मेरी बात तो सुनिये। ऐसा कौन-सा अपराध हमसे बन पडा है जो आप हम पर इतने कुपित हो रहे है ?'

लाल-लाल आँखो से वसुदेव को घूरते हुए कस ने कहा, 'देवताओं ने मुझे सावधान किया है कि देवकी का आठवाँ पुत्र मेरा सहार करेगा। लेकिन मै ऐसा कदापि नही होने दूँगा।'

वसुदेव ने तुरन्त समझ लिया कि अपनी मृत्यु के भय से जो निश्चय कस इस समय कर चुका है, उससे उसे विचलित करने का साहस किसी मे नही। फिर भी, अत्यन्त विनम्रता से उन्होने विनती की, 'हे नरोत्तम परमवीर कुमार, देवकी से तो आपको कोई भय नही है न ? देवताओं ने इसके हाथो तो आपके किसी अमगल की पूर्व-सूचना नही दी न ? फिर आप इस बेचारी पर क्यो बिगडते है ? भविष्यवाणी के अनुसार तो इसके आठवे पुत्र से आपको भय है। लेकिन आप चिन्ता न करे। मैं आपका स्वामिभक्त स्वजन हूँ। आपकी हर विपत्ति मे साथ देना मेरा कर्तव्य है, धर्म है; और उस धर्म का पालन करने की मै आपसे प्रतिज्ञा करता हूँ। देवकी को आप जीवित रहने दे। मै आपको वचन देता हूँ कि उसकी कोख से जो भी सन्तान उत्पन्न होगी, वह मै आपको सौप दूँगा। फिर आप उसका जो चाहे सो करे ! इस प्रकार उसकी जब कोई सन्तान रहेगी ही नहीं, तो आपको खतरा किस बात का ? भविष्य-वाणी फिर किस प्रकार सत्य होगी ?'

कंस ने अपने पिता उग्रसेन की ओर देखा, चाचा देवक पर नजर डाली, भयभीत और संक्षुब्ध देवकी पर दृष्टिपात किया। धूर्त तो वह था ही। उसने सोचा कि देवकी की हत्या इसी समय करने से यादवो से वैर मोल लेना होगा। और यह काम बुद्धिमानी का नही होगा। देवकी जीवित रही तब भी उसका कुछ अनिष्ट नही कर सकेगी। उसे जिन्दा छोड़ देने में उसे कोई खतरा नजर नही आया, फिर भी सावधानी बरतते हुए उसने एक शर्त रखी, 'देवकी को इस समय छोड़ तो देता

हूँ, किन्तु इस शर्त पर कि वह अपने वर के साथ यहाँ से सीधे गजराज महल मे जाए और वही वे दोनो जन रहे। मेरे विश्वसनीय सेवक दिन-रात उनका पहरा देगे। वसुदेव, तुमने अभी-अभी जो वचन मुझे दिया है उसे भूल मत जाना। देवकी की कोख से जन्मे प्रत्येक शिशु को तुम्हे मुझे सौप देना होगा। उसके जन्म लेते ही मुझे सूचित किया जाए। मै किसी भी अवस्था मे देवकी की किसी सन्तान को जीवित नही छोडना चाहता।'

३

कंस की योजनाएँ

वसुदेव और देवकी को कस ने उनके विवाह के तुरन्त बाद ही बन्दी बना लिया; इससे शूर, सात्वत तथा कक्कुर कुल के यादवों को गहरा आघात लगा। अन्धक कुल के यादव भी, जो राजा उग्रसेन को अपना अगुआ मानते थे, कस के इस अमानुषी बर्ताव से क्षुब्ध हो गए। लोगों के रोष की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ती गई और इसी रोष ने आगे चलकर विरोध का स्वरूप धारण कर लिया। कुछ ही महीनो बाद कस के गुप्तचरो ने उसे खबर दी कि विरोध उग्र होता जा रहा है।

शूरश्रेष्ठ वसुदेव पर कंस के अत्याचार के अतिरिक्त उसके अन्य दुष्कृत्यो की चर्चा भी उदारहृदय यादव यदा-कदा एकत्र हो किया करते थे। यादव स्त्रियों के हृदय भी हाहाकार कर उठे। देवकी का दु.ख प्रत्येक यादव स्त्री का अपना दु.ख हो गया। उनमें से प्रत्येक को यह भय था कि पता नही कंस आगे चलकर क्या करेगा; वह किसी की भी ऐसी

ही दुर्दशा कर सकता था या इससे भी बदतर ! और, यदि यही हाल रहा, तो कंस के प्रकोप से फिर कौन बचेगा ?

इस तरह विरोध उग्रतर होता गया। किन्तु कंस ने इसकी अधिक परवाह नही की। उसने तो इसे बस लोगो की उद्दण्डता समझा और निश्चय किया कि आलोचको और विरोधियो को तत्काल कुचल देना चाहिए। इसी उद्देश्य की पूर्ति के हेतु, उसने अपने विश्वसनीय सेवकों और सलाहकारो की एक गुप्त मन्त्रणा भी की।

कस के चाटुकारो और साथियो का वह एक अजीब जमघट था। उसमे यादव तथा अन्य दुरात्माओ ने भाग लिया। देवताओं अथवा ऋषि-मुनियों द्वारा रचे गए नियम तो उन्हे स्वीकार नही थे, वे तो वस कस के वल पर मौज उड़ाते, उसकी आज्ञा शिरोधार्य करते और प्रजाजनों पर अत्याचार करते। जिस किसी को कसद्रोही ठहराया जाता, उसको सताना अथवा कारावास में डाल देना उनका काम था। प्रायः परिवार-के-परिवार उनके द्वारा छिन्न-भिन्न हो जाते और कस की अथवा अपनी वासना की तृप्ति के लिए वे कुलीन स्त्रियो तक को पकड़ मँगवाते।

कस के इन साथियो ने विद्रोह के समाचार सुनाकर उसकी क्रोधाग्नि को खूब भड़काया। एक ने कहा, 'कृपानिधि, आपके कृत्यो को यादव अमानुषिक कहते है। उनकी सहानुभूति प्रत्यक्ष ही देवकी और वसुदेव के प्रति है। सम्भव है राजा उग्रसेन के पास भी वे आपकी शिकायत लेकर पहुँच जाएँ। वृद्ध महाराज का हृदय तो दुर्बल है ही, वह तो जिस किसी की भी फरियाद पर ध्यान देने बैठ जाते है।'

कंस के खास सलाहकारों में अन्धक कुल के प्रमुख प्रद्योत और उसकी पत्नी पूतना थी। यादव स्त्रियाँ कंस के बारे मे क्या सोचती और कहती है, उसकी खबर पूतना रखती थी। स्वभाव और स्वरूप दोनो से वह भयकरी थी और उसकी विशिष्टता यह थी कि किसी का भी अपमान करने में वह जरा भी नही चूकती थी।

अन्य विश्वसनीय अनुचरो की तुलना में वह कस की विशेष कृपा-पात्री भी थी। जरा भी संकोच अथवा भय किये बिना कस के सामने साफ-साफ बात यदि कोई कर सकता था, तो वह पूतना ही थी। इस

अवसर पर पूतना ने भी कस से करबद्ध प्रार्थना की, 'प्रभु, सच-सच कहने के लिए क्षमा चाहती हूँ, लेकिन यादव स्त्रियाँ आपको धिक्कार रही है, आपके अमगल की कामना करती है और अपने पतियों को आपके विरुद्ध षड्यन्त्र रचने की प्रेरणा देती है, उनका हृदय तो मात्र देवकी के लिए तडपता है और आप जितना ही अधिक कठोर बर्ताव उसके तथा उसके पति वसुदेव के साथ करते है, उतनी ही अधिक उनकी सहानुभूति उन दोनो के प्रति बढती है। नारदमुनि की भविष्यवाणी उन सबने सुन रखी है और वे दिन-रात यादव-कुल का उद्धार करने वाले, देवकी के आठवे पुत्र के जन्म लेने की प्रतीक्षा करती है।'

कस ने अपनी मूँछों पर ताव देते हुए किसी तरह अपने क्रोध को रोका। यादवों को एक अच्छा सबक सिखाने का उसने मन-ही-मन सकल्प किया। धीरे-धीरे उसके मस्तिष्क मे एक भयकर योजना ने जन्म लिया।

कुछ ही दिन बाद आखेट के बहाने कस अग्रवन गया। व्रजभूमि की सीमा से संलग्न वहाँ भौम का राज्य पड़ता था और भौम के पड़ोस मे ही राजा बाण का राज्य था। अपने विद्यार्थी-जीवन मे कस ने इन्हीं दोनो सहपाठियों के साथ गालव ऋषि के आश्रम मे कई दिन बिताये थे। तीनो ही उपद्रवी और उद्दण्ड थे। आश्रमवासी इनसे सदा त्रस्त रहते। अन्त मे तग आकर गालव ऋषि को राजा उग्रसेन से कस को वहाँ से हटा लेने की विनती करनी पड़ी। तभी से कस अपरिग्रही, शब्दब्रह्म के उपासक ब्राह्मणों का शत्रु बन बैठा था।

कस, भौम और बाण की मैत्री वयस्क होने पर भी बनी रही। भौम और बाण प्रगल्भ और कपटपरायण कंस को अपना अग्रज और आदरणीय मानते थे। वे लोग इसी प्रतीक्षा में थे कि यादवों का प्रमुख बनकर कंस कब युद्ध की अग्नि प्रज्वलित करता है, ताकि उसी के दौरान वे भी अपना-अपना क्षुद्र राज्य किसी तरह विस्तीर्ण कर लें।

भौम का अतिथि बनकर कंस जब उसके यहाँ ठहरा, तो बाण भी वहाँ आ पहुँचा। तीनों ने वहाँ मन्त्रणा की कि जो भी यादव कंस का विरोध करने का दुस्साहस करते है, उन सबको कुचल देना चाहिए। राजा

उग्रसेन इन उपद्रवियों को किसी प्रकार का प्रोत्साहन न दें, इसकी भी व्यवस्था करनी होगी। राजा उग्रसेन स्वभाव से दयालु थे और परम्परानुसार प्रजा को पुत्रवत् समझते थे। कंस को यह बात पसन्द न थी; इसीलिए वह अपने पिता के प्रति द्वेष-भाव रखता था। अपने मित्रों से उसने कहा, 'इस बुड्ढे को तो मेरी शिकायतें सुनना अच्छा लगता है। जब भी लोग मेरे खिलाफ फरियाद लेकर पहुँचते है, तो वह उस पर ध्यान देने बैठ जाते है, मेरे कामों में दखल देने से वह कभी नही चूकते !'

भौम के यहाँ से कस जब मथुरा लौटा, तो उसने दृढ़ निश्चय किया कि वह केवल उन्ही लोगो को मथुरा मे बसने देगा जो उसका समर्थन करेंगे, विरोधियो को वह अब जरा भी सर उठाने का मौका नही देगा और अगर किसी ने यह दुस्साहस किया तो तत्काल ही वह उसका विनाश कर देगा। इसके सिवा और कोई चारा नही।

यादव सघ का नेतृत्व तो वैसे उसको उत्तराधिकार मे प्राप्त होता ही, किन्तु परम्परा और स्वभाव के अनुसार यादव स्वतन्त्रता और शान्ति के इच्छुक थे। एकाधिकार प्राप्त करने की चेष्टा करनेवाला कभी उनका विश्वासभाजन नही बन सकता था। इसी कारण वह अब तक उतनी सत्ता प्राप्त नही कर सका था जितनी उसे चाहिए थी। और, यही बात कस को कचोटती रहती कि राजा बनने पर भी वह अपने पिता की तरह नाममात्र का शासक होगा, असली सत्ता तो सघ के हाथ मे रहेगी। उसे भय था कि इस प्रकार वह कभी विजय-पथ पर अग्रसर होकर अपने राज्य का विस्तार नही कर सकेगा। यदि उसे सर्वसत्ताधीश होना है तो अभी से व्यूहरचना करनी होगी।

अपने ध्येय की पूर्ति के लिए कस को शक्तिशाली मित्रों की आवश्यकता थी। इसीलिए जब तक ऐसे मित्र न मिले, सावधानी से, धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करना ही उसने उचित समझा। उन दिनों मगधराज जरासध ही आर्यावर्त मे सबसे शक्तिशाली और प्रतापी राजा था। वह स्वयं एक प्रचण्ड योद्धा था और उसकी सेनाओ ने अनेक राजाओ का मान-मर्दन किया था। अपने साम्राज्य का विस्तार भी उसने खूब किया था और कुछ ही वर्षो मे उसका चक्रवर्ती पद प्राप्त करना भी प्राय निःसदिग्ध था।

कंस की दृष्टि में जरासंध परमवीर था। उसके चरण-चिह्नों मे चलने की उसकी बड़ी साध थी। उसने सोचा कि यदि जरासध किसी प्रकार अपनी पुत्री का विवाह मुझसे करने को राजी हो जाए, तो परस्पर सहायता कर हम एक-दूसरे का बड़ा हित कर सकते है। वे यादवो पर एकाधिकार प्राप्त करने मे मेरे सहायक हो सकते है और उन्हे चक्रवर्ती सम्राट बनाने में मै मदद कर सकता हूँ, और यदि दैवयोग से किसी युद्ध में वे मृत्यु को प्राप्त हुए तो उनके साम्राज्य का एक खण्ड मेरे हिस्से मे आएगा ही।

कस ने अपने इस विचार को कार्यरूप में परिणत करने की शीघ्र व्यवस्था की। राजा बाण जरासध का रिश्ते मे भाई लगता था। जरासध की पुत्री का हाथ अपने लिए माँगने कस ने उसे गिरिव्रज भेजा और भाग्य की बात, कि उसे वहाँ आशातीत सफलता मिली।

जरासध इस सम्बन्ध के लिए राजी हो गया और कुछ ही महीनो बाद मगधराज की दो कन्याओ, अस्ति और प्राप्ति, के साथ कस का विवाह हो गया। विवाहोपरान्त जब वे मथुरा रहने आई तो अपने साथ मगध से योद्धाओं का एक छोटा-सा दल भी लेती आई। इन शक्तिशाली और भयकर योद्धाओं का उपयोग कस अपनी प्रजा को दबाने और यादवो के विरोध को कुचलने में करने लगा। इस प्रकार अपनी महत्त्वाकांक्षा को पूरी करने के लिए उसने युद्ध की प्रथम तैयारियाँ प्रारम्भ की।

४

साधु-चरित अक्रूर

कंस जब चारों ओर से अपनी शक्ति बढाने में लगा था, तब गजराज प्रासाद में बन्दी, वसुदेव और देवकी एकान्त में अपने भाग्य पर आँसू बहा रहे थे।

कारावास में वसुदेव भगवान् विष्णु से नित्य प्रार्थना करते, 'प्रभु, अब शीघ्र ही हमारा उद्धार करो!' देवकी भी उनकी इस प्रार्थना में शरीक होती। सुशील आर्यपत्नी के योग्य वह सभी व्रतों का पालन करती और अपनी कोख से जन्म लेने वाले उद्धारक के सपने सँजोती। कई बार तो वह आधी रात को ही जगकर प्रार्थना करती, 'हे भगवान्, जगदाधार, मेरी कोख से कब तारणहार प्रकट होगा! मेरी आशा कब फलीभूत होगी!'

कई बार ब्राह्म-मुहूर्त में उठकर जब वह यह प्रार्थना करती तो उसे ऐसा लगता कि भगवान् ने उसकी पुकार सुन ली है। एक नई आशा और स्फूर्ति का अनुभव तब उसे होता और वह वसुदेव की सेवा में नये उत्साह से लगकर अपने सारे कष्टों को भुला देती।

मगध की राजकुमारियों से विवाह करने के उपरान्त कंस जब मथुरा लौटा, तो उसके कुछ ही दिनों बाद देवकी के एक पुत्ररत्न हुआ। इसकी खबर सारे यादव-समुदाय में फैल गई और साथ ही यह आशंका भी, कि कस अपने हाथ से उस नवजात शिशु का संहार करेगा। इस विचार ने सभी को आतंकित कर दिया।

यादवो के एक कुल का नाम वृष्णि था, जिसका युवा सरदार अक्रूर बड़ा धर्मपरायण व्यक्ति था। वह न्यायपथ से कभी विचलित नहीं होता। यादवों को उस पर सम्पूर्ण श्रद्धा थी। यादव नेताओं ने इसीलिए अक्रूर से विनती की कि वह कंस को बाल-हत्या का अपराध न करने के लिए समझाये। सभी का मत था कि निर्दोष नवजात शिशु

की हत्या करना तो वास्तव मे अधमता की पराकाष्ठा होगी।

अक्रूर ने यादव नेताओं की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। कंस को दिये गए अपने वचन के अनुसार वसुदेव जब नवजात शिशु को लेकर,उसके महल गये, तव अक्रूर भी कुछ यादव नेताओं के साथ वहाँ पहुँचे

कस उस समय सिहासन पर आरूढ़ था। उसके आसपास उसके विश्वसनीय अनुचर और मगध के सशस्त्र योद्धागण उपस्थित थे। वसुदेव तथा दूसरे लोगो को आया देखकर कस ने उनके प्रति अपनी अवज्ञा प्रकट की। अक्रूर ने बाल-हत्या का अपराध न करने के लिए उससे विनती की और अश्रुपूर्ण नेत्रो से वसुदेव ने भी बालक को जीवनदान देने की करबद्ध याचना की।

अक्रूर ने कहा, 'महाराज, कुछ तो दया कीजिए। मै आपसे दया की भीख माँगता हूँ। इस बच्चे ने आपका क्या बिगाड़ा है ? और फिर, एक निर्दोष बालक की हत्या करना क्या आपको शोभा देगा ? यह कृत्य अनार्य है, पापपूर्ण है। आपको जो भी भय है वह देवकी के आठवे पुत्र से है; प्रथम पुत्र से तो अनिष्ट की कोई आशंका नही न !'

"मै कोई भी खतरा उठाने को तैयार नही।' कंस ने भृकुटि तानकर कहा।

बालक को छाती से लगाकर वसुदेव ने प्रार्थना की, 'महाराज, राजा तो चतुर्भुज विष्णु की भाँति करुणा के अवतार होते है।'

कंस ने क्रूर अट्टहास के साथ कहा, 'तुम्हारा भगवान् दयानिधि है न ? तो जाओ, उससे सहायता माँगो। मैं भगवान् नही हूँ और न होना चाहता हूँ। मै दयालु भी नही हूँ।'

अक्रूर और वसुदेव ने बहुत अनुनय-विनय की; किन्तु उनके सारे प्रयत्न निष्फल गए। कस से उन्हे तिरस्कार के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिला। निराश होकर जब वे चुप हो गए, तब कंस सिंहासन पर से उठ खडा हुआ। वसुदेव के हाथ में से उसने बालक को छीना और जोर से उसको धरती पर पटक दिया। सभी उपस्थित यादवो के मुँह से भय की चीख फूट पड़ी।

कस ने वसुदेव के पुत्र की हत्या की, यह समाचार बिजली की तरह चारो ओर फैल गया। यादवों पर इसकी भयंकर प्रतिक्रिया हुई। वे तो किंकर्तव्यविमूढ ही हो गए। क्या करना, क्या न करना, किसके पास जाना, यह सोचने-समझने की शक्ति उनमें नही रही। पुरुषों के शोक की सीमा नही थी, स्त्रियों ने छाती-माथे पीट लिये। सभी व्याकुल हो उठे और सोचने लगे कि इस दुराचार को रोकने के लिए कुछ-न-कुछ उपाय अवश्य ढूँढना चाहिए। अन्त में, उनके नेता राजा उग्रसेन से मिलने उनके महल गये।

अपने पुत्र के इस घोर कुकृत्य की बात सुनकर राजा उग्रसेन की आँखों में आँसू आ गए। लड़खड़ाते कदमों से वह कस के पास उसकी भर्त्सना करने पहुँचे। पिता और पुत्र के बीच क्या गुजरा, इसकी खबर तो किसी को नही लगी, लेकिन कस के महल से राजा उग्रसेन को वापस आते किसी ने नहीं देखा। उनकी रानियों और कुछ परिचारिकों के अतिरिक्त अन्य किसी को उनसे मिलने भी नही दिया गया। इस प्रकार स्वय अपने पुत्र के द्वारा ही वह बन्दी बना लिये गए। आर्यों के आचार-विचार के अनुसार पिता को परमेश्वरतुल्य माना जाता था; परिणामस्वरूप यादवों को इससे अभूतपूर्व व्याघात लगा।

दूसरे दिन कंस के आदमियों ने मथुरा में भयंकर अत्याचार और दमन की ध्वसलीला की। जिस महल मे देवकी और वसुदेव कैद थे, उसी महल मे अक्रूर को भी बन्दी बना लिया गया। अक्रूर के साथ जो यादव नेता आये थे, उनके घरों मे आग लगा दी गई। राजा उग्रसेन के द्वार पर जो पहरेदार थे, उनकी हत्या कर दी गई। इससे चारो ओर आतंक छा गया। लोग घरो में छिप गए। दण्ड पाने के भय से जो अधिक घबड़ा गए, वे मथुरा छोड़कर भाग गए।

विजय के मद मे, विश्वसनीय अश्वारोहियों के साथ कंस अपने रथ पर बैठकर नगर के राजमार्ग पर निकला। अपने अनुचरों-साथियों का हर्षनाद और अत्याचार से त्रस्त प्रजा का आर्तनाद, दोनों ही तब उसे सुनने को मिले। लेकिन यादवों को अच्छा सबक सिखाने का उसे सन्तोष था।

उधर कारावास मे असहाय और आक्रान्त देवकी अपने भाग्य पर आँसू बहा रही थी। वसुदेव उसके सामने ही शोकग्रस्त अवस्था में मुँह लटकाए बैठे थे। सान्त्वना के कोई शब्द उनके पास न थे। देवकी ने व्यथित हृदय से पुकारा, 'हे भगवान्, दीनानाथ, दयानिधि, अब तो शीघ्र ही उद्धार कर ! तारणहार को भेज; देर ना कर प्रभु !'

पास ही खड़े अक्रूर ने देवकी और वसुदेव को आश्वासन देते हुए कहा, 'भगवान् केवल परीक्षा के लिए ही दुःख भेजते है, देवकी बहन ! घबड़ाओ मत !' वसुदेव से उन्होने कहा, 'उद्धारक अवश्य प्रकट होगे, वसुदेव ! भगवान् की लीला अपरम्पार है। चार दिन पहले ही मुझे शुभ समाचार मिले है। कुछ दिनों में पूज्य मुनिवर्य कृष्ण द्वैपायन इन्द्रप्रस्थ जाते हुए यहाँ रुकेगे। प्राज्ञों में श्रेष्ठ वेदव्यास अवश्य ही हमे मार्ग दिखायेंगे।'

वय से तो अक्रूर अवस्था मे तरुण थे, किन्तु विचारों मे वह प्रौढ थे। ईश्वर मे उनकी श्रद्धा अविचल थी। मथुरा की प्रजा के हर शोक-सन्ताप तथा संकट में वह सदा सहायता को तत्पर रहते थे, इसलिए वह लोकप्रिय भी थे।

गुप्तचरो ने कंस को सूचना दी, 'विद्रोह दबा दिया गया है। बहुत-से यादव नेता सपरिवार मथुरा से भाग गए है। कई तो हताश होकर आपकी शरण आए है। परन्तु आपके प्रति जो वफ़ादार है, उनमे से भी कई लोग अक्रूर के प्रति आपके व्यवहार से रुष्ट है।'

पहले ही वार में कंस ने जो विजय प्राप्त कर ली थी, इसकी उसे आंतरिक प्रसन्नता थी। उसे लगा कि लोगों मे जो रोष की भावना जाग उठी है, उसे अब शान्त करना चाहिए। अक्रूर को इसीलिए मुक्त कर देना उसे उचित जान पड़ा। उसने समझा कि अक्रूर को छोड देने से प्रजा मे जो हर्ष की लहर दौड़ेगी, वह सभी विरोधी भावनाओं को शान्त कर देगी।

प्रबल कुरुजाति के प्रतापी नरशार्दूल भीष्म की ओर से सन्देश लेकर कुछ घुड़सवार मथुरा आए और कस को यह खबर दी, कि भीष्म ने वसुदेव को इन्द्रप्रस्थ आने के लिए आमन्त्रित किया है। इसका उत्तर

क्या दिया जाए, यह कंस की समझ में नही आया। हस्तिनापुर के प्रबल साम्राज्य के अधिष्ठाता भीष्म अप्रतिम महारथी थे। उनके निमन्त्रण की अवहेलना करना एक महान् हस्ती से शत्रुता मोल लेना था। इस सकट से बच निकलने का कोई रास्ता उस समय कंस को नही दिखाई पड़ा। किन्तु इतना वह अवश्य जानता था कि हस्तिनापुर में सभी लोग अक्रूर का सम्मान करते है। शायद वे कोई रास्ता बता सकें, इस दृष्टि से भी अक्रूर को उसने कारावास से मुक्त कर दिया।

अक्रूर को अत्याचारी कस के किसी अनुग्रह की अपेक्षा नही थी। मुक्त होते ही वह अपने घर गये और अपने कटुम्बीजनों को उन्होंने गोकुल भेज दिया। लेकिन भयग्रस्त प्रजा को आश्वस्त करने के लिए वह स्वयं मथुरा में ही रहे। उन्हें सर्वत्र कस के दूतों द्वारा किये गए अत्याचारों की कहानी ही सुनने को मिली। जहाँ तक उनसे बन पड़ा उन्होने आर्त्तों की सहायता की और ईश्वर मे अविचल श्रद्धा का जो अक्षय भण्डार उनके पास था, उसे मुक्त हस्त से वितरित किया।

उन्होने लोगो से कहा, 'भगवान् जो दु:ख-कष्ट हम पर भेजते हैं, वह इस अग्नि में तपाकर हमे कुन्दन बनाने के लिए ही। श्रद्धा रखने से वह स्वयं ही हमें मार्ग दिखाते है। उनका यह वचन हमें कभी नहीं भूलना चाहिए—न मे भक्तः प्रणश्यति। इसका ऋषिमुनियों ने भी समर्थन किया है।'

अक्रूर की इस सान्त्वना-आश्वासन से मथुरावासियों के हृदय में आशा का संचार हुआ और उन्हें यातना सहन करने और धैर्य धारण करने की शक्ति मिली।

५

कंस की दुविधा

कंस के बुलाने पर वृष्णिनायक अक्रूर उससे मिलने राजमहल गये। यह तो वह खूब जानते थे कि कस धूर्त है और उनसे वैर-भाव रखता है, इसलिए इस बार खुश करने की उसकी प्रवृत्ति को देखकर उन्हे आश्चर्य ही हुआ।

कंस ने कहा, 'अक्रूर, मुझे समाचार मिले है कि मुनिश्रेष्ठ कृष्ण द्वैपायन व्यास कल मथुरा आ रहे है। उनके यहाँ आने का क्या प्रयोजन है, यह शायद तुमसे छिपा नही है। क्या तुम बता सकते हो कि वह यहाँ क्यों आ रहे है ? महापराक्रमी भीष्म ने जो सन्देश मुझे भेजा है, शायद उसीके सिलसिले में वह आ रहे है। यह तो तुम्हे मालूम ही होगा कि वसुदेव को इन्द्रप्रस्थ बुलाने के लिए भीष्म ने अपने दूत भेजे है।'

'मुझे मालूम है, राजकुमार !' अक्रूर ने उत्तर दिया।

'वेदव्यास किसलिए यहाँ आ रहे है ?' कस ने अधीर होकर पूछा।

'मुझे क्या मालूम !' अक्रूर ने मुस्कराकर कहा।

'मुझे विश्वास है कि तुम्हे मालूम है,' कस ने कहा, 'तुम्हारा उनसे अच्छा परिचय है, क्यो, है न ?'

''हाँ, उन पूज्यपाद से मैं कई बार मिल चुका हूँ।' अक्रूर ने उत्तर दिया।

कस ने तिरस्कारपूर्वक, कटाक्ष करते हुए कहा, 'क्या यह सच है कि मुनि मछुए की कन्या के पुत्र और कुरुवंशीय राजकुमारों के पिता है ?'

'मुनिश्रेष्ठ ने यह बात कभी गुप्त नही रखी,' अक्रूर ने उत्तर दिया, 'न उन्हें इस बात की कोई लज्जा है। कुरु राजकुमारों की दादी महादेवी सत्यवती उनकी माता होती हैं। जब वह मछुए की पुत्री थी, तभी उनकी कोख से भगवान् व्यास ने जन्म लिया था। आप यह तो जानते ही होंगे कि पूज्यपाद महर्षि वशिष्ठ के पौत्र मुनि पाराशर उनके पिता है।'

'देवी सत्यवती अपने यौवन-काल में क्या उतनी ही सुन्दरी थी, जितना कि लोग बताते है ?' कंस ने मार्मिक प्रश्न किया, 'अब वह कैसी दिखाई देती है ?'

क्षण-भर तो अक्रूर मौन रहे। वह जल्दबाजी में कुछ कहना नही चाहते थे। कुछ देर बाद उन्होंने कहा, 'महाराज, महाप्रतापी साम्राज्ञी जैसी ही दिखाई पड़ती है देवी सत्यवती ! राजकुल की शोभा के उपयुक्त ही उनका गौरव है, और ज्ञान की तो वह मानो अवतार हैं।'

कंस इन सब बातों को जानता था, फिर भी इस प्रकार के प्रश्न कर रहा था जिन्हे सुनकर अक्रूर को क्रोध आना स्वाभाविक था।

'यह भीष्म भी बड़ा विचित्र व्यक्ति है। पिता को एक मछलीमार की कन्या से विवाह करने देने के लिए वह स्वयं आजन्म क्वारा रहा !' कस ने अक्रूर को और भी चिढाने की दृष्टि से कहा।

आत्मसयम के हेतु अक्रूर क्षण-भर शान्त रहे; फिर वोले, 'राजकुमार, उस कोटि के मनुष्यो को आप नही समझ सकते; लेकिन मैं समझता हूँ। आर्यश्रेष्ठ भीष्म अपने पिता राजा शान्तनु को वास्तव मे देवतुल्य समझते थे, नाममात्र को नही !'

पल-भर तो कस अक्रूर को तीक्ष्ण दृष्टि से देखता रहा। अक्रूर के कथन में छिपा जो व्यग्य उसके अपने पिता के प्रति किये गए उसके व्यवहार पर था, वह उसे समझ गया। उसने कहा, 'किन्तु इसका परिणाम क्या हुआ ? शान्तनु के दूसरे दो पुत्र निःसन्तान ही मृत्यु को प्राप्त हुए और फिर महारानी को अपने मुनि पुत्र की सहायता माँगनी पड़ी। यही व्यास मुनि धृतराष्ट्र और पाडु के जन्मदाता बने, क्यों, ठीक है न ?'

कंस के कटाक्ष का उत्तर देते हुए अक्रूर ने कहा, 'हॉ, प्राचीन नियोग[1] प्रथा के अनुसार।'

एकाएक अक्रूर को प्रसन्न करने की मुद्रा मे कस ने कहा, 'देखो

---

१. स्मृतियों द्वारा मान्य प्रजोत्पत्ति की प्राचीन विधि, जिसके अनुसार विशिष्ट संयोगों में ज्येष्ठ भ्राता अपने अनुज की विधवा द्वारा सन्तान उत्पत्ति कर सकता था। 'गौतम' १८, ४—८; 'मनु' ६,५७; 'कौटिल्य' १,१७; 'नारद' ८२; 'महाभारत आदिपर्व' १२०, ३२—३५।

वृष्णिश्रेष्ठ, सच-सच बताओ। कुछ ही महीनों पहले तुम हस्तिनापुर गये थे। कुरुकुल के दो राजपुत्र है, धृतराष्ट्र और पांडु। धृतराष्ट्र अन्धा है, इसलिए हस्तिनापुर का सम्राट बन नहीं सकता। पाडु निर्बल और रोग-ग्रस्त है। दोनों मे से किसी को सन्तान नही। उनकी मृत्यु के बाद फिर साम्राज्य की क्या दशा होगी ?'

'जब तक भीष्म बैठे है, साम्राज्य को कोई भी क्षति नही पहुँचेगी। कुरुवंशी धर्म से विजय प्राप्त करते है, छल अथवा बल से नही।'

कंस ने कहा, 'ठीक है, पर भीष्म वसुदेव को इन्द्रप्रस्थ किसलिए बुला रहा है ? मुझे तो लगता है कि इसमे बुड्ढे की कोई चाल है।'

'मै तो यही जानता हूँ कि आर्यश्रेष्ठ भीष्म कदापि कपट अथवा युक्ति का आश्रय नही लेते।' अक्रूर ने कहा।

'लेकिन मै वसुदेव को जाने नही दूँगा।' कंस ने कहा।

'यह तो मै भी जानता हूँ। किन्तु भीष्म क्या इससे आप पर क्रोधित नहीं होगे ?' अक्रूर ने कहा, 'और, भीष्म का कोप कितना भयकर होता है, यह तो आप भली भाँति जानते है। वसुदेव को रोकना बुद्धिमानी का काम नही होगा, किन्तु देवकी को यहाँ छोड़कर वसुदेव कही जायेगे भी नही और आप देवकी को उनके साथ भेजना कभी स्वीकार नही करेंगे, राजकुमार !'

जरा-सा हँसकर कंस ने कहा, 'ठीक है···ठीक है; अक्रूर, तुम चतुर हो ! अब बताओ, भीष्म को मुझे क्या उत्तर भेजना चाहिए ? वसुदेव के बजाय देवक चाचा को यदि भेजूँ तो ? यदि गुनि भी भीष्म का यही सन्देश लेकर आयें तो, मैं उन्हे क्या जवाब दूँ ?'

'क्यो नही सच्ची बात बता दी जाए ?' अक्रूर ने कहा, 'वसुदेव और देवकी को तो आप वहाँ जाने देगे नही, क्योंकि यदि उन्हे जाने दे तो वे वापस नही आयेंगे। और, उनकी सन्तान आपकी हत्या करेगी, यह भय आपको है।'

रोषपूर्वक कंस बोल उठा, 'मूर्खों जैसी बाते मत करो। मैं यह सब विचार क्यो करूँ ?'

अक्रूर ने हँसकर कहा, 'सभी को यह बात मालूम है।'

'चतुराई छोड़ो, अक्रूर !' कस ने कहा, 'मैं तो चाहता हूँ कि वसुदेव स्वयं जाने से इन्कार करे। देवकी को छोड़कर जाना उन्हें अच्छा लगेगा भी नही। क्यों नहीं उनके बजाय तुम इन्द्रप्रस्थ जाओ ! भीष्म को भी इससे सन्तोष होगा।'

थोड़ी देर फिर चुप रहने के बाद अक्रूर बोले, 'कल मैं मुनि से पूछ लूंगा। यदि उन्होंने मान लिया तो मैं चला जाऊँगा।'

'और यदि वह नही माने तो ?' कस ने क्रोधपूर्वक पूछा।

'तो मैं नही जाऊँगा।' शान्ति से अक्रूर ने उत्तर दिया।

'इसका परिणाम क्या होगा यह जानते हो ?' कस ने क्रोध से आँखें दिखाते हुए कहा।

'जीवन और मरण तो ईश्वराधीन है, राजकुमार !' अक्रूर ने उत्तर दिया और नमस्कार कर वहाँ से चल दिमे।

सिंहासन पर से उठकर कस गरज उठा, 'मैं आज शाम को शिकार खेलने जा रहा हूँ। मुनि से मिलने की मेरी इच्छा नही है। और, तुम्हे तो वही कहना है, जो मैंने अभी-अभी तुमसे कहा है, समझे न !'

प्रत्युत्तर मे अक्रूर पीछे मुड़कर ज़रा मुस्करा दिए।

६

वेदव्यास की भविष्यवाणी

दूसरे दिन वृष्णिघाट पर एकत्रित होकर मथुरावासी नदी-मार्ग से आ रही तीन नौकाओ की वड़ी आतुरता से प्रतीक्षा कर रहे थे। मुनि-श्रेष्ठ कृष्ण द्वैपायन मथुरा पधार रहे है, यह समाचार सर्वत्र प्रसारित हो

गया था और दर्शनातुर लोगों की भीड घाट पर इकट्ठी हो गई थी।

तीन वर्ष पहले जब मुनि मथुरा पधारे थे तब लोगो ने बड़े उत्साह से आनन्दोत्सव मनाया था। स्वय राजा उग्रसेन उनका सत्कार करने गये थे। किन्तु अब स्थिति बदल गई थी। आज मुनिश्रेष्ठ व्यास का सत्कार करने घाट पर केवल देवक और अक्रूर ही आये थे। और, उन दोनो पर कस का द्वेष-भाव है, यह सभी को विदित था।

नौकाओ के नजदीक आने पर प्रथम नौका मे बैठे मुनिश्रेष्ठ व्यास को अक्रूर ने पहचान लिया। वही भव्य ललाट, तेजस्वी आँखे, तपश्चर्या से किचित् कृश किन्तु तब भी सुपुष्ट, मृगचर्म से सुशोभित सुन्दर भव्य शरीर।

अक्रूर के मन:चक्षु के समक्ष उस समय मुनिश्रेष्ठ के अतीत के कई चित्र उपस्थित हुए। मछुए की कन्या की कोख से अवतरित पाराशर मुनि के ये पुत्र सर्व विद्याओ में पारगत हुए थे। उन्होंने वेदों का उद्धार किया, ज्ञान की विविध शाखाओ की स्थापना की।

लोगों का कहना था कि वह त्रिकालदर्शी थे। प्राज्ञ पुरुषों का कथन था कि देह की दुर्बलता पर उन्होने विजय प्राप्त की थी। वह पुंराण-काल के दिव्य ऋषियों जैसे थे। जहाँ वह जाते वही धर्म उनका अनुसरण करता।

मुनि नौका से उतरे। अक्रूर ने उन्हे साष्टाग प्रणाम किया। मुनि ने सस्मित वदन उनकी ओर देखा। अक्रूर को लगा मानो प्रेमालिंगन मे किसी ने उनको बाँध लिया है। उनका हृदय उत्साह से भर गया। स्नेह-मयी माता की गोद में किलकारी मारते हुए शिशु-सा स्वयं को उन्होने अनुभव किया। फिर एक नौका से उतरे हुए तरुण पुरुष को उन्होंने नमस्कार किया।

'अक्रूर, यह पुत्र विदुर है। तू इसे जानता है न ?' प्रेम-भरे स्वर में मुनि ने प्रश्न किया।

अक्रूर ने विदुर का चरणस्पर्श किया। उनके विषय में अक्रूर ने सुन रखा था। हस्तिनापुर की राजगद्दी खाली न रहे, इस हेतु मुनिश्रेष्ठ व्यास ने नि:सन्तान विधवा रानियो के साथ नियोग किया था। तब एक भक्ति-भीनी दासी भी हाजिर हुई थी। उसकी कोख से भी भगवान् व्यास का एक पुत्र हुआ। वही विदुर थे।

विदुर को लेकर कृष्ण द्वैपायन मुनि अक्रूर के यहाँ गये। अक्रूर ने उनके समक्ष दूध तथा फलो का प्रसाद प्रस्तुत किया। तदुपरान्त वसुदेव तथा देवकी की करुण कथा मुनि को सुनाई और जहाँ उन्हें बन्दी रखा गया था उस महल मे मुनि को ले गये।

मुनि को अपने से मिलने आते देख वसुदेव तथा देवकी हर्षविभोर हो उठे। दोनों ने ही उनके चरणों में साष्टांग प्रणाम किया, उनका पाद-प्रक्षालन किया और पुष्पाजलि भेट की। मुनि ने वसुदेव को गले लगाया, देवकी का मस्तक सूँघा और दोनों को आशीर्वाद दिया। दम्पति ने तब अश्रु-भीगे नयनो से मुनि के समक्ष अपनी आपबीती कही।

मुनि ने स्नेह-भरी दृष्टि से उनकी ओर देखते हुए, सस्मित वदन वसुदेव-देवकी की कथा सुनी। फिर बड़े प्यार-भरे स्वर मे कहा, 'वसुदेव, देवकी, यह मुझे मालूम है कि कस ने तुम्हारे साथ पशुतुल्य व्यवहार किया है। परन्तु वह तो जन्म से ही दुष्ट है, वह अपनी दुष्टता कभी त्याग नही सकता। किन्तु पाप का घड़ा जब भरता है, तभी पुण्य का उदय होता है। मेरे विचार से यदि तुम दोनो मेरे साथ इन्द्रप्रस्थ चल सकते तो अच्छा होता।'

हाथ जोड़कर वसुदेव ने कहा, 'मैं भी चाहता हूँ, भगवन्, कि आपके साथ इन्द्रप्रस्थ चल सकूँ। आर्यश्रेष्ठ भीष्म की इच्छा मेरे लिए आदेश है। उन्होने आपको भी बुलाया है, इससे मालूम होता है कि बात काफ़ी विपम बन गई है।'

भगवान् व्यास ने आश्वासन के स्वर मे कहा, 'वत्स, चिन्ता मत करो। तुम्हारा धर्म देवकी के साथ रहने का है। इस समय उसे ही तुम्हारी सर्वाधिक आवश्यकता है। तुम्हारे स्थान पर अक्रूर को कंस भेजना चाहता है, तो ठीक है। वह मेरे साथ चल सकता है। तुम्हारा सब काम वह कर सकेगा। भीष्म स्वयं बुद्धिमान है; तुम्हारे न आ पाने का कारण वह स्वयं समझ लेंगे।'

'भगवन्, अक्रूर तो मेरे प्रिय मित्र हैं। वह चतुर है, मेरी अपेक्षा वह अधिक योग्य सहायक सिद्ध होगे।'

भावविह्वल हो, कम्पमान स्वर मे देवकी बोली, 'हमें आपके आशीर्वाद की कामना है प्रभु! आपके दर्शन भी मंगलसूचक हैं।'

मुनि ने कहा, 'पतिपरायणा नारी का सदा कल्याण ही होता है, पुत्री ! इतना सदा याद रखना कि विपत्ति मे धैर्य धारण करने से ही ईश्वर प्रसन्न होता है।'

'प्रभो, यथासम्भव धैर्य तो मै रखती ही हूँ। मेरी तकदीर मे जो जेल बदी है उसे मै कितनी शान्ति से सहन कर रही हूँ, यह आप नही जानते। परन्तु मुझे कस का भय लगता है। मेरी सभी सन्तानो का यदि वह वध करे और भविष्यवाणी झूठी पड़ जाए तो !' आँखो से आँसू बहाते हुए देवकी ने कहा। परन्तु मुनि ने जब उसकी ओर देखा तो उसके मन का समाधान हो गया।

'देवकी, भय का कोई कारण नही। भविष्यवाणी झूठी नही पड़ सकती।'

'लेकिन यह वास्तव में भविष्यवाणी है या मात्र किवदन्ति, अथवा राजकुमार का भ्रम ? मेरी तो समझ मे कुछ नही आता। नारदमुनि यो सहज ही में किसी से भिलने आये और वह भी कस से, यह मानने मे नहीं आता।' वसुदेव ने कहा।

'वसुदेव, भविष्यवाणी की बात सुनकर, मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। पृथ्वी पर पापाचार बहुत बढ गया है। अब तो तारणहार का अवतार होना ही चाहिए।' मुनि ने उत्तर दिया।

'परन्तु तारणहार सचमुच आयेगे ? और मेरी कोख से ? यदि वह अवतरित हुए भी, तो मेरा दुष्ट भाई क्या उन्हे जिन्दा छोड़ेगा ?' करुणाद्र स्वर में देवकी ने पूछा।

मुनि कुछ देर तो शान्त रहे। आँखे मूँदकर उन्होंने भगवान् शंकर का ध्यान धरा। मुग्ध भाव से तथा आदरसहित सभी उनकी ओर निहार रहे थे। मुनि ने फिर आँखे खोलकर देवकी की ओर दृष्टिपात किया।

उनकी इस दृष्टि से ही देवकी को सान्त्वना मिली।

'पुत्री, श्रद्धा रख !' मुनि ने कहा, 'तारणहार अवश्य पधारेंगे। इसमे कोई सन्देह नही। और उनका बाल भी बाँका नही होगा, क्योंकि तारणहार और कोई नहीं स्वयं भगवान् का ही अवतार होगा।'

मुनि की यह आर्षवाणी सुनकर देवकी आनन्द से समाधिस्थ हो गई।

७

हस्तिनापुर का प्रसंग

सघन कान्तार के बीच अवस्थित सुरम्य इन्द्रप्रस्थ के मन्दिरों और सदनों को प्रतिबिम्बित करता हुआ यमुना का उन्मत्त जल अस्त होते हुए रवि की किरणों से अठखेलियाँ कर रहा था।

उसी समय, यमुना-तट पर स्थित कौरवो के राज्यमहालय के पूजा-गृह मे महाराज शान्तनु की विधवा पत्नी महादेवी सत्यवती बैठी थी। उनका वर्ण श्याम था, जो उन्हे उनके मछुए पिता से विरासत मे मिला था। फिर भी उनके ललाट पर की भस्मरेखा तथा परिधानस्वरूप सफ़ेद साड़ी से उनके मुखमण्डल की आभा निखर आई थी। उनकी उम्र साठ से कुछ अधिक हो चुकी थी, किन्तु अर्द्ध शताब्दी पूर्व जिस प्रखर सौन्दर्य तथा सुकुमार लावण्य ने पराशर मुनि का हृदय हरण कर लिया था, और जिसके पीछे महाराज शान्तनु अपनी सुध-बुध खो बैठे थे, उस रूप का अवशेष अब भी उनकी मुखमुद्रा और देहयष्टि में दिखाई पड़ता था।

उनकी दाहिनी ओर सुवर्णपत्रो से आच्छादित आसन पर, उनसे उम्र में बीस वर्ष बड़े उनके सौतेले पुत्र, देवव्रत गांगेय बैठे थे। लोग उन्हे भीष्म के नाम से जानते थे। उनके सिर तथा दाढ़ी के केश श्वेत हो चले थे, फिर भी उनके मुख पर अवस्था की सूचक कोई रेखा दृष्टि-गोचर नहीं होती थी। क्षण-भर उनकी भृकुटि में कुछ संकुचन हुआ और आँखों में विषाद के भाव प्रकट हुए।

महारानी के सम्मुख पवित्र दर्भासन पर मुनिवर्य कृष्ण द्वैपायन विराजमान थे। भीष्म की तुलना में उनका वर्ण कुछ श्याम था, किन्तु अपनी माता से अधिक उज्ज्वल था। उनकी मुखाकृति सप्रमाण न थी, किन्तु मुख पर सद्भाव तथा ब्रह्मतेज की दुर्लभ आभा विद्यमान थी। मुनि के अगल-बगल में विदुर और अक्रूर बैठे थे।

'कृष्ण, तुम्हें प्रयाग से अचानक मुझे बुला लेना पड़ा, क्योंकि सम्राट

भरत के कुल पर विपत्ति के बादल फिर घिर आए है। वत्स, तुम्हारे सिवाय हमारी सहायता कौन कर सकता है ? इस प्रकार यदि सभी को बार-बार विपत्ति में डालने के लिए ही मेरा सृजन हुआ तो फिर मुझे विधाता ने जन्म ही क्यों दिया !' भावातिरेक में कातर कण्ठ से सत्यवती बोली।

'माता, आपने मुझे बुलाया, इससे बढकर मेरे लिए प्रसन्नता की और कौनसी बात हो सकती है ?' स्नेह-भरे स्वर मे मुनि ने कहा, 'मुझे इससे कोई असुविधा नही हुई। पूज्यपाद पिताजी जब मुझे आपके पास से ले गये थे, तभी क्या मैंने यह वचन नही दिया था कि आपकी सेवा में जब भी जरूरत पड़ेगी, मै हाजिर हो जाऊँगा ? आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए मै सदैव प्रस्तुत हूँ, जननी !'

व्यास मुनि के ये प्रेमपगे वचन सुनकर देवी सत्यवती के मुख पर शोक के स्थान पर सुख की एक आनन्द मुस्कान थिरक उठी। उनका यह अद्भुत पुत्र वर्षो से दूर रहने पर भी उन्हे अत्यन्त प्रिय था और जब-जब भी उन पर कोई कष्ट-विपत्ति आई, तभी उनका आधारस्तम्भ बना था।

'हमारा दुर्भाग्य तो उसी दिन से शुरू हुआ जब मेरे पिताजी ने कुरुश्रेष्ठ से वचन लिया कि देवव्रत गांगेय सदैव ब्रह्मचारी रहेगे।' मूर्तिमान सयम के समान, स्वस्थ एव शान्त बैठे भीष्म की ओर देखकर खिन्न स्वर में सत्यवती ने कहा, 'विवाह कर लेने के लिए मैने इनसे कहने में कुछ कमी नहीं रखी। किन्तु भीष्म का स्वभाव तो तू जानता ही है कृष्ण, कि वह अपनी प्रतिज्ञा का भंग कदापि नही करेगे, भले ही उससे मुझे, उनके पिता और पूर्वजो को अपार व्यथा पहुँचे।'

'निराश न हो, माता ! मुझसे कहो कि तुम्हे क्या कष्ट है ?' मुनिश्रेष्ठ ने कहा।

आँखों से आँसू पोंछते हुए सत्यवती ने कहा, 'दो वर्ष पूर्व धृतराष्ट्र तथा पाण्डु का विवाहोत्सव हमने मनाया था। तब हमें आशा थी कि कौरव वंश यावच्चद्रदिवाकरौ टिका रहेगा। किन्तु अब···दोनो का विवाह तो हो गया, परन्तु···' महादेवी आगे कुछ नहीं बोल सकी।

'जो भी बात हो, स्पष्ट कहो माँ !'

काँपती हुई आवाज़ में सत्यवती ने कहा, 'धृतराष्ट्र अन्धा है, इसलिए वह राजगद्दी पर नहीं बैठ सकता। उसकी पत्नी गान्धारी सगर्भा है, परन्तु वह शापग्रस्त है। गर्भ रहे हुए उसे एक वर्ष से भी अधिक हो गया, पर प्रसूति अभी भी नही हुई। गर्भ का बालक भीतर-ही-भीतर सूख गया मालूम पड़ता है।'

'कैसा दुर्भाग्य है !' मुनि ने कहा।

'पाडु···' क्षण-भर सत्यवती हिचकी, क्षोभ से जमीन की ओर देखा, फिर हिम्मत कर धीरे से बोली, 'उसके पुत्र नही हो सकता ! कोई सम्भावना नही ! उसे भी शाप लगा है।'

थोड़ी देर के लिए एक कष्टदायी मौन छा गया। तब विषादपूर्ण स्वर मे भीष्म बोले, 'प्रतापी कौरवो की कीर्ति बढाने के लिए मैंने जीवन-भर प्रयत्न किया है, किन्तु अब तो ऐसा लगता है कि उन्हे तर्पण करनेवाला भी कोई नही रहेगा।'

'इसमे दोष मेरा ही है,' सत्यवती बोल उठी, 'जन्म-भर विवाह न करने की प्रतिज्ञा भीष्म ने मेरे लिए ही की थी। उसी पाप की सजा भगवान् शकर मुझे दे रहे है। उदारचित भरतवंश को टिकाये रखने मे क्या तुम मेरी कुछ भी सहायता नही कर सकते, कृष्ण ?'

'और फिर, बात यही शेष नही होती,' मन्द तथा संयत स्वर में भीष्म ने कहा, 'जो विपत्ति इस समय हम पर मँडरा रही है, उसकी खबर दुनिया को लग गई तो कुरुकुल की कीर्ति सदा के लिए अस्तमान हो उठेगी।'

'वीरश्रेष्ठ, मुझसे कहिए, वह विपत्ति कौन-सी है ?' मुनि वेदव्यास ने प्रश्न किया।

प्राचीन काल के सुवर्णयुग नें हमारे दिव्य ऋषियों ने जिन परम-पवित्र वेदमंत्रों का दर्शन किया था उन सबका सकलन कर, संहिता के रूप में उनकी नवरचना करने का भगीरथ कार्य मुनि कृष्ण द्वैपायन ने भली प्रकार सम्पादित किया था। इसीलिए विद्वज्जनों ने उनको 'वेदव्यास' की उपाधि से विभूषित किया था और उसी नाम से सभी उनका

आदरपूर्वक उल्लेख करते थे ।

भीष्म ने कहा, 'पाड्डु की पत्नी कुन्ती वध्यत्व का दु.ख सहन नही कर सकती । उसने अब अग्नि-प्रवेश करने का निश्चय किया है ।'

'इससे तो अच्छा था, मैं ही मृत्यु को प्राप्त हो जाती ।' सत्यवती ने निराशापूर्ण शब्दो मे कहा ।

व्यासजी ने अपनी माता के शोकग्रस्त वदन की ओर देखकर आश्वासन देते हुए कहा, 'माता, निराश मत हो ! इतने वर्ष तो तुमने विधि से हार नही मानी । आर्यश्रेष्ठ भीष्म भी अब तक भाग्य से जूझते आए है । और, अब तक तो तुम दोनो सफल ही रहे हो ।'

'भीष्म पितृलोक मे चले जाएँगे तब हमारा क्या होगा, कृष्ण ?'

'माता, जिस बात का तुम्हे दु:ख है, वह मै अच्छी तरह जानता हूँ । मैं स्वयं भी उससे चिन्तित हूँ । कौरव केवल राजा ही नही, आर्यधर्म के रक्षक भी है । उनका साम्राज्य यदि छिन्न-भिन्न हो जाए तो सर्वत्र अव्यवस्था फैल जाएगी और धर्म का लोप हो जाएगा ।'

'मुनिवर्य, आपने हमारे लिए धर्म का उद्धार किया', भीष्म ने कहा, 'अब भी आपको हमारी मदद करनी होगी । सभी मुनियो में आप ही केवल ऐसे है जो हमारा मार्गदर्शन कर सकते है ।'

'कुन्ती यही है ?'

'हाँ, हमने उसे यही बुला लिया है । हमारी वर्तमान दशा का पता हस्तिनापुर को न लगना चाहिए ।' भीष्म ने कहा ।

महालय के दूसरे खंड में दु:ख की जीवन्त मूर्ति बनी पृथा अपनी वृद्ध धात्री का सहारा लिये बैठी थी । वह थी तो वसुदेव की बहन पृथा, परन्तु कुन्तीभोज के दत्तक ले लेने पर वह कुन्ती कही जाने लगी थी । किसी समय वह सुपुष्ट तथा चपल थी, किन्तु आजकल तो वह रात-दिवस आँसू बहाती हुई घोर निराशा मे जीवन बिता रही थी ।

मुनि को अपनी ओर आते देखकर कुन्ती ने जल्दी से स्वयं को सम्हाला और फिर उनके चरणों पर गिरकर सिसकियाँ भरने लगी । मुनि ने बड़े प्यार से उसे ज़मीन पर से उठाया, उसके सर पर हाथ फेरा और सहारा देकर उसे आसन पर बिठाया । उसके समीप ही

परिचारिकाओ ने जो दर्भासन बिछा दिया था उस पर वे स्वयं विराजे। परिचारिकाओ को आशीर्वाद देकर उन्होने विदा कर दिया।

'कुन्ती, यह सब क्या हो रहा है ?'

'प्रभु, मुझे अब जीवित नहीं रहना ! किसी हालत मे नही ! मैं मरना चाहती हूँ।' कातर कण्ठ से कुन्ती बोली।

'बेटी, पाडु को जो शाप लगा है उसकी खबर मुझे है। किन्तु तुझे उससे दुखी नही होना चाहिए।'

'सुख तो मुझे कभी मिलने का नही, प्रभु ! फिर मैं जीकर ही क्या करूँगी ? बच्चे मुझे कितने अच्छे लगते है, यह तो आप जानते ही हैं। अपने एकमात्र पुत्र का मुख केवल उसके जन्म के समय मैंने देखा था। फिर दूसरी बार नही देख सकी। माँ की ममता से वचित उसका भोला मुख मेरी आँखों के सामने दिन-रात मँडराता रहता है। उसकी प्रेम-प्यासी आँखे उस पाषाणहृदया निष्ठुर माँ के लिए तरसती होंगी जिसने जन्मते ही उसे अपने से दूर कर दिया। अहा, वह कितना सुन्दर था ! आप ही उसे ले गए थे···क्षमा करे प्रभु, मैं पागल हो गई हूँ। आप ही की अवहेलना करने लगी। किन्तु प्रभु, अब···अब मैं माँ नही बन सकती, कदापि नही, कभी नही ! मेरा जीवन ही व्यर्थ है। मृत्यु के सिवा मेरे लिए अन्य कोई मार्ग नहीं, कोई मार्ग नही।'

मुनि ने ममता से, बड़ी कोमलता से कुन्ती के मस्तक पर हाथ रखा। उनके मुख पर सदा वर्तमान स्मित, पर-हृदय परखने की उनकी शक्ति तथा उनके स्नेह-भाव का कुन्ती पर जादू का-सा असर हुआ, और वह घोर मनोव्यथा से कुछ मुक्ति अनुभव करने लगी।

मुनि ने फिर ममता-भरी, मीठी आवाज़ में कहा, 'बेटी, तेरा हृदय अत्यन्त स्नेहपूर्ण तथा भावुक है। अपनी गोद मे बालको को खिलाने की तेरी इच्छा कितनी बलवती है, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ।'

'प्रभु, आपके समक्ष मैंने ऐसे वचन कहे, इसके लिए मैं लज्जित हूँ। परन्तु मैं क्या करूँ ? मैं तो सभी सयम खो बैठी हूँ।'

'कुन्ती, इसमें लजाने की कोई बात नही। वात्सल्य ही तो नारी मात्र को देवी का स्वरूप बनाता है। जो स्त्री सन्तानविहीना रहना

चाहती है, बालको से दूर भागती है, अपनी सन्तान के लिए जीवन व्यतीत करना नही चाहती, वह केवल राक्षसी ही नही, कुल के लिए शाप रूप है, धर्म-विनाशिनी है ।'

मुनि वेदव्यास के इन शब्दो को सुनकर कुन्ती यह सोचकर कि सुख की आशा अब उसे नही रही, फिर से हिचकियाँ भरने लगी । स्नेह-शील, ममता-भरी माँ की तरह कुन्ती के केश सहलाते हुए मुनि ने आश्वासन-भरी वाणी मे कहा,'कुन्ती, तेरी आशा सफल होगी । कुरुवश का उच्छेद नही होगा। तब तो तू प्रसन्न होगी न?'

आँसुओ से अवरुद्ध कुन्ती ने किसी नवीन तथा अचित्य आशा से मुनि की ओर आतुर दृष्टि से देखा । कुछ देर तो मुनि मौन रहे, फिर बोले, 'कुन्ती, हमारे पूज्य महर्षियों का यह आदेश है कि धर्म के संरक्षण हेतु किसी भी प्रकार से कुल का नाश न हो, ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए। सन्तानों के प्रति स्नेहशील, उनके लिए जीवन समर्पण करनेवाली पति-परायणा स्त्री ही धर्म का आधार-स्तम्भ है । प्राचीन मत्रद्रष्टाओ ने भी 'नियोग' के लिए सम्मति प्रदान की है । इसलिए मेरे कहे अनुसार यदि तू व्रत का पालन करेगी तो अवश्य सन्तान प्राप्त करेगी ।'

'आप जो भी आज्ञा देंगे, वह मै सहर्ष धारण करूँगी, प्रभु !' कुन्ती ने हृदय मे एक अकल्प आशा का संचार अनुभव करते हुए कहा, 'परन्तु कुरुओ में श्रेष्ठ अपने स्वामी से द्रोह तो कदापि नही कर सकूँगी ।'

'तेरा सतीत्व अखंड रहेगा, पुत्री ! पाडु तुझे आदेश देगे तथा गुरु-जन अनुमति देगे । फिर क्या आपत्ति है ? देवो का आह्वान करने के लिए मै तुझे योग्य मंत्रो की शिक्षा दूँगा । इन मत्रो का पाठ करते समय तू उन देवताओं का एकचित्त हो ध्यान धरना । वे तुझे आशीर्वाद देंगे । इसके बाद योग्य विधि से अपने शरीर का समर्पण करना । ऐसा करते हुए भी तुझे अपने मन में विचार तो अपने पति का ही करना है, तथा पति के अतिरिक्त अन्य किसी को अपने प्रेम और कामना का पात्र नही बनाना है । यदि तू ऐसा करेगी तो देवाधिदेव महादेव का आशीर्वाद तुझे प्राप्त होगा ।'

'प्रभु, लेकिन क्या यह उचित है ?' कुन्ती ने शंका की ।

'हाँ, उचित है, बेटी ! इस रीति से यदि कोई तरुण स्त्री एक

निष्ठा से पतिपरायणा रहकर उनकी सेवा के लिए पुत्र प्राप्त करे, तो इसमे कुछ भी अनुचित नही। यह तो उसका परम धर्म है। तू 'प्रणीत' पुत्रो की माता बनेगी। यह मेरा आशीर्वाद है। तेरी ये सन्ताने धर्म का सरक्षण करेगी। इसलिए चिन्ता छोड़, जीवन को स्वीकार और प्रसन्नचित्त हो! सत्यवती का पुत्र तुझे वचन देता है।'

मुनि की यह आर्षवाणी सुनकर कुन्ती के हृदय में आनन्द का सागर हिलोरे लेने लगा।

८

मथुरा में नन्द का आगमन

ब्रजभूमि पर अकाल का प्रकोप हुआ, नदी-नाले सूख गए, यमुना का नीर भी घट गया।

ब्रज के सुन्दर ग्राम, गोकुल की दशा शोचनीय थी। कुओं का पानी दुष्प्राप्य बन गया था। जल के बिना गाये अस्थिपजर-मात्र रह गई थीं। गोप-गोपियों के मुख पर से हँसी जाती रही थी; नृत्यगीत वे भूल-से गए थे।

गोकुल के शूर यादवकुल के अधिपति नन्द आतुर नयनो से आकाश की ओर ताक रहे थे। किसी समय महारानियो की तरह मदमस्त उनकी तीन सौ गायें हरी-भरी तृणभूमि पर स्वच्छन्द विहार करती थीं, किन्तु अब वे प्यास से व्याकुल हो सूखे खेतों में भटकती फिरती थीं। कितनी ही तो ऊपर की ओर दयार्द्र दृष्टि से देखती हुई मरणासन्न पड़ी थीं।

गोकुल के प्रत्येक नर-नारी की देखभाल नन्द बाबा स्वयं अपनी

सन्तान के समान करते थे; अपनी गायों से भी अधिक चिन्ता उन्हे गोकुल-वासियो की थी। उनकी पत्नी यशोदा भी उन पर माता के समान वात्सल्य-भाव रखती थी। उन्होने सभी स्त्रियो को बुलाया और उनके पास जो भी था उसे एक स्थान पर एकत्रित कर उसके समान वितरण की ऐसी व्यवस्था की कि गोकुल मे कोई भूखो न मरे।

ऐसी भीषण अनावृष्टि का प्रकोप पहले कभी ब्रजभूमि पर नही हुआ था। इसलिए लोगो के मन में तरह-तरह की शकाएँ तथा भय का उठना स्वाभाविक ही था। वे जानते थे कि जब राजा दुष्ट होता है, तभी ऐसी विपत्ति प्रजा पर आती है। कस के पाप से ही देवता कुपित हो रहे हैं, यह विश्वास सभी को हो गया था। अधिकाश ब्रजवासी इसी विचार से सन्त्रस्त थे।

मथुरा में भी कस के चाटुकारो के अतिरिक्त अन्य सभी उससे तंग आ चुके थे। अब तक देवकी के छ: पुत्रो की कंस ने हत्या कर दी थी। जब-जब भी वह नवजात शिशुओ के प्राण हरण करता, लोगो में रोष फैल जाता। परन्तु आकाशवाणी सच्ची साबित होगी और इन पापकृत्यो के परिणामस्वरूप तारणहार शीघ्र ही अवतरित होंगे, इसी श्रद्धा से वे आश्वस्त थे।

एक दिन शूर यादवों के कुलगुरु गर्गाचार्य लम्बे प्रवास के बाद गोकुल लौटे और नन्द से उन्होने देर तक मन्त्रणा की। गर्ग का मुख चिन्तातुर था, सदा वर्तमान स्मित के स्थान पर उस पर कठोरता के चिह्न अंकित थे।

दूसरे दिन, गर्ग ने जैसा कि नन्द को सचेत किया था, कंस के आदमी गोकुल आये और नन्द को यह सन्देश सुनाया कि युवराज आपको मथुरा बुला रहे है। कंस की इस आज्ञा का पालन करने का निश्चय नन्द ने पहले ही कर लिया था। तुरन्त ही आठ गाडियाँ तैयार की गई और गोकुल के अधिपति तलवार तथा भालो से सुसज्जित दस वीर शूरो को लेकर मथुरा के लिए रवाना हुए।

पिछले छ: महीनो से कस अधिकाधिक चिन्ताग्रस्त हो रहा था। उसे किसा तरह भी चैन नही पड़ता था। वह समझता था कि प्रत्येक

व्यक्ति उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रच रहा है। वास्तविक अथवा काल्पनिक दोनो ही तरह के शत्रुओं को हराने की योजनाओ मे वह दिन-रात उलझा रहता। रात-भर नीद उसे इस आशका मे भी नही आती कि स्वयं उसके सेवक भी उसके प्रति षड्यन्त्र रच रहे है। और, यादव तो उद्धारक की प्रतीक्षा कर ही रहे थे !

उद्धारक का जन्म तो अभी नहीं हुआ था, लेकिन कस को अपनी आँखों के आगे हर समय वह ही दिखाई देते। मथुरा के नर-नारी छिप-छिपकर इस बारे मे क्या चर्चा करते है, इसकी खबर भी वह रखता था। और इस सबका परिणाम यह हुआ कि वह स्वयं को किसी जाल में फँसे हुए प्राणी की तरह अनुभव करता। रात्रि में अनेक बार वह दुस्वप्नो से त्रस्त हो जग पड़ता, उसका शरीर पसीना-पसीना हो जाता और हृदय की धड़कन तेज़ हो जाती। रोज सुवह वह दाँत पीसकर निश्चय करता कि चाहे कुछ भी हो जाए, विजय वह प्राप्त करके ही रहेगा।

और तब अनावृष्टि और फिर अकाल का प्रकोप हुआ। फलस्वरूप लोगो में और भी असन्तोष फैल गया। प्रत्येक प्रजाजन की आँखो मे कस को रोष का भाव दिखाई पड़ता, जिससे भयभीत हो उसने उन्हें और भी दबाने का निश्चय किया। उसने अपने आदमी देश-भर में दौड़ाये, जो किसानों तथा गोपालों की ज़मीनें ज़ब्त करने तथा पशुओं को बल-पूर्वक ले जाने की धमकी देते थे।

देवकी का सातवाँ बालक कब जन्म लेगा, इसकी बारीक छानबीन भी अब कंस करने लगा। उसे कई बार शंका होती—सातवाँ या आठवाँ ?

शूरों मे इस बात को लेकर काफ़ी चर्चा और खुशी थी कि देवकी के शीघ्र ही प्रसव होनेवाला है। कंस को यह भी खबर मिली कि वे लोग उद्धारक के प्रकट होने की लुक-छिपकर बातें कर रहे हैं। नन्द शूरकुल के सर्वाधिक समर्थ व्यक्ति थे और कुल के पिता के समान थे। वह प्रकट में तो उद्धारक के विषय में कुछ भी नही कहते थे, परन्तु कंस यह जानता था कि अन्य शूर यादवों की भाँति नन्द को भी यही विश्वास है कि उद्धारक शूरकुल में ही जन्म लेंगे।

शूरकुल के अतिरिक्त अन्य कुलों के यादवों मे भी यही विश्वास फैल रहा था। स्वयं इतना समर्थ होते हुए भी लोग उसके संहारक की प्रतीक्षा कर रहे हैं, यह सोचकर कस अत्यन्त क्रोधान्वित हो जाता। उसे लगता कि इसका शीघ्र ही कुछ उपाय करना चाहिए। उसने नन्द को बुला भेजा। नन्द ने आकर ससम्मान उसके चरणों मे भेंट रखी। कस उनकी ओर रोषयुक्त दृष्टि से देख रहा था। नन्द के पीछे उनके साथी तरुण शूर विनयपूर्वक चुपचाप खड़े थे।

कस ने नन्द से कहा, 'नन्द, मै तो समझता था कि तुम एक समझदार आदमी हो, परन्तु तुमने पिछले साल का लगान भी नही दिया! तुम्हारा इरादा क्या है?'

'उदारचरित युवराज, आप जानते है कि पिछली साल देश पर अनावृष्टि का संकट आया था और उसके बाद आया यह अकाल! हम भूखों मर रहे है। पानी के बिना हमारे प्यासे ढोर मृत्यु की शरण चले गए है। लगान हम कैसे, किस प्रकार दे?' हाथ जोड़कर मुख पर मुस्कान लाते हुए नन्द ने कहा।

'कैसे और किस प्रकार, यह मै नही जानता, मुझे तो मेरा लगान चाहिए। और, जो तुम नही दो तो इसका फल क्या होगा, जानते हो? तुम्हारी सारी जमीन मै जब्त कर लूँगा। उस पर मेरे आदमी खेती करेंगे और वे तुमसे अधिक सफल सिद्ध होंगे।'

'आप मालिक हैं, राजकुमार!' सस्मित वदन नन्द ने कहा, 'परन्तु जमीन हमारी है। आप हमारे स्वामी अवश्य है, फिर भी किसान का अपनी ज़मीन के टुकड़े पर, चाहे वह कितना ही छोटा क्यो न हो, अधिकार है। उसके लिए उसके पूर्वजों ने, उसके कुटुम्बीजनो और स्वय उसने प्राणों की बाज़ी लगाई है। मै कोई विद्वान नही, लेकिन इतना अवश्य कहूँगा कि किसान से उसकी ज़मीन छीन लेना धर्म का काम नही। मुझे विश्वास है कि आप-जैसे उदारचरित राजकुमार के हाथों ऐसे अधर्म का काम नही हो सकता। यदि आप ऐसा करे, तो आपको देवताओ का कोपभाजन बनना पड़ेगा।'

'तुम्हारी जमीन से यदि मुझे अधिक द्रव्य मिल सके और उससे मेरी

शक्ति बढे, तो मै हज़ार बार अधर्म का आचरण करने को तैयार हूँ। मुझे अपने सैनिको का, सेवको का पोषण करना है, समझे ! अपना लगान कब देते हो, बोलो ?' कस ने क्रोधित होकर कहा।

'लगान देना है, यह सही है; परन्तु देवकृपा से वर्षा हो तथा हमारी गाये अच्छी तरह दूध देने लग जाएँ तब !' नन्द ने उत्तर दिया।

'अच्छा नन्द, मैं तब तक प्रतीक्षा करूँगा। इस समय तो मैं तुम्हें तुम्हारे साथियो सहित जाने देता हूँ, किन्तु यदि तुमने मेरे विरुद्ध ज़रा भी आवाज़ उठाई, तो मै तुम्हे तथा तुम्हारे कुल के सभी लोगों को जीवित नही छोडूँगा। और, यह तारणहार की क्या बात मैं सुन रहा हूँ ? यह क्या बकवास कर रहे हो तुम लोग ? क्या तुम मेरी मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे हो ?'

'तारणहार ! वह क्या है ? कौन ऐसी बातें कर रहा है ?' नन्द ने अजान होकर पूछा।

'तुम्हारे शूरकुल के यादव ! उनसे कहो कि वे अपना मुँह बन्द रखे।' कंस ने जोर देकर कहा।

'जैसी प्रभु की आज्ञा !'

'अच्छा, अब जाओ !' कस फिर से गरज उठा।

'राजकुमार ! यदि आप अनुमति दे, तो मै आपसे कुछ निवेदन करूँ ?' नन्द ने कहा।

'क्या कहना है ?'

'यदि आपकी इच्छा है कि मै अपने शूरकुल के यादवो को समझाऊँ, तो आप मुझे हमारे नायक वसुदेव से मिलने की अनुमति दे। इससे मुझे उनकी ओर से भी शूरों को समझाने में मदद मिलेगी।'

'तुम्हे जो करना है सो करो, परन्तु इतना याद रखना कि यदि ज़रा भी चालबाजी की तो ज़मीन का एक टुकड़ा भी तुम्हारे पास नही रहने दिया जाएगा।'

'आप तो समस्त पृथ्वी के अधिपति हैं प्रभु !' नन्द ने सस्मित वदन कहा और फिर राजकुमार को प्रणाम कर वहाँ से चल दिए।

वृष्णिकुल के अक्रूर तथा शूरों के कुलगुरु गर्गाचार्य को साथ लेकर नन्द वसुदेव-देवकी से मिलने गये। वसुदेव की ज्येष्ठ पत्नी आसन्नप्रसवा रोहिणी भी वही थी।

मन्त्रणा काफी देर तक चलती रही। परिस्थिति उस समय कुछ ऐसी ही विषम बन गई थी। कस के जाल मे से बच निकलने का कोई उपाय नही दीख रहा था। तब रोहिणी ने कहा, 'भविष्यवाणी अवश्य सच होगी।' उसका मुखमण्डल गम्भीर हो उठा, आँखो में अश्रु उमड़ पड़े। कुछ-न-कुछ उपाय ढूँढ निकालने के लिए वह कृतसकल्प थी।

दूसरे दिन सबेरे ही रोहिणी ने नन्द के साथ गोकुल के लिए प्रस्थान किया, परन्तु नन्द के आदमी जिन गाड़ियो में मथुरा आये थे, वे सब गोकुल नही लौटी। जिस गाडी मे नन्द और रोहिणी बैठे थे, केवल वही गोकुल पहुँची, अन्य सब गाड़ियाँ मार्ग मे भिन्न-भिन्न रास्तों पर चल पड़ी।

उसी रात कस को एक स्वप्न दीखा, जिससे भयभीत हो वह चीख पडा। वह जगकर उठ बैठा, तब भी उसका अग-अग काँप रहा था, साँस भर आई थी। स्वप्न में उसने देखा कि वह हाथ मे नगी तलवार लिये वहाँ जा पहुँचा, जहाँ देवकी को बन्दी रखा गया था।वहाँ पर उसने देवकी की कोख मे दो बच्चों को निर्भय खेलते देखा। नीलकमल के समान उसका आठवाँ बालक हृष्टपुष्ट था और प्रतिक्षण बढता ही जाता था। कस का तलवार धारण किया हुआ हाथ व्यर्थ साबित हुआ और वह भ्रम मे पड़ गया। उस बालक का मुख तेज से प्रकाशमान था, उसके मस्तक पर मुकुट और हाथ में चक्र था। वह स्वयं मूर्तिवत् खड़ा उसे देखता ही रहा और···चक्र उसकी ओर आकर उसका मस्तक विच्छेद कर वापस चला गया···उसने अपने मस्तक को गिरते-लुढकते और अन्त में रक्त से सना धरती पर स्थिर होते देखा। उसने यह भी देखा कि उस बालक के मुख पर थिरकती मुस्कान कभी मन्द पड़ती ही न थी···

कंस ने तब देवकी के प्रहरी सरदार प्रद्योत की भयंकर पत्नी पूतना को बुला भेजा। वह उसकी विशेष सलाहकार थी। पूतना को उसने इस दुःस्वप्न का हाल कहा और यह पता लगाने की आज्ञा दी कि

देवकी के शीघ्र ही पुत्र जन्म होने की सम्भावना है या नही। पूतना ने अच्छी तरह जॉच-पड़ताल कर कस को खबर दी कि देवकी के प्रसूति होने मे अभी कम-से-कम तीस दिन की देर है।

यह सुनकर कस को कुछ शान्ति मिली।

६

बलराम का जन्म

दस दिन तक वसुदेव और देवकी निरन्तर प्रार्थनालीन रहे। प्रभु के अवतार लेने का आश्वासन उन्हे मिल चुका था; और, वेदव्यास के वचन कभी नही हो सकते, इस बल पर देवकी सन्तुष्ट थी।

देवकी तथा वसुदेव ने किस साहस और धैर्य के साथ अपने पर आए अनेक सकटों का सामना किया था, यह बात महल के चौकीदारों से छिपी नही थी। उनके हृदय भी आखिर पत्थर के तो थे नही! वे भी अब मन-ही-मन कामना करने लगे थे कि शूरों के सरदार वसुदेव और उनकी पत्नी देवकी पर कोई नई विपत्ति न आये। व्यास की भविष्य-वाणी के बारे मे उन्होने भी सुन रखा था और भविष्य मे उद्धारक के अवतरित होने के अक्रूर के विश्वास से भी वे सुपरिचित थे। यहॉ तक कि हृदय से वे भी अब चाहने लगे थे कि यह अवतार शीघ्र ही हो।

गोकुल के अधिपति नन्द को मथुरा से गए दस दिन हो चुके थे। तब वसुदेव और देवकी को जिस महल में रखा गया था उसके ठीक सामने मध्य रात्रि को एक नौका गुप्त रूप से आकर रुकी। नौका में तीन पुरुष थे, जिनमें से एक आदमी अपने हाथ में एक गठरी लिये उतरा। अक्रूर,

जो पहले से ही वहाँ प्रतीक्षारत खड़े थे, उसे देखते ही घाट की सीढियाँ उतरकर नीचे पहुँचे ।

'वृष्णिश्रेष्ठ, मैं आ गया हूँ ।' उस तरुण ने कहा ।

कुछ भी उत्तर दिये बिना अक्रूर ने उसके हाथ मे जो गठरी थी उस पर दृष्टि डाली ।

'जी, जन्मते ही मृत्यु को प्राप्त हुई बालिका है ।'

मौन भाव से मानो ईश्वर की प्रार्थना कर रहे हो, इस प्रकार अक्रूर ने आकाश की ओर देखा ।

तभी वहाँ पर पहरा देनेवाले दो चौकीदार करीब आ गए । अक्रूर ने उनमे से एक के कान मे धीरे से कहा, 'देवकी का जीवन बचाने के लिए गर्गाचार्य ने इस ब्राह्मण को मन्त्रपाठ के लिए बुलाया है । तुम जाकर अपने स्वामी कस को खबर दो कि देवकी के पुत्र होने की बेला आ पहुँची है ।'

आश्चर्य से आँखें फाड़कर चौकीदारों ने यह खबर सुनी और फिर तुरन्त ही कंस को उसकी सूचना देने दौड़ पड़े ।

दो वृद्धा स्त्रियो सहित गर्गाचार्य उस तरुण पुरुष की प्रतीक्षा मे बैठे थे । थोड़ी देर तक उन्होंने बहुत धीरे से कुछ बातचीत की । वसुदेव देवकी की बगल मे बैठे थे । पति के हाथ मे अपना हाथ रखकर देवकी आँखे मूँदे लेटी थी । गर्गाचार्य ने तब देवकी को वही पर बैठी एक दाई के साथ भीतरी खंड में जाने के लिए इशारा किया । देवकी के मस्तक पर अपना हाथ रखते हुए उन्होंने कहा, 'बेटी, प्रभु तुझे शक्ति दे !'

'गुरुदेव, चिन्ता न करें । आवश्यकता पड़ने पर मै अग्नि में भी कूद पड़ने को तैयार हूँ । मुझे अब कोई भय नही ।' सस्मितवदन देवकी ने कहा, 'इन दो दिनों से मुझे ऐसा लगता है मानो हज़ार फनवाले शेषनाग यहाँ आकर मेरी रक्षा कर रहे है ।'

दोनों हाथ जोड़कर उसने गुरु तथा वसुदेव के चरण छुए और फिर वृद्धा स्त्रियों सहित अन्दर चली गई । नवागंतुक तरुण ने अपने हाथ की गठरी उन दो वृद्धा स्त्रियों मे से एक को सौंप दी ।

थोड़ी देर तक तो वातावरण शान्त रहा, फिर देवकी की कष्ट-भरी चीखें

सुनाई पडने लगी। वे अधिकाधिक वेदनामयी होती गई। फिर एक बड़े जोर की चीख और सुबकियाँ सुनाई पड़ी।

गर्गाचार्य, अक्रूर, वसुदेव तथा नवागन्तुक तरुण बड़ी आतुरता से प्रतीक्षा कर रहे थे। थोड़ी देर बाद एक बलिष्ठ नवजात शिशु का सशक्त स्वर सुनाई पड़ा। जब वह चुप हो गया तब दो में से एक वृद्धा ने आकर प्रतीक्षारत पुरुषों से कहा, 'लड़का हुआ है, काफी बलिष्ठ है।' उसके दन्तविहीन मुख पर अपार आनन्द को व्यक्त करती एक विचित्र हास्य-रेखा दौड़ गई। अधीर होकर उसने कहा, 'चलियें, चलिये, आप लोग भी सब चलकर देखे।'

आहिस्ता से चलकर वे लोग भीतरी खण्ड के नजदीक पहुँचे और खुले दरवाज़े मे से अन्दर झाँका। कमरे में देवकी एक ओर लेटी हुई थी। वह काफी थकी हुई और मुरझाई-सी लगती थी। उसकी बगल में नव-जात शिशु लेटा हुआ यथेच्छ रूप से स्तनपान कर रहा था। उसका जन्म गर्भ-काल की पूरी अवधि से पहले ही हुआ था, फिर भी उसके शरीर का विकास पूर्ण था।

'यह अवसर जरा भी समय नष्ट करने का नही है,' अक्रूर ने कहा, 'चौकीदार कंस को खबर देने गये है और वे कभी भी वापस आ सकते है।'

देवकी ने मुस्कराकर कहा, 'मुझे मालूम है।' किसी अमूल्य निधि की तरह बालक को हृदय से चिपकाकर देवकी ने वृद्धा को उस पर चिह्न अंकित कर ले जाने को कहा। आँखों से उमड़ रहे आँसुओं को उसने रोक लिया।

वृद्धा ने बालक को ले लिया। वह फिर से रोने लगा। वृद्धा ने उसे नहलाकर जमीन पर सुलाया। गर्गाचार्य ने मन्त्रों का पाठ करते हुए उसके गले मे डोरा बाँधा।

'इस बच्चे का नाम क्या रखा जाए?' गर्गाचार्य ने पूछा।

'देवकी, तुम्हे कौनसा नाम पसन्द है?' वसुदेव ने अपनी पत्नी की ओर प्रशसा-भरी दृष्टि डालकर प्रेम से पूछा।

'बच्चा बहुत बलवान दिखाई पड़ता है। इसका नाम बल रखो।' देवकी ने कहा।

'गुरुदेव, आप कौनसा नाम रखेगे ?' वसुदेव ने कुलगुरु से प्रश्न किया।

'मै तो इसे सकर्षण कहूँगा। इसका जन्म पूर्ण गर्भावस्था से पहले ही हुआ है, इसे खीचकर बाहर निकाला गया है, इसलिए यही नाम उपयुक्त है।' गर्गाचार्य ने मुस्कराकर कहा।

वसुदेव ने बालक को गर्गाचार्य से अपने हाथ मे लिया, प्रेमपूर्वक उसे अपनी छाती से लगाया और फिर उस आगन्तुक तरुण को सौप दिया। तरुण तुरन्त ही बालक को लेकर महल से बाहर चला गया।

उधर कस के महल मे चौकीदारों ने दौड़कर देवकी की प्रसूति के समाचार पहुँचाये। यदि ये समाचार मिलने मे जरा भी विलम्ब हुआ तो कस उनके प्राण ले लेगा, इस बारे मे उन्हें जरा भी सन्देह नही था। एक चौकीदार से दूसरे और दूसरे से तीसरे, इस प्रकार पूरे महल मे यह सन्देश फैल गया कि राजकुमारी देवकी के प्रसूति की वेला आ पहुँची है।

सरदार प्रद्योत ने जब यह समाचार सुना तो फ़ौरन कस के पास दौड़ा गया और उसे खबर दी। कस मानो किसी दुःस्वप्न में से जाग उठा हो, इस प्रकार उठ बैठा। उसकी आँखे लाल हो गई। हाथ मे तलवार लेकर उसने रथ तैयार करने का आदेश दिया। सरदार प्रद्योत तथा उसकी पत्नी पूतना को भी अपने साथ चलने का आदेश दिया। उसके मन में भयकर क्रोध प्रज्वलित हो उठा था। साथ ही यह भय भी उसे हुआ कि देवकी के कही जुडवाँ पुत्र पैदा न हो। दस दिन पहले जो स्वप्न उसे आया था उसका कुछ प्रभाव अभी तक उसके मन पर था।

वसुदेव तथा देवकी के बन्दीगृह के आसपास का शान्त वातावरण घोड़ो की टाप और रथ के पहियों की खड़खड़ाहट से गूँज उठा। महल में जब कस अपने पीछे प्रद्योत और पूतना को लिये घुसा, तो उसने प्रवेश-द्वार पर ही गर्गाचार्य और वसुदेव को अपने सत्कार के लिए खड़ा पाया।

'कहाँ है वे बालक ?' कंस ने चीखकर कहा।

'बालक ! कौनसे बालक ?' गर्गाचार्य ने पूछा।

'देवकी की कोख से जन्मे जुड़वाँ बालक !'

'बालक तो कोई नही हुआ; हाँ एक पुत्री का जन्म अवश्य हुआ है।' वसुदेव ने कहा।

जिस खण्ड मे देवकी लेटी थी वहाँ जाने को प्रस्तुत होकर कस ने कहा, 'तुम झूठ बोलते हो। पूतना, अन्दर जाकर ठीक से देखो कि सच्ची बात क्या है—वह लडकी कहाँ है ?'

'यह रही।' गर्गाचार्य ने कहा, और जिस मृत बालिका को गोकुल से वह तरुण ब्राह्मण ले आया था, उसके मुख पर से ओढाया हुआ कपड़ा वृद्धा ने हटा दिया ।

कंस स्तब्ध हो, आँखें फाड़-फाड़कर उस बालिका की मृत देह की ओर देखने लगा। फिर जैसे स्वप्न में से जग उठा हो, इस तरह पूतना और उसके पति, चौकीदारो के सरदार प्रद्युम्न, को चीखकर उसने हुक्म दिया, 'इस महल का कोना-कोना छान डालो—मुझे इसमे कपट की गन्ध आ रही है।'

सारे महल का कोना-कोना छान डाला गया; परन्तु प्रद्युम्न और उसकी पत्नी पूतना को कहीं कुछ सन्देहास्पद नही मिला। हताश होकर कंस अपने महल वापस चला गया। क्रोध का स्थान अब उसके मन में विषाद ने ले लिया था। जिनकी प्रत्याशा नही थी, ऐसी घटनाएँ अब घटने लगी थी। उसे लगा कि कोई अज्ञात शक्ति उसे चारों ओर से दबोच रही है।

कुछ समय बाद यह सोचकर कि यह तो देवकी की सातवीं सन्तान है, उसे कुछ शान्ति मिली। आठवीं सन्तान होने में अभी काफी देर है और इस बीच काफ़ी सावधानी बरती जा सकती है। एक मन तो उसका देवकी का तत्काल वध करने को हुआ, परन्तु यह सोचकर कि यदि मैं ऐसा करूँ तो मेरे पिता तथा चाचा उपवास कर देह त्याग देंगे और यादव बलवा करने पर उतर आएँगे, उसने अपने मन को समझाया। इससे तो देवकी की आठवी सन्तान की प्रतीक्षा करना ही बेहतर होगा।

देवकी के पुत्र को ले जाने वाला तरुण ब्राह्मण एक योग्य वैद्य भी था। कभी न सन्तुष्ट होने वाली उस प्रबल क्षुधा के बालक को उसने

शहद मे भीगी रूई चूसने को दी। सवेरा होने से पहले ही वह गोकुल पहुँच गया। वहाँ उस बालक को उसने वसुदेव की ज्येष्ठ पत्नी रोहिणी के हाथ मे सौप दिया। रोहिणी उन दिनो नन्द की अतिथि बनकर गोकुल में रह रही थी। उस हृष्ट-पुष्ट बालक के भोले-से चेहरे पर अपने पति की मुखरेखाओं को अंकित देखकर वह एक सहज स्नेह और अपार आनन्द से सराबोर हो गई।

बालको को उसने पय.पान कराया, पालने मे सुलाया और फिर स्वय भी सो गई। किन्तु थोड़ी देर बाद जब वह जगी तो जो दृश्य उसने देखा उससे स्तब्ध रह गई। पालने पर, छत्र के समान अपने फनो को उठाये एक प्रचण्ड नाग डोल रहा था। भय और आशका से विह्वल हो रोहिणी चित्रलिखित-सी बस देखती ही रही। एक-एक क्षण उसे अनन्त युगो-सा दिखाई पडा। वह चीख भी नही सकती थी, क्योकि उसे भय था कि आवाज से चौककर नाग शायद बालक को डस ले।

आखिर वह भयंकर घडी भी टल गई। थोड़ी देर तक पालने पर छत्र कर नाग अपने विशाल फन समेट धीरे से चला गया। उसके जाते ही रोहिणी पालने के पास आ गई। बालक बड़े मजे से सो रहा था और उसके बालमुख पर मुस्कान थिरक रही थी।

१०

आठवीं सन्तान

समस्त ब्रजभूमि की जनता बड़ी आशा से भविष्य की ओर टकटकी लगाये थी। प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने ढँग से बड़ी अधीरता के

साथ प्रतीक्षारत था। शूरो के सरदार वसुदेव की धर्मपत्नी देवकी की कोख से आठवी सन्तान के अवतरित होने का समय आ पहुँचा था।

ज्यों-ज्यो प्रसूति का समय नज़दीक आता जाता था, देवकी दिनों-दिन वसन्तकाल के पुष्प के समान प्रफुल्लित होती जाती थी। ऐसे आनन्द का अनुभव उसे पहले कभी नही हुआ था। सोते-जागते, हर समय उसे भगवान् के दर्शन होते और उसकी आँखे भक्ति-भाव से चमक उठती।

फिर भी वह चिन्तातुर अवश्य थी। अपने-जैसी निर्बल, नि:सहाय और निर्भागी स्त्री की कोख से स्वय भगवान् अवतार धारण करेंगे, यह मानना कभी-कभी उसके लिए बहुत मुश्किल हो जाता। उसका मन सदा इसी ऊहापोह में रहता कि क्या उसकी आठवी सन्तान यादवों को दुष्ट कस के पजे से मुक्ति दिला सकेगी, अथवा कस उसकी भी हत्या कर देगा?

इन शकाओ के रहते हुए भी उसकी श्रद्धा कभी नही डगमगाई। वह सोचती कि क्या नारदमुनि की भविष्यवाणी और मुनि वेदव्यास के वचन कभी मिथ्या हो सकते है!

उधर कंस ने प्रसूति का समय निकट आया जानकर अपने इन्तजाम में अधिक सख्ती करना शुरू कर दिया। जिस महल मे देवकी तथा वसुदेव को बन्दी रखा गया था, वहाँ से सभी परिचारकों को वापस बुला लिया गया। इस बार किसी दाई की व्यवस्था भी नही की गई। उसके स्थान पर अपने अंगरक्षकों के सरदार और विशेष विश्वासपात्र प्रद्योत की पत्नी पूतना को वहाँ रखा गया; किन्तु पूतना देवकी को इतनी अप्रिय थी कि वह उसे अपने पास तक नही फटकने देती।

देवकी को दासी के अभाव में कोई कष्ट न हो और उसे अकेलापन नहीं अखरे, इसलिए वसुदेव स्वयं अपनी सुन्दर और सुकुमार पत्नी का हर समय ख़याल रखते। वह उन्हें अत्यन्त प्रिय थी और उसकी हर इच्छा पूरी करने को वह सदा तत्पर रहते थे। उसके साथ प्रार्थना में वह शरीक होते और जब भी वह चिन्तातुर दिखाई पड़ती, तब उसके पास बैठकर वह उसे अपनी प्रेमपगी वाणी से आश्वस्त करते। यमुना की तरगों को देखती हुई जब वह झरोखे में लेटी रहती, तब प्राचीन काल के वीर

पुरुषों की गाथाएँ सुनाकर वह उसका मनोरजन भी करते ।

भगवान् विष्णु और उनकी कृपा की चर्चा इस श्रद्धालु दम्पति का प्रधान और प्रिय विषय था। अटूट श्रद्धा की शृखला से बद्ध उन दोनो के हृदय एक हो गए थे। कई बार तो भगवान् की चर्चा करते समय उन्हे ऐसा लगता कि प्रभु स्वय अपने हाथ पसारकर उन्हें आशीर्वाद दे रहे है।

ब्रजभूमि के गाँवो और आश्रमो के वासियों की तरह मथुरा के निवासी भी भविष्य पर बड़ी-बड़ी आशाएँ रखते थे। प्रत्येक व्यक्ति पिछले नौ वर्षों से कस के राज्य मे प्रवर्त्त अधर्म का अन्त देखना चाहता था। प्रत्येक बार कंस जब देवकी के बालकों का वध करता, तब लोगों को लगता कि उद्धारक के जन्म लेने का समय और नजदीक आ गया है। अशुभ ग्रहों की शान्ति के लिए व्रतों का पालन कर, वे देवताओ से प्रार्थना करते कि तारणहार का जन्म अब शीघ्र ही हो। यमुना के किनारे आश्रमों में रहने वाले ऋषि-मुनि भी देवो का आह्वान करते हुए यज्ञ करते। धार्मिक विधि अथवा प्रार्थना करते समय ब्राह्मण भी ईश्वर से अत्यन्त विनयपूर्वक प्रार्थना किये बिना नही रहते कि प्रभु, अब तू शीघ्र ही अवतार ले।

इन दिनों कंस को स्वयं भी कई प्रकार के नये-नये भयों का अनुभव होने लगा था। अनेक बार उसने अपने शत्रुओ को कुचल दिया, फिर भी यादवकुल ने उसकी सत्ता को स्वीकार नही किया था। कितने ही यादव सरदार तो ब्रजभूमि छोड़कर ही चले गये थे। कंस को यह भी मालूम था कि कितने ही दम्भी चाटुकार प्रकट में तो उसकी स्तुति करते है, परन्तु भीतर-ही-भीतर उसके पतन की कामना भी करते हैं। उसके अपने सेनानायक और समर्थक भी उसके प्रति इसीलिए वफ़ादार थे कि यादवों के रोष से उनकी रक्षा केवल कंस ही कर सकता था।

ज्यों-ज्यों दिन बीतते गए, कंस अधिकाधिक भय-विह्वल होता गया। नित्यप्रति ये समाचार उसे मिलते रहते कि तारणहार के शीघ्र अवतार लेने की आशा लोगो में बढ़ती जा रही है और इससे वह विक्षुब्ध हो उठता। प्रत्येक व्यक्ति को अब वह सन्देह की दृष्टि से देखने लगा था।

मामूली-सी बातों से भी वह उत्तेजित हो जाता। कई बार तो शून्यमनस्क हो जाता। उसकी नींद उड़ गई थी और भयंकर सपनों से वह परेशान रहने लगा था।

वसुदेव और देवकी के प्रहरी के सैनिक कंस की आज्ञा से रोज़-रोज़ बदलने लगे। वसुदेव को धार्मिक विधि सम्पन्न कराने के लिए उनके कुलगुरु गर्गाचार्य ही केवल वसुदेव-देवकी के पास जा सकते थे, अन्य किसी को उनसे मिलने नही दिया जाता था। देवकी की तबीयत का हाल पूतना रोज जाकर कंस को सुनाती। देवकी के आठवे पुत्र की हत्या करने पर लोग उत्तेजित हो विद्रोह न कर बैठें, इस आशका से कंस ने शहर के मुख्य-मुख्य स्थानो पर मगध के सैनिक बिठा रखे थे।

उस दिन श्रावण कृष्णा अष्टमी थी। दिन-भर मेघगर्जन और बिजली की चमक के साथ घनघोर वर्षा होती रही; पवन भी बड़े वेग से मचल रहा था। आँधी-पानी का जोर होने पर भी गर्गाचार्य दोपहर को उस दिन भी नित्य की भाँति महल मे धार्मिक विधि सम्पन्न कराने आये। विधि पूर्ण हो जाने पर वह वसुदेव से मिले और उनके कान मे कुछ कहा।

दिन-भर भयकर वर्षा और पवन का आतंक रहा। साँझ पड़ने से पहले ही सारे शहर मे अँधेरा छा गया। गली-रास्ते सभी पानी से भर गए। इसीलिए पूतना जो सवेरे अपने घर गई थी, आज देवकी की निगरानी रखने महल नही लौट सकी। उसके आगमन के लिए मुख्य दरवाजा खुला छोड़कर प्रहरी शीत से बचने के लिए अपनी कोठरियों में जा बैठे।

महल में भी सर्वत्र अन्धकार व्याप्त था। केवल उस कोठरी में, जहाँ देवकी लेटी थी और उनकी बगल में वसुदेव बैठे थे, तेल का एक छोटा-सा दीया टिमटिमा रहा था। मूसलाधार बरसात गिरने की भयंकर आवाज और बादलों की गड़गड़ाहट महल के सूने कक्षों में गूँज रही थी।

एकाएक बिजली इतनी ज़ोर से चमकी कि सारा आकाश प्रज्वलित हो उठा। एक भयकर मेघगर्जना से महल की नीव तक हिल गई। भयभीत हो देवकी उठ बैठी और अपनी वेदना को कम करने के लिए उसने वसुदेव का हाथ थाम लिया। पति के मुख को वह भक्ति-भाव और प्रेमभरी दृष्टि से निहारने लगी और नयन आनन्दाश्रु से भर गए।

प्रसूति की वेदना को दबाकर उसने कहा, 'प्रभु के अवतार की वेला आ पहुँची है, स्वामी !'

अत्यन्त पुलकित हो वसुदेव देवकी को सावधानीपूर्वक पास ही के दूसरे कक्ष मे ले गए। मध्यरात्रि का समय था। वर्षा और बिजली का जोर अभी भी पूर्ववत् था। तभी पूर्वाकाश मे अभिजित नक्षत्र का योग हुआ और आनन्दसमाधि का अनुभव करती हुई देवकी ने बिना किसी कष्ट का अनुभव किये एक पुत्र-रत्न को जन्म दिया।

दाई का काम स्वय वसुदेव ने सम्हाला। अपनी एकमात्र आशा के रूप मे उस नवजात शिशु को देखकर वह स्तब्ध रह गए। बालक का अंग-अग सुडौल था, वर्ण नीलकमल के समान था और जन्म के समय अन्य बालको की तरह रुदन करने के स्थान पर उसके सुकोमल होठों पर एक मधुर मुस्कान थिरक रही थी।

वसुदेव बालक को एकटक निहारते रहे। क्षण-भर के लिए उन्होने शंख, चक्र, गदा और पद्म हाथ मे धारण किये, अपूर्व तेज तथा वैभव से देदीप्यमान भगवान् विष्णु को अपने सामने खड़ा देखा। अन्ततः वेदव्यास का वचन सत्य सिद्ध हुआ।

प्रयत्न करके वसुदेव ने स्वय को प्रकृतिस्थ किया। उन्हें अब अपना कर्तव्य पूरा करना था। बालक को कुछ देर के लिए देवकी को सौपकर वह अपने हाथ में दो दीये लेकर झरोखे में गये, और मानो आरती उतार रहे हों, इस प्रकार दीयो को उन्होंने हिलाया। नदी के सामने के तट से इसके उत्तर में एक मशाल दिखाई दी।

फिर, देवकी के पास लौटकर वसुदेव ने नवजात शिशु को स्नान कराया। शहद की बत्ती बनाकर उन्होने उसे चूसने को दी और उसे एक टोकरी में सुला दिया।

'अब मुझे चले जाना चाहिए,' उन्होने कहा।

'परन्तु आप जायेंगे किस प्रकार ? घनघोर वर्षा हो रही है और यमुना मे बाढ़ आई हुई है।'

'जैसी भगवान् की इच्छा ! वे जो करते हैं अच्छा ही करते है।' यह कहकर वह देखने चले गये कि चौकीदार क्या कर रहे है। उन्होने

देखा कि चौकीदार अपनी-अपनी कोठरी मे किवाड़ बन्द किये गहरी नींद सो रहे है और महल का मुख्य द्वार पूतना के अब तक न लौटने के कारण खुला पड़ा है ।

वसुदेव ने बालक को शाल मे लपेटकर फिर टोकरी में रखा, और उस पर एक छोटी-सी चटाई ढँक दी । टोकरी को कन्धे पर उठाकर वह महल के बाहर निकल पड़े। थोड़ी ही दूर पर नदी का प्रवाह एक पथरीले पट पर से होकर बहता था, जहाँ नदी पार कर सामने गोकुल जाने का एक सहज, प्राकृतिक मार्ग बन गया था। टोकरी को सर पर रखकर वसुदेव वहीं पहुँचे । मुँह मे पैर का अँगूठा चूसता हुआ नवजात बालक शान्ति से टोकरी में सोया रहा ।

और तब एक चमत्कार हुआ । वर्षा रुक गई और नाग के फण के समान एक काले बादल का टुकड़ा टोकरी पर छत्रछाया करने लगा ।

नदी का प्रवाह अत्यन्त वेगवान होते हुए भी उक्त मार्ग से वसुदेव शीघ्र ही यमुना पार चले गये । सामने ही किनारे पर एक वृक्ष के नीचे गोकुल के यादवों के नेता नन्द तथा गुरु गर्गाचार्य खड़े थे ।

गर्गाचार्य ने वसुदेव से वह टोकरी ले ली और उसके स्थान पर एक दूसरी टोकरी उन्हे दी ।

'यह किसकी सन्तान है ?' वसुदेव ने पूछा ।

'आज सवेरे ही यशोदा की कोख से जन्मी पुत्री है ।'

आनन्द तथा कृतज्ञता की भावना से वसुदेव ने नन्द से कहा, 'नंद, तुम्हारे उपकार का बदला मैं किस प्रकार चुका सकूँगा ?"

वसुदेव का चरणस्पर्श करके नन्द ने उत्तर दिया, 'प्रभु, आप तो हमारे स्वामी है । मेरा जो कुछ है, वह आपका ही हैं।'

गर्गाचार्य के हाथ से नन्द ने वह टोकरी ले ली । उस पर ढँकी हुई चटाई खिसक पड़ी । तभी बिजली चमकी और उसके प्रकाश मे नीलवर्ण का सुन्दर बालक अपनी आँखे टिमकारता हुआ टोकरी मे उन्हें दिखाई पड़ा । उस वृद्ध ग्वाले के हृदय में असीम वात्सल्य उमड़ आया ।

तारणहार का आगमन हो चुका था !

११

कंस की युक्ति

कंस का समय बहुत बुरी तरह कट रहा था। वर्षों से जो चिन्ता उसे सता रही थी, उसके कारण दिन मे भी वह दुःस्वप्नो से सत्रस्त रहता और सदा यही आशका उसे भयभीत करती रहती कि भविष्यवाणी अन्ततः सच होगी और उसके अपने सब प्रयास व्यर्थ हो जाएँगे।

भविष्यवाणी सच न हो, इसके लिए उसने सभी उपाय काम मे ले लिए थे। वसुदेव और देवकी पर पहरा देने वाले सभी कर्मचारी उसके विश्वसनीय पात्र थे। देवकी पर निगरानी रखने वाली पूतना रिश्ते में उसकी बहन थी। उस पर कस को पूरा विश्वास था। कुलगुरु गर्गाचार्य के अतिरिक्त महल मे प्रवेश का अधिकार किसी को नहीं था, और वह भी केवल प्रातःकाल मे ही आते थे। उस समय पूतना वहाँ सदा उपस्थित रहती थी।

श्रावण मास की कृष्णपक्षीय अष्टमी की रात्रि को कस क्षण-भर भी न सो सका। एक प्रकार का भय उसके मन में व्याप्त था। आकाश में हो रही मेघगर्जना से उसका हृदय बार-बार कम्पायमान हो उठता था। बिजली चमकने के साथ ही वह स्वय भी चौक उठता। वह सोचता, क्या ये चिह्न भविष्य में होने वाले विनाश के तो नही है ? राजप्रासाद के विशाल खण्ड में वह बड़ी बेचैनी से चक्कर काट रहा था। दस वर्षो के लम्बे काल से जिस प्रसंग की वह प्रतीक्षा कर रहा था, वह अब किसी समय, किसी क्षण आ सकता था। इसीलिए देवकी के आठवे पुत्र का वध कर भविष्यवाणी को मिथ्या सिद्ध करने के लिए वह अत्यन्त आकुल और अधीर था।

आकाश की ओर देखने के लिए वह अस्थिर मन और लड़खड़ाते कदमो से खिड़की के पास गया। परन्तु ज्यों ही उसने खिड़की खोली कि वर्षा की बौछार से वह भीग गया। उसने तुरन्त ही खिड़की बन्द कर दी,

और मूँछों पर ताव देता हुआ फिर कमरे में चक्कर काटने लगा।

हज़ार कोशिश करने पर भी अपने मन पर हावी भय की भावना को वह दूर नही कर सका। किसी भी प्रकार वह रात्रि कट नहीं रही थी। किसका सहारा ले वह ? उसके अपने आदमी उससे घबड़ाते थे; उसकी पत्नियाँ उससे डरती थीं; उसके चाटुकार भी उससे भयभीत थे; यहाँ तक कि स्वय अपने से भी वह डरता था। उसने किसी तरह अपने मन को मनाना चाहा कि थोडी देर में यह सब व्यतीत हो जाएगा। एक बार देवकी के आठवे पुत्र को इस ससार से विदा किया, कि फिर कोई भय उसे त्रस्त नही करेगा।

धीरे-धीरे खण्ड में कुछ प्रकाश का आगमन हुआ। सबेरा हो चुका था। परन्तु आकाश अभी भी घिरा हुआ था; वर्षा रुकी नहीं थी। कस के भय की मात्रा कुछ कम हुई।

अब प्रकाश फैलने लगा। थोड़ी ही देर में पूतना आकर खबर देगी कि देवकी के प्रसव अभी नही हुआ। यदि ऐसा हुआ तो ठीक नही होगा, क्योंकि फिर न जाने कितने दिन और कितनी रातें चिन्ता में बितानी होंगी। फिर भी, कुछ समय के लिए तो राहत मिली !

आखिर, पूतना आ गई। दोनो हाथ जोड़कर उसने कहा, 'महाराज, देवकी के पुत्री हुई है।'

'क्या तुझे पूरा विश्वास है ?' कंस ने विचलित होकर पूछा।

अपनी आशका को छिपाकर पूतना ने एकदम झूठ बोला, 'मुझे पूरा विश्वास है, प्रभु! देवकी ने मेरी उपस्थिति मे ही पुत्री को जन्म दिया है।'

फिर भी कंस पूरी तरह आश्वस्त नही हो पाया। भविष्यवाणी सत्य हो, इसके लिए देवकी की आठवीं सन्तान पुत्री नहीं पुत्र होना चाहिए। तो फिर क्या वह उस बालिका का वध करे ? तुरन्त ही उसके हृदय ने उत्तर दिया, किसी प्रकार का खतरा क्यो मोल लिया जाए ?

'रथ तैयार करो !' उसने चीखकर हुक्म दिया और खुद हाथ में गदा लेकर तैयार हो गया। नगर से दूर देवकी-वसुदेव को जिस महल में कैद रखा गया था, वहाँ पर कंस का रथ थोड़ी ही देर में पहुँच गया।

जिस खण्ड में देवकी सो रही थी, वहाँ पहुँचकर कंस ने देवकी से

रोषपूर्वक कहा, 'कहाँ है तेरा पुत्र ? ला सौप मुझे !'

'राजकुमार, वह तो कन्या है, बालक नहीं। उसे आप क्यों मारना चाहते है ?' वसुदेव ने पूछा।

'पुत्र हो अथवा पुत्री, मैं इस शिशु को जीवित नही छोडूँगा।' कंस ने कहा, और उस पालने के पास गया, जहाँ बच्ची लेटी थी।

आँखों से आँसू बहाते हुए दोनो हाथ जोड़कर आर्तस्वर मे देवकी ने कहा, 'बड़े भैया, तुम ऐसे हृदयहीन कैसे हो गए ? मेरे एक बच्चे को तो ज़िन्दा रहने दो। तुम्हारे जैसे समर्थ राजकुमार का यह बेचारी बालिका क्या बिगाड़ सकेगी ?'

पालने से बच्ची को बाहर निकालकर कस ने उसके पैर पकड़कर उलटी लटका दी। अचानक उसे स्वय अस्वस्थता अनुभव होने लगी। उसके हाथ काँपने लगे। बच्ची को जमीन पर पछाड़ने के लिए जो हाथ उसने ऊपर उठाया था, वह चेतनाहीन बन गया और उसके हाथ से बालिका छिटककर दूर जा पडी। कलेजा कँपानेवाली एक भयकर चीख तब सुनाई पड़ी और बच्ची उड़कर खिड़की के बाहर अदृश्य हो गई।

कंस की आँखो के आगे अँधेरा छा गया। सारा कमरा ही उसे चारों ओर फिरता हुआ दिखाई पड़ा। लड़खड़ाते कदमो से जब वह खण्ड से बाहर निकला तो आकाशवाणी के ये शब्द उसे सुनाई पड़े, 'तेरा हन्ता तो कभी का, कही जन्म ले चुका है।'

देवकी के कक्ष से बाहर आते ही कंस के चरण शिथिल पड गए। उस भयानक चीख की गूँज अभी भी उसके कानों को कष्ट दे रही थी। हाथ में जलपात्र लेकर पूतना उसके पास दौड़कर आई। उसका पति प्रद्योत भी पास ही आकर खड़ा हुआ।

'स्वामी, आप राजमन्दिर नहीं लौटेंगे ?' उसने पूछा।

'किसी तरह मुझे यहाँ से बाहर निकलने दो,' कंस ने कहा। उसे कोई अकथ्य भय सता रहा था।

'वसुदेव और देवकी का अब क्या किया जाए ? मैं यही रहूँ या घर जाऊँ ?' पूतना ने प्रश्न किया।

कुछ देर तक तो कस इस प्रकार भावशून्य दृष्टि से देखता रहा,

मानो वह कुछ समझ ही नही पा रहा है। फिर कम्पित वाणी में उसने कहा, 'उन्हे जाने दो, जहाँ भी उन्हे जाना हो। अपने महल में जाना चाहते हों, तो वहाँ भी भले ही जाएँ। नारद ने मेरे साथ मज़ाक किया। यह भविष्यवाणी थी ही नही। जाने दो इन लोगों को।' यह कहकर वह अपने महल को चला गया।

दूसरे दिन अपने कुछ विश्वासपात्रों को उसने मन्त्रणा के लिए बुलाया, उनमें उसका प्रमुख सलाहकार प्रलम्ब था, प्रद्योत और उसकी पत्नी पूतना थी, और अपनी पुत्रियों की सँभाल रखने के लिए जरासन्ध ने मथुरा मे जो मगध का वृद्ध सैनिक बाहुक भेजा था, वह भी था। कस ने उन सबको सारी स्थिति समझाकर उनकी सलाह माँगी।

कंस के मुख्य सलाहकार प्रलम्ब ने विनम्र भाव से कहा, 'स्वामी, आज्ञा हो तो मैं अपनी राय प्रकट करूँ?'

कस की आज्ञा पाकर उसने कहा, 'वीरश्रेष्ठ, मुझे तो ऐसा लगता है कि जो आकाशवाणी आपने सुनी, वह आपको चेतावनी देने के लिए देव-वाणी ही थी। लोग आपसे डरते है और इसलिए आपके सामने वे कुछ बोल नही सकते। परन्तु वे सब तारणहार की प्रतीक्षा करते हैं।'

'स्वामी, मैंने भी वह आवाज सुनी थी, परन्तु वह कहाँ से आई, यह समझ मे नही आया। मुझे याद है उसके ये शब्द—तेरा हन्ता तो कभी का कही जन्म ले चुका है।' पूतना ने कहा।

थोडी देर तो कस विचारमग्न रहा, फिर भौहे चढाकर बोला, 'मैं कोई भी खतरा मोल लेना नही चाहता। पिछले दस दिनों मे जितने भी बालकों का जन्म हुआ है, उन सबको मार डालो; बल्कि पिछले महीने मे भी जितने बालक जन्मे हैं, उन सबको मार डालो।'

फिर मगध के वृद्ध सैनिक की ओर देखकर कंस ने कहा, 'क्यों बाहुक, मेरी बात तुम्हें कैसी लगी?'

पूर्वाश्रय के जरासन्ध के मन्त्री बाहुक ने उत्तर दिया, 'वीरश्रष्ठ, आप चाहे जितने बालकों को मार डाले, फिर भी लोगो को अपने उद्धारक की प्रतीक्षा करने से आप रोक नही सकते। और, जब तक वे प्रतीक्षा करते रहते हैं, तब तक आपका भय दूर नही हो सकता।'

'फिर लोगों को उद्धारक की प्रतीक्षा करने से रोका किस प्रकार जाए ?' कंस ने प्रश्न किया।

'स्वामी, जनता तो बेवकूफ होती है। आप सख्ती से काम लेंगे, तो वे आपकी सत्ता स्वीकार करेंगे। परन्तु उद्धारक के बारे में जब तक उनकी श्रद्धा बनी रहती है, तब तक उनका आत्मबल टूटेगा नही।' बाहुक ने उत्तर दिया।

'तो उनकी श्रद्धा शेष किस प्रकार की जाए ?'

'स्वामी,' बाहुक ने कहा, 'उनकी श्रद्धा ऋषि-मुनियो तथा ब्राह्मणों की शिक्षा पर आधारित है।'

'ठीक है। मै जो भी करता हूँ, उसे वे लोग अधर्म बताते है। बाहुक, तुम समझदार हो, बुद्धिमान हो। हमारे प्रतापी श्वशुर जरासन्ध के साथ रहने का सुअवसर तुम्हें मिल चुका है। तुम्हारा अनुभव भी विशाल है। हमे अब क्या करना चाहिए, यह तुम ही कहो।'

'स्वामी, सत्ताशाली राजा का प्रथम कर्तव्य यह है कि वह लोगों की इस श्रद्धा को निर्मूल करे कि उनका उद्धार करने कोई तारणहार आने वाला है। जैसा कि अभी मैने आपसे निवेदन किया, यह श्रद्धा साधु पुरुषो के कारण ही टिकी हुई है।'

'तो फिर उनको किस प्रकार ठीक किया जाए ?'

'वीरश्रेष्ठ, उनको ठीक करना तो कोई सहज काम नही। उन्हें किसी प्रकार का कोई लोभ या भय नही, न उन्हें किसी के प्रति द्वेष है। उन्हे स्पृहा भी किसी की नही। इसीलिए वे इतने शक्तिशाली है। फिर उनके अतिरिक्त सयम का पालन करने वाले तथा वेद की आर्षवाणी पर जीने वाले ब्राह्मण भी तो है। ये लोग देवताओ का आह्वान करते है तथा यह उपदेश देते फिरते है कि धर्म के प्रभाव के सामने राजसत्ता असमर्थ है। हमारे आदेशो का पालन वे नही करेंगे। अपने मान्य धर्म की तुला पर ही ये लोग प्रत्येक वस्तु को तौलते है।'

'अपार धन देकर मैं उन्हें जीतने का प्रयत्न तो करता रहा हूँ।' कस ने कहा।

'साधु पुरुषों को किसी प्रकार लालच में नही फँसाया जा सकता।

लोभ से वे परे होते है। ब्राह्मणो को आप दान देंगे, तो उससे वे हृष्ट-पुष्ट अवश्य बनेंगे, परन्तु ज्ञान-प्राप्ति की कामना वे सदा करते रहेंगे और सलाह तो उन्ही की मानेंगे, जो त्याग-वृत्ति को ही जीवन-धर्म मानते हैं।'

'उन सबका वध करूँ, तो मेरा विरोध कौन करेगा ?'

'वीरश्रेष्ठ, यदि आप उनका वध करेंगे, तो आपके विरुद्ध लोगों का प्रकोप फट पड़ेगा। मथुरा से यदि आपने उनको बाहर निकाल दिया, तो वे जहाँ कही भी जाएँगे, आपके शत्रु खड़े करेंगे।'

एक शब्द भी बोले बिना कस चुपचाप बाहुक की बात सुन रहा था। वृद्ध मन्त्री ने फिर कहा. 'वीरश्रेष्ठ, साधु पुरुषो और ब्राह्मणों का विनाश केवल एक ही रीति से हो सकता है। आपका द्रव्य-भण्डार लोगो के लिए मुक्त कर दें। उन्हें खानपान और वैभव-विलास के इच्छुक बना दो। कुछ ऐसा उपाय करना चाहिए कि उनका कुलधर्म नष्ट हो जाए, स्त्रियाँ विलास के समक्ष शील को कोई महत्त्व न दे, बालक, वृद्ध तथा शक्तिहीन माता-पिता को व्यर्थ और भारस्वरूप समझे। एक बार लोग यह मानने लगे कि अमर्यादित वैभव-विलास ही जीवन का ध्येय है, तो साधु और ब्राह्मण उन्हें ढोंगी लगने लगेंगे। वे फिर धर्म, तपस्या, प्रेम तथा दया की बातें करने वालो की हँसी उडाएँगे। जब वे सुरा छलकाने लगेंगे, तब संयम ही दूर भाग जाएगा। फिर आप जो भी करेंगे, उसे वे मूक पशु की तरह कुछ भी प्रतिकार किये बिना सहने लगेंगे, आप प्रहार करेंगे तो भी उसे प्रसाद समझकर स्वीकार करेंगे।'

'बाहुक, तुमने जो रास्ता बताया, वह है तो बहुत लम्बा, लेकिन उस पर चलने की मैं कोशिश करूँगा। इस बीच, पूतना, तू इस बात का पता लगा कि पिछले कुछ दिनो मे कितने बालकों ने जन्म लिया है और कुछ ऐसा प्रबन्ध कर कि उनमे से एक भी जीवित नही बचे।'

१२

...और उनका नाम पड़ा कृष्ण

कारावास से मुक्त होने के बाद देवकी अपने महल में ही रहने लगी थी। उनका मन सदा अपने प्रिय सपनों मे खोया रहता। अपने नन्हे-नन्हे पैर हवा में उछालते, स्तनपान करते, पतले-पतले होठों पर मुस्कान बिखेरते, सुन्दर, मनमोहक आँखो से उनकी ओर आनन्द-दृष्टि डालते, अपने उस नीलवर्ण, मृदुल बालक की हृदयहारी छवि उनकी आँखों में सदा बसी रहती। आसपास जब कोई नही रहता तो वसुदेव से वह सदा अपने लाडले की ही चर्चा किया करती। वसुदेव भी जब उनके सम्मुख बालक के जन्म के समय क्या-क्या चमत्कार हुए थे, गोद में लेने पर वह किस प्रकार चतुर्भुज विष्णुस्वरूप हो गया था, अन्तर से उनके स्वतः किस प्रकार प्रार्थना फूट पड़ी थी, किन्ही अदृश्य हाथो ने किस प्रकार कारागार के दरवाजे खोल दिए थे, किस प्रकार सभी चौकीदार निद्रामग्न हो गए थे, यमुना के जल मे उनके पैर रखते ही किस प्रकार भीषण वृष्टि एकाएक रुक गई थी, शेषनाग के विशाल फनो के समान श्याम बादल ने घिरकर किस प्रकार मूसलाधार जलधाराओं से बालक की रक्षा की थी, किसी को कानोंकान खबर न लगे, इस प्रकार गुप्त रीति से यशोदा की बालिका को वह किस प्रकार ले आये थे और वह बालिका दुष्ट कंस के हृदय को भय से कपित करनेवाली चीत्कार कर किस प्रकार उसके हाथ से छिटककर खिड़की के बाहर उड़ चली थी, इत्यादि का वर्णन करते, तब देवकी सुनते-सुनते कभी अघाती नही थी।

वसुदेव और गर्गाचार्य के अतिरिक्त उन दिनों देवकी को किसीसे मिलना-जुलना अच्छा नही लगता था, क्योंकि वह अपने हृदय में बसे प्रिय बालक की चर्चा और किसी से कर नही सकती थी। रात्रि के समय उनका मन बार-बार गोकुल पहुँच जाता और इसी सुखद कल्पना मे खो जाता कि वहाँ उनका लाल क्या कर रहा होगा। फिर भी इस बारे मे

वह सदा सावधानी बरतती कि किसी को उनके पुत्र के जीवित रहने की खबर न पड़ जाए।

रात को वसुदेव के शरीर पर अपना हाथ रखकर जब वह सो जाती, तो उनका हृदय सदा अपने मन में बसे उस बालक को देखने, उसे अपनी छाती से लगाकर उसके सलोनें मुख को बार-बार चूमने और लाड़-प्यार करने के लिए मचल उठता।

प्रति पक्ष जब गर्गाचार्य यज्ञविधि सम्पन्न कराने नन्द के यहाँ जाते, तो देवकी का चित्त और भी व्याकुल हो उठता। वह उनके लौटने की इस उत्कण्ठा से प्रतीक्षा करती रहती, मानो उनके वापस आने पर ही उनके जीवन का समस्त आधार अवलम्बित हो। जब वह लौटते और उनकी आँखो मे एक अर्थसूचक इशारा वह देखती, तो उनका हृदय आनन्द से ओतप्रोत हो जाता। 'वह सकुशल है, सकुशल है मेरा लाल, मेरा तारणहार, मेरा प्रभु!' वह मन-ही-मन कह उठती।

कभी-कभी तो अपने पुत्र को देखने की उनकी लालसा इतनी प्रबल हो उठती कि वह अकेले मे ही लोरियाँ गाने लगती। यह देखकर पहले तो दासियो को बड़ा आश्चर्य हुआ, पर पीछे उन्होने यह समझ लिया कि इनकी आठ-आठ सन्तानें बड़ी निर्दयता के साथ इनसे छीन ली गई हैं, तो अवश्य ही उसका असर इनके मस्तिष्क पर पड़ा होगा।

एक बार देवकी को लगा कि पुत्र-दर्शन की लालसा अब और उनसे दबाई नही जा सकेगी, तो उन्होंने अपने हाथ से नवजात शिशु की एक मिट्टी की मूर्ति बनाई और एक छोटा-सा पालना भी उसके लिए तैयार किया। इसके बाद तो रोज सवेरे जल्दी उठकर नन्हे बालक की मिट्टी की मूर्ति बनाना, उस पर चन्दन, पुष्प, कुकुम, केसर चढाना, फिर उसे पालने में सुलाकर मीठी लोरियाँ गाना, फिर घंटी बजा-बजाकर भजन गाते हुए नीद से उसे जगाना और पुष्प, फल, दूध तथा मधु का भोग धरना उनका नित्यप्रति का कार्य हो गया।

वसुदेव तथा गर्गाचार्य तो यह समझ ही गए कि देवकी ऐसा क्यों कर रही है। देवकी के मन पर अपने प्रिय पुत्र की छवि अंकित थी और वह उनसे भुलाई नही जा सकती थी। उन्हे पूर्ण विश्वास था कि उनका

पुत्र और कोई नहीं, स्वयं भगवान् का अवतार है। दूसरों को लगता कि वह पागल हो गई हैं, परन्तु जिस निष्ठा से वह अपने बाल-प्रभु की छोटी-सी प्रतिमा का पूजन करती, उसे देखकर सभी लोग उनके प्रति आदर-भाव रखते।

नन्द की पत्नी यशोदा की कोख से अब तक कोई सन्तान नही हुई थी, इसलिए प्रसूति के समय उनकी स्थिति बड़ी विषम बन गई थी। सन्तान-जन्म के समय अत्यन्त पीड़ा के कारण वह बेहोश हो गई थी। वसुदेव की अन्य पत्नी रोहिणी अकेली ही उनकी सँभाल के लिए वहाँ उपस्थित थी।

सवेरे जब यशोदा जाग्रत हुई, तब रोहिणी ने बालक को उनके हाथ मे दिया। आश्चर्य तथा आनन्द से उनका हृदय बड़ी तेज़ी से धड़कने लगा। जब सभी आशाओं को वह तिलाजलि दे बैठी थी, तब उनकी कोख से पुत्र-जन्म हुआ, और पुत्र भी कितना सुन्दर ! कितना अद्‌भुत था यह बालक ! उसके शरीर का वर्ण भी कैसा था घनश्याम ! आनन्दोत्साह से परिपूर्ण, बालक को रोहिणी से लेकर उन्होने अपने हृदय से लगा लिया।

'मेरे लाल, मेरे बच्चे !' आनन्दातिरेक से वह बोल उठी। बालक ने नयन खोलकर उनकी ओर निहारा। यशोदा को लगा कि उसकी आँखो मे से एक अपूर्व तेज चमक रहा है।

पुत्र-जन्म का यह आनन्द-समाचार कानों-कान सारे गोकुल में फैल गया। गोकुल के अधिराज वयोवृद्ध नन्दबाबा के घर ऐसे सुन्दर और अद्‌भुत बालक ने जन्म लिया, जैसा कि किसी ने पहले देखा तक न हो, फिर शूरकुल के गोप-गोपियों की खुशी का क्या ठिकाना ! वे तो हर्ष से उन्मत्त हो उठे। गोपियो ने इस तरह साज-सिंगार करना शुरू किया, मानो कोई बड़ा पर्व आ गया हो। गोपो ने अपने गाय-बैलों को नहला-धुलाकर स्वच्छ किया, उन्हें लाल अथवा नीले रग से रगा और उनके सींगो पर सोने-चाँदी के बर्क लगाये। आनन्दोत्सव मनाते हुए बालको ने सारे ब्रज में धूम मचा दी। सभी लोग यशोदा के लाल को देखने नन्द-बाबा के यहाँ उमड़ पड़े।

जो जुलूस वहाँ आया उसमे सोने-चाँदी के बर्क चमकाती गायें थीं, इधर-उधर दौड़ादौड़ करते और आनन्द-कोलाहल मचाते बालक थे, एक-दूसरे की पीठ ठोकते, रंग-बिरंगे साफे पहने गोप थे, तथा उनके पीछे उस मंगल अवसर के योग्य वस्त्राभूषण से सज्जित माथे पर जगमग करते, चमचमाते पीतल के घड़े धरे गोपागनाएँ थी।

जब यह जुलूस नन्दबाबा के आँगन के पास आकर रुका, तो नन्द-बाबा तथा उनके सम्बन्धियो ने सभी का स्वागत किया। कुतूहल से प्रेरित होकर गोपियाँ आहिस्ते से उस कक्ष मे गई, जहाँ यशोदा लेटी थी। यशोदा ने बड़े चाव और गर्व से अपने बालक को उन्हे दिखाया। नीलवर्ण के उस बालक को देखकर गोपिकाएँ आश्चर्य-विमुग्ध हो गईं—ऐसा सुन्दर बालक उन्होने जीवन मे कभी नही देखा था।

एक दिन देवकी जब अपने महल के झरोखे मे खडी थी, तब आकाश मे चल रहे एक श्याम बादल की ओर उनकी दृष्टि गई। बादल गहरे नीले रग का था, बिलकुल उनके अपने पुत्र के वर्ण का ही। वह एकटक उस मेघ की ओर देखती ही रह गई। उसकी आकृति बदलकर बालक के समान हो गई। अपने मन में सर्वदा बसा वह सुन्दर मुख, रात-दिवस उनकी आँखों मे घूम रहे नन्हे-से नयन, वही हाथ, वही पैर! आनन्द से वह प्रायः मूर्छित-सी हो गई। उनका अपना लाल भी तो उसी बादल के रंग का था। वह वास्तव मे घनश्याम ही था।

फिर गर्गाचार्य तथा वसुदेव वहाँ आये। कुल-पुरोहित ने बालक के जन्माक्षर बनाये थे। ऋषि-मुनियो द्वारा रचे नियमों के अनुसार बालक का नाम क, घ अथवा छ पर ही रखा जा सकता था। यह भी एक चमत्कार था। इससे बालक का नाम घनश्याम—बादल जैसे श्याम वर्ण का—अथवा कृष्ण अर्थात् श्याम वर्ण का, रखा जा सकता था।

दूसरे दिन वसुदेव ने देवकी के लिए संगमरमर की एक बाल मूर्ति तैयार करवाई। देवकी ने उसका नाम 'घनश्याम' रखा और उसे अपने पूजागृह में प्रतिष्ठित किया। यह बात उन तीनो के सिवाय कोई नहीं जानता था कि वह मूर्ति कृष्ण की प्रतीक रूप है। किसी को यह खबर पड़नी भी नही चाहिए थी, क्योंकि देवकी जिसकी पूजा कर रही थीं, वह

प्रतिमा, गोकुल मे रहकर शीघ्र विकास कर रहे कृष्ण की प्रतीक रूप है, यह बात कही कंस को मालूम न हो जाए, इसका उन्हे बहुत डर था।

बालक के नामकरण की संस्कार-विधि का दिवस ब्रजवासियो के लिए एक महोत्सव का दिन बन गया। नन्दबाबा का आँगन केले के खम्भो से सजाया गया। एक छोर से दूसरे छोर तक आम के पत्तों के तोरण बाँधे गए। जमीन पर केशर-चन्दन का छिडकाव किया गया। आँगन के बीच मे एक के ऊपर एक चमचमाते पीतल के घड़े रखे गए।

फिर ब्रज में गर्गाचार्य अपने शिष्य-समुदाय सहित पधारे। शखनाद से उनका स्वागत किया गया और नन्द ने मूल्यवान वस्तुएँ भेटकर उनका सम्मान किया। यशोदा बालक को ले आई और गर्गाचार्य ने उसे घी-भात खिलाकर विधिपूर्वक उसका नाम 'कृष्ण' रखा।

इसके बाद बड़े ठाटबाट से ब्रह्मभोज हुआ, जिसमें गोप-गोपियो ने भाग लिया। आसपास के सभी गाँवो के भिक्षुओं को भी भरपेट खिलाया गया। शाम को गर्गाचार्य और उनके शिष्य मथुरा लौटे।

वसुदेव और देवकी ने जब यह सारा वृत्तान्त सुना, तब उन दोनों ने खिलौने के पलग पर फूलों की ढेरी के नीचे जो छोटी-सी श्याम वर्ण की मूर्ति छिपी थी, उसे निकालकर उसके आगे हाथ जोड़कर नमस्कार किया और उसकी पूजा की। उनकी यह श्रद्धा उस दिन और भी बलवती हो उठी कि उनके यहाँ साक्षात प्रभु ने ही अवतार धारण किया है।

बारह महीने बीत गए। ब्रजवासियों ने यमुना के तीर पर, जहाँ गोषनाथ महादेव का प्राचीन मन्दिर स्थित था, श्रीकृष्ण का जन्म-दिवस मनाया। नन्द ने ब्राह्मणों को बुलाकर उन्हे भोजन कराया। इस भोजन-समारम्भ में गोप-गोपियों को भी निमन्त्रित किया गया। अपने नन्हे-से लाल को गोद में लेकर यशोदा ने स्मितपूर्वक सभी का सत्कार किया।

भोजन-समारम्भ का प्रारम्भ मध्याह्न में हुआ था। बालक को नीद आने लगी। आमन्त्रितों का यथोचित सत्कार करने और बालक को धूप न लगे, इसलिए उसे एक ओर खड़ी की गई खाली गाड़ी के नीचे सुला दिया गया।

यशोदा स्त्रियों के समुदाय में जाकर वार्ता व विनोद करती फिर

रही थी कि एकाएक किसी के चीखने की आवाज़ आई। खड़ी की हुई गाडी उलट गई थी। भय से विह्वल हो, जोर से चीखती हुई यशोदा वहाँ दौड़ी गई, किन्तु वहाँ जाकर देखा, तो बालक हवा मे पैर उछालता आनन्द से किलकारी करता मजे से लेटा था—उसे कही कोई क्षति नही पहुँची थी।

नन्द भी बालक के पास दौड़े आए और लात मारकर उलटी हुई गाडी को सीधा किया। छोटे-से बालक को निरापद देखकर सभी चकित हो गए।

गर्गाचार्य ने जब इस चमत्कार की बात कही, तो देवकी के नयन अश्रुओं से भीग गए। वह बोल पड़ी, 'मेरे लाडले, मेरे लाल, मेरे प्रभु !' और आनन्दाश्रु की धाराएँ उनकी आँखों से बहने लगी।

१३

पूतना मौसी का गोकुल-आगमन

कंस को पूतना पर भारी क्रोध आया। श्रावण मास मे जन्मे सभी बालकों का पता लगाकर उन्हें विष देकर अथवा अन्य किसी प्रकार से मृत्यु की गोद में पहुँचाने का जो कार्य-भार उसने लिया था, उस बात को पूरे दो वर्ष बीत चुके थे; फिर भी कंस को प्राप्त सूचना के अनुसार केवल नौ बालक ही ऐसे मिले थे जिन्होंने श्रावण मास में जन्म लिया था और जो मौत के घाट उतार दिये गए थे, अथवा लापता कर दिये गए थे।

शायद पूतना को किसी बालक की खबर ही न लगी हो और वह अन्यत्र

कहीं पल रहा हो, इस आशका से कंस का मन उद्विग्न हो उठता । उसे इस बात पर विश्वास ही नही होता था कि मथुरा जैसी राजधानी में एक मास मे केवल नौ बालको ने ही जन्म लिया । पूतना तथा बन्दीगृह के चौकीदारो को वह वार-बार पूछता कि देवकी का शिशु कब और किस प्रकार हुआ, किन्तु बारम्बार उसका वर्णन सुनने पर भी उसके मन को सन्तोष नही होता था । जिस भयकर भय का अनुभव उस बालिका के उसके हाथ से छिटककर एक कर्णभेदी चीख के साथ खिड़की मे से बाहर उड़ जाने के समय उसे हुआ था, वह कभी भुला सकने योग्य नही था । उस अनोखी घटना का अर्थ तो उसकी समझ में यही आता कि, हो न हो, अवश्य ही उसका हन्ता अन्यत्र कही आश्रय पाए है ।

पूतना की समझ मे ही नही आता कि अब और क्या किया जा सकता है । श्रावण मास मे जितने बालकों के जन्म लेने की खबर उसे मिली थी उन सबकी तो हत्या उसने कर डाली थी । उनके अतिरिक्त और किसी बालक के होने का समाचार उसने सुना ही नही था । मथुरा के लोग तो उससे इतनी घृणा करने लगे थे कि जिस ओर वह निकल जाती, सभी अपने-अपने किवाड़ बन्द कर लेते, माताएँ अपने बच्चों को छिपा लेती । कई स्त्रियाँ तो शहर छोड़कर ही चली गई थी ।

कस के मन मे एक योजना ने जन्म लिया । क्यो न एक वर्ष के जितने भी वालक मथुरा मे हों, उन सबकी हत्या कर दी जाए ! लेकिन उसके वफ़ादार आदमियों के भी तो इस उम्र के बच्चे थे, और स्वय उसकी पत्नियों ने भी उस साल पुत्र प्रसव किये थे । नही, यह योजना तो किसी प्रकार भी कार्यरत नही की जा सकती थी । फिर उसने सुना कि गोकुल के नायक नन्द की पत्नी ने प्रौढावस्था में एक पुत्र को जन्म दिया था और अब वह दो साल का हो गया था । कुछ समय पूर्व जब नन्द कर चुकाने मथुरा आये थे तो बालक के जन्मोत्सव पर गोप-गोपियों ने किस प्रकार आनन्द मनाया था, वह बालक कितना अद्भुत और सुन्दर था, इस सबकी चर्चा सबसे की थी । कंस के दूतों ने इसकी खबर कस को दी । इस समाचार से उसके मन में एक अज्ञात भय का सचार हुआ । क्या यही बालक तो उसका भावी हन्ता नही है ?

'क्या मूर्खता की बाते करती है !'

'अन्नदाता, मैंने यथासम्भव आपकी सेवा की है। अब और मुझसे कुछ नही हो सकेगा। आप अपनी पत्नियो को ही पूछ देखे कि मेरा मुँह दीख जाने पर ही वे पाप का निवारण करने विधिपूर्वक स्नान करती है या नही !'

'पूतना, तू मूर्ख है। तेरी कितनी कद्र मैं करता हूँ, यह तुझसे छिपा नहीं है ! फिर इन बेवकूफ स्त्रियों की परवाह तू क्यों करती है ? बस इस नन्द के पुत्र वाला काँटा निकाल दे, फिर तुझे कोई काम नही सौपूँगा।'

'महाराज, मुझे क्षमा करे ! अब मै किसी भी बालक को हाथ नही लगाऊँगी। दो मास पूर्व मेरा अपना बच्चा मुझे छोड़कर चला गया। मरते समय उसके उच्छ्वास मे, जिन चार बालको को स्तन-पान कराकर मैंने मार डाला था उनके उच्छ्वास को सुना। मेरा यह बालक जब मृत्यु की भेट हुआ तब जिन माताओं के बालको को मैंने विष देकर अथवा गला घोंटकर मार डाला था, उनकी असह्य पीडा का अनुभव मुझे हुआ। अपनी आँखों के सामने अपने पुत्र को मरते देखना क्या होता है, इसका कटु अनुभव मुझे हो चुका है। अब ऐसा घोर पाप मुझसे नहीं हो सकेगा, महाराज !' पूतना ने करुणार्द्र स्वर मे कहा।

'पूतना, मूर्ख मत बन ! और कोई कुछ भी करे, तुझे तो अपना मन मज़बूत रखना ही चाहिए। मैं इस बालक को किसी प्रकार जीवित नही देख सकता। ज्यों-ज्यों मैं विचार करता हूँ, उसको इस ससार से हटा देने की आवश्यकता अधिकाधिक अनुभव करता हूँ।'

भयग्रस्त, किंकर्तव्यविमूढ पूतना नीची नजर किये खड़ी रही।

'तो क्या तू यह काम नही करेगी ?' कस ने पूछा। उसकी आवाज मे धमकी थी।

'क्षमा करें प्रभु ! मुझे और कोई काम सौपें, मैं सहर्ष उसे पूरा करूँगी। परन्तु किसी बालक की हत्या करने को कृपा कर मुझे न कहे।'

विषाद की मूर्ति बनी पूतना स्थिर खड़ी रही। जीवन में प्रथम बार उसके नयन अश्रुजल से भीग गए।

'पूतना, यह मत भूलना कि तू, तेरा पति, बक, अघ—सभी का

जीवन मेरी दया पर निर्भर है।' कंस अब हृदयहीन, दयाहीन बन गया था। आज्ञा के स्वर मे उसने कहा, 'मेरी इच्छा का पालन यदि तुम लोग नही करोगे तो यहाँ से निकाल दिये जाओगे। लेकिन मुझसे दूर जाकर तुम रहोगे कहाँ ? यह मत भूलना कि तुम्हे जो कुछ प्राप्त है और इस समय तुम्हारी जो स्थिति है वह मेरी ही बदौलत है। तुम्हारा पद, तुम्हारी सत्ता, धन, यहाँ तक कि जीवन भी जहाँ तक मैं जीवित हूँ वहीं तक बना रहेगा। मेरी मृत्यु के बाद तुममें से कोई भी बच नही सकेगा। लोग तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर देंगे। इसलिए मेरी छत्रछाया तले ही रहने में तुम लोगों का कल्याण है, समझी !'

पूतना सिर झुकाये खड़ी थी।

'इस बात से तो तुम अच्छी तरह परिचित हो कि मेरी आज्ञा का उल्लघन मुझे सह्य नही,' शान्ति से बात को जारी रखते हुए कंस ने कहा, 'मेरे एक शब्द पर ही मगध के वीर योद्धा बड़ी खुशी के साथ तुम्हारा गला घोंट देंगे। पूतना, तेरा और तेरे पति दोनों का ही जीवन मेरी मुट्ठी में है।'

'यह मैं जानती हूँ, महाराज !' पूतना ने कहा।

'तो फिर इस प्रकार लाचार, मूक मूर्ति की तरह निश्चल क्या खड़ी है ! जा, गोकुल जा, और काम पूरा कर आ।'

'जैसी प्रभु की आज्ञा !' भारी कण्ठ से, काँपती हुई आवाज़ में पूतना ने कहा।

'काम पूरा करने के लिए तुझे पन्द्रह दिन की मोहलत देता हूँ।'

हाथ जोड़कर विनम्र भाव से कस को प्रणाम कर पूतना चली गई।

स्त्रियों के जाने-आने के मार्ग से जब वह महल से निकली तो दासियो ने उसे देखकर अपने-अपने कक्ष के दरवाज़े बन्द कर लिए। पूतना ने यह सब देखा और मन-ही-मन कहा, 'वास्तव मे मैं सबके धिक्कार की पात्र बन गई हूँ—मैं सचमुच ही पूतना मौसी हूँ !'

कृष्ण की द्वितीय वर्षगाँठ के पश्चात् आश्विन मास की जो पूर्णिमा पड़ती थी, उस दिन गोकुलवासियों ने अपने कुलदेवता गोपनाथ महादेव

की जयन्ती सदा की भाँति मनाई। यह रीति उनमे पूर्वकाल से चली आ रही थी। गोकुल के लोग इस पुनीत प्रसंग पर बैलगाड़ियों मे दो-दो दिन की यात्रा करके भी पहुँचते थे और प्रात.काल पुण्यसलिला यमुना मे स्नान कर, महादेव के दर्शन करते और बिल्वपत्र इत्यादि चढ़ाकर मिष्टान्न भोजन करते।

आज की यह रात्रि वर्ष की अन्य सभी रात्रियों से अधिक रमणीय एव मगलकारी थी। भगवान् सोमदेव—चन्द्र अपनी किरणों से आज पृथ्वी पर अमृतधारा बरसाते थे। इस रात्रि मे चन्द्रोदय होते ही सभी स्त्री-पुरुष खीर से भरे पात्र लेकर यमुना के तीर पर जा बैठते। क्षीरान्न के साथ इस रमणीय रात्रि मे चन्द्रकिरणो के सयोग से ऐसी अद्‌भुत शक्ति आ जाती कि उसका प्राशन करनेवाले को सौभाग्य तथा आयुष्य वृद्धि की प्राप्ति होती।

शरच्चन्द्र की किरणो से बलप्रद, इस क्षीरान्न का भोजन किये बाद उत्सव की तैयारी होती। तरुण स्त्रियाँ नृत्य करती, गाती तथा आमोद-प्रमोद करती। रसिक तरुण नृत्य मे साथ देते तथा हाथ से, अथवा डाँडियों से ढोलक पर ताल देते। बालकवृन्द नाचते, कूदते तथा दौड़ की प्रतियोगिता मे भाग लेते।

प्रात.काल तक यह उत्सव चलता रहता। आश्विन मास का पूर्ण चन्द्र ही दे सके, ऐसी स्वस्थता और आनन्द से मत्त होकर वे लोग अपने-अपने गाँव लौटते।

पूतना को कस ने बुलाकर जब नया कार्यभार सौपा, उसके कुछ दिन बाद ही आश्विन की पूर्णिमा का उत्सव पड़ता था। अपने कुछ सम्बन्धियो को लेकर गोकुल के मुखिया उस दिन मथुरा गये थे और मध्य रात्रि तक उनके लौटने की सम्भावना नही थी।

मध्याह्न मे एक सन्देशवाहक ने आकर यशोदा को सूचना दी कि राजदरबार के एक अग्रणी ब्राह्मण की पत्नी अपना क्लेश दूर करने गोपनाथ महादेव की यात्रा पर आनेवाली है। अतिथिसत्कार की भावना के लिए तो हमारे ग्रामवासी प्रसिद्ध है ही। नन्द ने तो यह नियम ही बना लिया था कि जो भी अतिथि गोकुल आये, चाहे वह ऊँच हो या नीच,

धनवान हो या गरीब, उसे ससम्मान अपने यहाँ रखा जाए।

सन्देशवाहक जब आया तब यशोदा, रोहिणी तथा कुटुम्ब के अन्य लोग यमुना के तीर पर जाने की तैयारी कर रहे थे। अपने गाँव में कोई प्रतिष्ठित स्त्री आनेवाली है, सुनकर यशोदा ने कुछ नौकरों के साथ दो युवको को उनका यथोचित सत्कार करने गाँव की सीमा तक भेजा और यह आदेश दिया कि वे उनको सीधे नन्दगृह ले जाएँ और जब वे स्नानादि से निवृत्त हो महादेव का दर्शन कर ले तब उन्हे क्षीरान्न के भोजन तथा उत्सव मे भाग लेने को निमन्त्रित किया जाए।

कस द्वारा सौंपे गए नये कार्य के अप्रिय विचार से दु.खी हो, पूतना जब गोकुल के समीप पहुँची तो यशोदा के आदमियो ने उसका स्वागत किया और यशोदा का सन्देश भी कह सुनाया। उसने अपने रथ को तुरन्त नन्द की पशुशाला मे भेज दिया, ताकि बैलों को नहला-धुला और खिला-पिलाकर फिर से ताजा बना दिया जाए। उसे अपना काम पूरा कर मध्यरात्रि को ही वापस मथुरा चले जाना था। इसके बाद अपनी दासी और नौकरों को लेकर वह सीधी यमुना के तीर पर चली गई, जहाँ सुन्दर तथा आनन्दमग्न गोपियाँ, नाचते-कूदते व हँसते बालक, हँसी-ठट्ठा करते तथा एक-दूसरे की पीठ ठोकते गोपवृन्द उत्सवरत थे। उन्हे देखकर उसके दु:ख की सीमा नही रही, क्योंकि इस सारे हर्षोन्मत्त समुदाय मे दुष्ट कहलाने लायक वह अकेली ही थी। उनके अग्रणी के एकमात्र उत्तराधिकारी की हत्या करने, आनन्दमग्न गोप-गोपियों को दुःख के सागर मे डुबो देने और जीवन के उत्तरकाल में जिसके जीवन की महेच्छा मनोहर पुत्र के रूप मे साकार हुई थी, उस गर्वीली माता का हृदय टूक-टूक करने यह जहरीली नागिन वहाँ आ पहुँची थी।

नदी पर जाकर स्नानादि से निवृत्त हो वह मन्दिर मे गई। दूर क्षितिज में उसने तप्त कांचनवर्ण का चन्द्रोदय होते देखा। उसके तेज से वह सुन्दर प्रदेश अप्सरालोक-सा प्रतीत हो रहा था। परन्तु पूतना के हृदय ने तो आनन्द के स्थान पर दुःख का तीव्र आघात ही अनुभव किया। चन्द्रमा की वे निर्मल किरणें उसे जहरीले बाणों-सी लगी। स्वय को राक्षसी मानकर उसका हृदय उसे धिक्कारने लगा।

मन्दिर मे जब वह पहुँची तो अनेक हर्षोन्मत्त लोगों को उसने वहाँ देखा। कई लोग महादेव के स्तोत्रों का उच्चारण कर रहे थे। थोड़े-से विल्वपत्र खरीदकर वह मन्दिर में गई और शिवलिग पर वे बिल्वपत्र चढ़ाये। मूर्ति के समक्ष साष्टाग नमस्कार कर, जमीन पर माथा टेकते हुए उसने प्रार्थना की, 'हे प्रभु ! महादेव, आप सभी को सुखी करते है, फिर मुझ अकेली को ही क्यो शोकग्रस्त रखते है ? किसलिए मुझे यमदूत-सी, बल्कि यमदूत से अधिक क्रूर, निर्दोष एवं सुन्दर शिशुओं की हत्यारिणी बनाया ?'

'बस अब यह अन्तिम बालक ही होगा। इसके बाद मैं किसी की हत्या नही करूँगी। प्रभु मुझे क्षमा करो ! अब और मैं पाप के मार्ग पर नही चलूँगी।' पूतना ने मन-ही-मन कहा। वह उठ खड़ी हुई, चरणामृत लिया और उसे आँखो से लगाया।

मन्दिर से बाहर निकलकर वह सीधी वहीं पहुँची जहाँ यशोदा अपने विशाल कुटुम्ब के साथ घिरी बैठी थी। सबके बीच में दूध से भरे पात्र रखे थे। सम्मानित अतिथि के आगमन की सूचना होते ही पुरुषवर्ग उसे रास्ता देने के लिए उठ खड़ा हुआ। युवतियाँ उसके उत्तम वस्त्रालंकारों की ओर एकटक देख रही थीं। उन्होंने मथुरा के राजदरबार की किसी सन्नारी को पहले कभी नही देखा था।

यशोदा बालू में बैठी हुई थी और उनकी बगल मे रोहिणी थीं। अपने सामने खड़े, छोटे-छोटे मिट्टी के पात्र लिये बालकों को यशोदा दूध बाँट रही थीं। पूतना का सस्मित स्वागत करते हुए उन्होने कहा, 'पधारो बहन !' और कुछ खिसककर उसके लिए जगह कर दी। यशोदा के इस आदर-सत्कार का प्रभाव पूतना के मन पर पडा। उसे लगा कि वह कितनी अभागी है, कितनी अधम, जो इस हँसमुख, प्रसन्न और भोले स्वभाव की माता के प्राण-समान बालक की हत्या करने वहाँ आई है।

पूतना ने यशोदा की ओर, उसके बगल में बैठते समय, दृष्टि डाली। उसकी दाहिनी ओर एक छोटा-सा बालक खड़ा था। उसका सिर यशोदा के आँचल में छिपा हुआ था। वह अत्यन्त आनन्दपूर्वक स्तनपान कर रहा था। नीलवर्ण का उसका छोटा-सा सुन्दर शरीर, सुडौल अंग, कटि में

धारण की हुई सोने की करधनी और चाँदी के छोटे-से छल्ले, सब पूतना ने देखे। कंस ने जिसकी चर्चा की थी, यह वही बालक था। इसमे किसी शका अथवा भूल की सम्भावना नही थी।

इस नन्हे-से बालक की बग़ल मे अपनी अवस्था के प्रमाण मे ज़रा अधिक ऊँचा और भरी देह का लगभग तीन वर्ष का एक अन्य बालक रोहिणी के केशो से खेल रहा था। वसुदेव की ज्येष्ठ पत्नी रोहिणी को वह पहचानती थी। वह गुदगुदा बालक उसी का पुत्र होना चाहिए।

नीलवर्ण के उस बालक ने स्तनपान कर अपना सिर यशोदा के आँचल से बाहर निकाला और बगल में खड़े बालक के हाथ से दूध का पात्र छीनकर सारा दूध पी लिया तथा पात्र को फेंक दिया। आश्चर्य-मुग्ध हो पूतना उस बालक को देखती ही रही। आनन्द से चमकती काली-काली आँखे, गुच्छेदार लहराती केशराशि और मन्द-मन्द स्मित से पूर्ण मुख ! वह ठगी-सी देखती ही रही। उसकी अपनी भी सन्ताने थी, परन्तु ऐसा सुन्दर बालक उसने पहले कभी नही देखा था।

और उस बालक की हत्या करना ! क्षण-भर तो उसके मन में आया कि इस जघन्य कृत्य से तो मृत्यु अच्छी है। किन्तु फिर यह विचार कर कि कंस की आज्ञा न मानने से उसकी और उसके पति प्रद्योत की तो मृत्यु होगी ही, उसकी आठों सन्तानों की भी हत्या कर दी जाएगी और सारे कुटुम्ब पर कंस का प्रकोप होगा, उसने किसी प्रकार इस अप्रिय कार्य को निपटाने का ही निश्चय किया। 'इसके बाद तो फिर कंस की दुष्ट आज्ञाओ से छुटकारा मिलेगा न !' उसने मन-ही-मन सोचा, 'अब मैं और किसी बालक की हत्या नही करूँगी।'

पूतना एकटक बालक को देख रही थी। ज्यों ही उसकी नज़र उससे मिली कि पूतना ने चुटकी बजाकर उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया और उसकी ओर हँसकर सीटी बजाई। बालक उसकी ओर देख-कर मन्द-मन्द मुस्कराया। ओह कितनी सुन्दर, कितनी मोहक थी उसकी मुस्कान !

पूतना ने हाथ बढाया और जरा भी भय खाए बिना वह बालक यशोदा की गोद से उतरकर पूतना के पास चला आया। उसके स्पर्श से

ही पूतना का मातृत्व जाग पडा और उसने बालक को छाती से लगा लिया। उसे लगा मानो कुछ समय पूर्व मृत्यु को प्राप्त अपने प्रिय बालक को ही वह हृदय से लगा रही है। इससे अधिक भावावेग मे उसने और किसी बालक का आलिगन नहीं किया था। फिर भी मन मे यह विचार तो उसके उठा ही कि इसी बालक की हत्या उसे करनी होगी; इससे वह किसी तरह बच नही सकती। यह उसके अपने पति और आठ सन्तानो के जीवन-मरण का प्रश्न था।

बालक के सुन्दर मुख का चुम्बन करने पूतना ने अपना सिर नीचे झुकाया। बालक आनन्द से हँस उठा। उसका हास्य सुनकर पूतना मानो आनन्द-समाधि मे पड़ गई। मन्दिर से लौटते समय उसने अपने केश में चम्पा का एक फूल खोंस लिया था। उस पर बालक की दृष्टि पड़ी और मस्ती मे उसने वह फूल खीच लिया। पूतना ने सिर ऊपर उठा लिया। बालक हँस पड़ा तथा आनन्द से नयन नचाते हुए उसने वह फूल उसके मुँह पर दे मारा।

'देखो तो बहन, तुम्हारा यह पूत क्या कर रहा है!' पूतना ने यशोदा से कहा। उसके पुरुष जैसे कठोर मुख पर स्मित की रेखा उभर आई थी। 'इस आयु मे भी वह मेरे साथ खिलवाड कर रहा है। मेरे सिर से चम्पक-पुष्प खीचकर मेरे मुँह पर मार रहा है।'

मातृत्व के गौरव का अनुभव करती हुई यशोदा ने कृष्ण की ओर देखा। 'यह कैसा उत्पात मचाता है, यह आपको नही मालूम!' उन्होंने कहा।

'अभी से इतना उत्पाती है तो आगे न जाने क्या करेगा?' पूतना ने कहा।

उसने अपना हृदय आनन्द से पुलकित होते अनुभव किया। आनन्द-समाधि में उसने कृष्ण को फिर छाती से लगा लिया। उसके हृदय की सुषुप्त मातृत्व-भावना की नदी में मानो बाढ आ गई थी और उसके विशाल स्तनमण्डल मे से दूध की धाराएँ फूट पड़ी। उसकी चोली भीग गई। अपने समस्त हृदय, मन, आत्मा से वह उस बालक को चाहने लगी। उसे लगा कि उस सुन्दर बालक को उसे स्तनपान कराना ही पड़ेगा।

स्नान के पश्चात् तुरन्त ही उसने अपने स्तन पर सोमल लगाया था। इस प्रवाही को किस प्रकार तैयार किया जाता है, यह वह अकेली ही जानती थी। इससे पहले अनेक बार उसने यह द्रव्य अपने स्तनों पर इसी हेतु लगाया था कि बालक के मुँह में स्तनपान करते समय दूध के साथ सोमलयुक्त प्रवाही चला जाए और उसकी इहलीला समाप्त हो जाए। इस बार भी उसे यही करना था। और कोई चारा भी नही था। अपनी, अपने पति और बच्चो की जिन्दगी इसी पर निर्भर थी। उसने सोचा कि बस एक बार इस बालक को शेष कर दूँ तो महाराज कस की सदा के लिए कृपापात्री बन जाऊँगी।

उसका हृदय मानो बार-बार अत्यन्त आग्रहपूर्वक उसे प्रेरणा दे रहा था कि इस बालक को शीघ्र अपने हृदय से लगा। 'तू तो दुष्ट और दुखार्त नारी है ही। समस्त शरीर तथा मन-प्राण को पूरित कर सके, ऐसा अद्‌भुत आनन्द तूने पहले कभी नही अनुभव किया। आज तुझे अपूर्व अवसर मिला है। इस समय यदि तू अपने, अपने पति, अपनी सन्तानो के जीवन की भी बाजी लगा दे तो कोई बात नही। इस बालक को शीघ्र छाती से लगा!'

पूतना का समस्त सयम शेष हो गया। स्तन पर उसने जहर लगाया है, यह बात भी वह बालक के प्रति अपने अपूर्व आनन्द-उत्साह मे भूल गई, और उसने कृष्ण को गोद मे ले लिया। कृष्ण ने हॅसते-हँसते उसकी गोद से उतरने के लिए खीचा-तानी शुरू की। पूतना स्वयं पर अपना नियन्त्रण खो बैठी। कञ्चुकी के बंध उसने खोल दिए, स्तनों से दूध की धाराएँ बहने लगी, और उसने अपनी साड़ी के छोर से दूध से भीगे स्तन पोछ लिये।

उसे ऐसा लगा मानो कोई कान में कह रहा हो, 'तेरे स्तनो पर जहर लगा हुआ है। तेरा हृदय जिसके लिए छटपटा रहा है, उस बालक की मृत्यु को तू समीप बुला रही है।' परन्तु स्वयं पर अब उसका कोई नियन्त्रण रह नही गया था। आवेगपूर्वक कृष्ण को खीचकर उसने अपनी छाती से लगा लिया। कृष्ण भी आनाकानी किये बिना उसकी छाती से चिपट गए और उत्साहपूर्वक स्तनपान करने लगे।

अपूर्व आनन्द से पूतना मग्न हो गई। अवर्ण्य सुख का अनुभव उसने किया। 'पेट भरकर पी ले, बेटा ! ऐसा सुख मुझे किसी ने कभी नही दिया !' उसने मन-ही-मन कहा।

उसे ऐसा लगा मानो उसका मस्तिप्क काम नही कर रहा है। आनन्द-समाधि के कारण तो कही मूर्च्छा नही आ रही है ! उसे तो केवल एक ही इच्छा रह गई थी। यशोदा का बालक पय.पान करे, और चाहे तो उसके साथ वह उसकी सारी ज़िन्दगी, आशा, सर्वस्व सभी-कुछ चूस ले। 'हाँ, तुझ पर मै अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को तैयार हूँ, मेरे लाल !' उसने मन-ही-मन कहा, 'मै तेरी ही हूँ।"

उसका हृदय मत्त सागर की तरह उछल रहा था। मस्तिष्क मे मानो कोई हथौडा-सा मार रहा था। सारे शरीर में एक ऐंठन-सी अनुभव हुई और फिर किसी अज्ञात दु.ख का आघात और साथ-ही-साथ स्तन को जोर से चूसते बालक द्वारा प्रेरित आनन्द का भी अनुभव उसे हुआ।

गोप-गोपियाँ जहाँ टोले बाँधकर खेल रहे थे, वहाँ से कुछ हो-हल्ला और चीख़-पुकार सुनाई पड़ी। बड़े-बड़े बाँस लिये लोग दौड़े आ रहे थे। सबके आगे स्वय नन्द थे। उपस्थित लोगो मे खलबली मच गई। 'पूतना यहाँ आई है !'

'कहाँ है वह ? कृष्ण कहाँ है ?'

'कृष्ण-कृष्ण !' अधीरता तथा घबराहट से भरी आवाज़ मे नन्द ने ज़ोर-ज़ोर से पुकारा, 'कहाँ है वह ?'

'पूतना-पूतना-पूतना' यही भयकर शब्द सबके मुँह पर था।

यशोदा ने घबड़ाकर अपनी ओर बढ़े आ रहे लोगों को देखा। 'पूतना-पूतना, कृष्ण' ये शब्द उन्हें बार-बार सुनाई पड़े। अपनी बगल मे बैठी राजदरबार की उस स्त्री की ओर उन्होने दृष्टि डाली और समझ गईं कि वही पूतना थी।

परन्तु इससे पहले कि कृष्ण को यशोदा अपने पास खींचें, पूतना फटी आँखो, धीरे-धीरे धरती पर लुढक गई। बालक को अपनी छाती से चिपकाए रखने का अन्तिम प्रयास उसने किया था। मृत्यु को प्राप्त होकर वह अब ज़मीन पर पड़ी थी। उसके मुख पर एक मातृ-सुलभ

मधुर स्मित की रेखा उभर आई थी।

पूतना जिस समय साँस लेने के लिए छटपटा रही थी, उसी समय कृष्ण उससे विलग हो गए थे। धीमे-धीमे डग भरते वह यशोदा के पास आ पहुँचे। यशोदा ने तुरन्त उन्हे बाँहों में भर लिया। सभी सम्बन्धी अत्यन्त उत्तेजित और अधीर होकर यह जानने की कोशिश कर रहे थे कि आखिर बात क्या है ? नन्द जब उनके पास पहुँचे तो उन्होंने देखा कि पूतना जमीन पर चित पडी है।

'कृष्ण कहाँ है ? पूतना गोकुल के लिए प्रस्थान कर चुकी है, यह मैने मथुरा मे सुना और तुरन्त ही दौड़ा-दौड़ा यहाँ आया हूँ।' उन्होने हाँफते-हाँफते कहा।

'मार डालो पूतना को, मारो, मारो पूतना को,' लम्बे-लम्बे बाँस लिये दौडे आ रहे लोगों ने पुकारा।

'वह तो मर चुकी है। मेरे लाल ने यह काम किया !' यशोदा ने घृणा से पूतना के शव से दूर खिसकते हुए कहा।

कृष्ण को उन्होंने अपने हृदय से चिपका लिया। वह तो उनका प्राण, उनकी आत्मा, उनका सर्वस्व था।

१४

तृणावर्त

पूतना की मृत्यु का समाचार सुनकर कंस के क्रोध की सीमा नही रही। अपने मन्त्री, सलाहकार तथा मार्गदर्शक वृद्ध प्रलम्ब को उसने तुरन्त बुला भेजा।

'प्रलम्ब, अब तक तो मै किसी प्रकार स्वय को संयत कर रहा था; परन्तु अव सम्भव नही। गोकुल से प्रद्योत के लौटते ही मुझे उस अभागे गॉव पर आक्रमण कर उसे तहस-नहस कर डालना है। पूतना मेरे लिए अत्यन्त उपयोगी थी---उसकी मृत्यु का बदला मुझे लेना ही होगा।'

हाथ जोडकर विनय-भाव से प्रलम्ब ने कहा, 'महाराज, यदि आपकी ऐसी ही इच्छा है, तो फिर मै क्या निवेदन करूँ ? हॉ, आपकी यदि आज्ञा हो तो मैं अपना मत प्रकट कर सकता हूँ।'

'तुम्हारा मत जानने के लिए ही तो मैने तुम्हे बुलाया है। जो कुछ तुम्हे ठीक लगे सच-सच कहो; परन्तु इतना याद रखना कि पूतना का वदला न लेने की सलाह मै कभी मानने का नही।'

नम्रतापूर्वक मुस्कराकर प्रलम्ब ने कहा, 'परन्तु प्रभु, आप यदि गोकुल पर आक्रमण करे, तो क्या इसका यह स्पष्ट अर्थ नही होगा कि पूतना आपके कहने पर ही बालको की हत्या करती थी।'

'दुनिया क्या कहेगी, इसकी मुझे परवाह नही—मैं दुनिया का गुलाम नही हूँ।'

'आप गुलाम नही, मालिक है प्रभु ! मैं तो अपनी सामान्य बुद्धि से ही सोच रहा था। अब तक तो आपने जो कुछ किया, वह अपने प्राणो की रक्षा के लिए ही किया, भले ही लोग कुछ भी कहें; किन्तु प्रत्येक के धिक्कार की पात्र, पूतना के लिए यदि आप स्त्री-पुरुष-बालको सहित समस्त गोकुल गॉव को नष्ट कर देंगे, तो वह एक और बात होगी। इससे यादव रोष से भरे विना नही रहेगे।'

'यादवो की मुझे कोई परवाह नही। मेरे विरुद्ध जो कुछ वे कर सकते थे, उन्होंने अब तक किया—अब और अधिक वे क्या कर लेंगे ?'

'मैं जानता हूँ प्रभु, कि अधिक वे कुछ भी नही कर सकेंगे, परन्तु पाचाल के प्रतापी राजा द्रुपद की सहायता प्राप्त कर वे हमारे लिए आफत खड़ी कर सकते है। मथुरा पर द्रुपद की हमेशा आँख रही है और यहॉ से भागकर कई यादवों ने उसकी राजसभा में उच्च अधिकार भी प्राप्त किये हैं।'

क्षण-भर तो कंस विचारनिमग्न हो गया, फिर बोला, 'द्रुपद को यदि

मेरे साथ लड़ना ही है, तो मैं भी तैयार हूँ। युद्ध के लिए दीर्घकाल से हम दोनों तैयारी कर रहे है, तो फिर युद्ध यथाशीघ्र हो, यही अच्छा है।'

प्रलम्ब ने समझाते हुए कहा, 'हॉं महाराज, आपने युद्ध की तैयारी कर रखी है, यह मै जानता हूँ। परन्तु गोकुल को आप तहस-नहस कर देंगे, तो शूर विद्रोह किये बिना नही रहेगे। अक्रूर के वृष्णि भी फिर से उपद्रव करेगे। शायद वसुदेव के सम्बन्धी राजा कुन्तिभोज भी द्रुपद से मिल जाएँ। आपको याद तो होगा ही महाराज, कि हस्तिनापुर के राजा पाण्डु की पत्नी और वसुदेव की बहन पृथा को राजा कुन्तिभोज ने दत्तक लिया है। और फिर हस्तिनापुर के महाभयकर महारथी भीष्म भी शायद युद्ध मे सम्मिलित हो जाएँ। यदि ऐसा हुआ तो हमारी स्थिति चिन्ताजनक हो सकती है।'

थोड़ी देर कंस मौन रहा, फिर तिरस्कार से जॉघ पर हाथ मारकर बोला, 'तुम्हारी बात सदा सच निकलती है। तुम्हारी सलाह मुझे माननी ही पड़ेगी, परन्तु पूतना की मृत्यु का बदला किसी-न-किसी दिन मैं अवश्य लूँगा।'

प्रलम्ब के चले जाने के बाद कंस गहराई से इस समस्या पर विचार करने लगा। 'नन्द के पुत्र का जीवित रहना मेरे लिए सकटमय हो सकता है; परन्तु इस कंटक को दूर किस प्रकार किया जाए ? प्रलम्ब की बात भी सच है, गोकुल पर प्रत्यक्ष आक्रमण करना कई ख़तरों को मोल लेना है।' उसने मन-ही-मन कहा।

सिंहासन पर से उठकर वह खिड़की के पास गया और अन्यमनस्क-सा यमुना की ओर देखने लगा। एकाएक उसकी दृष्टि किनारे पर खड़े पक्षी पकड़ने का प्रयत्न करते हुए एक वनवासी की ओर गई और उसके मन में एक विचार उठा—पक्षियों का शिकार करने वाला बालकों के शिकार मे भी इतना ही निपुण होगा। 'यही ठीक है', उसने फैसला किया और फिर ताली बजाकर अपने विश्वसनीय भृत्य को बुलाया तथा उस शिकारी को तुरन्त ले आने का हुक्म दिया।

पूतना निर्जीव होकर एकाएक भूमि पर गिर पडी और कृष्ण के प्राण किसी तरह बच गए, यह जानकर यशोदा को गहरा आघात लगा

था। यह तो उन्होंने स्वप्न में भी कल्पना नही की थी कि कोई ऐसा क्रूर व्यक्ति, स्त्री या पुरुष होगा, जो उनके बालक को जहर देने को तैयार हो। सारी ज़िन्दगी में उन्होंने किसी का कुछ बिगाड़ा नही था, बल्कि हरेक की सहायता ही की थी। सभी से उनका स्नेहभाव था। परन्तु पूतना किस प्रकार मथुरा के निर्दोष बालकों को जहर देकर मार डालती थी, यह बात अब उनके ध्यान में आई।

यदि वह दुष्ट राक्षसी अपनी युक्ति मे सफल हो जाती, तो उनका क्या होता, यह सोचकर ही यशोदा थर्रा उठीं। मृत्यु-मुख से कृष्ण किस प्रकार बाल-बाल बचा, यह सोचकर उनकी आँखों से अश्रु बहने लगते। कृष्ण को अपनी छाती से लगाकर मन्द स्वर में वह कहती, 'मेरा कृष्ण, मेरा लाल!'

एक ओर तो यशोदा को कृष्ण की सुरक्षा के लिए ऐसे विचार मन में उठते, दूसरी ओर उनके प्रति एक अज्ञात भय तथा आदर की भावना भी उनके मन में आती। कृष्ण का रूपलावण्य जितना अद्‌भुत था, उतने ही अद्‌भुत उनके पराक्रम भी थे। पूतना ने उनको स्तनपान कराया, किन्तु विष का प्रभाव उन पर ज़रा भी नहीं हुआ, उलटे पूतना ही निर्जीव होकर गिर पड़ी। और यह एक-दो वर्ष के बालक का पराक्रम था! फिर भी यशोदा ने निश्चय किया कि कृष्ण को वह अब एक क्षण भी अपने से विलग नहीं होने देंगी। और यदि वह किसी प्रकार दूर भाग भी जाए, तो उसका अच्छी तरह ध्यान रखने के लिए उन्होंने नन्द, रोहिणी तथा कुटुम्ब के अन्य जनों को अच्छी तरह सचेत कर दिया था।

फिर भी कृष्ण को काबू में रखना कोई आसान बात नहीं थी। यशोदा एक क्षण भी किसी काम में लग जातीं, तो कृष्ण रोहिणी के पुत्र बलराम के साथ घूमने निकल जाते। यशोदा का मन भय से सिहर उठता और वह कृष्ण-कृष्ण पुकारती उनको खोजने निकल जाती। और, जब वह मिल जाते तो मानो कोई भयंकर विपत्ति टल गई है, इस भाव से इन्हे उठाकर हृदय से लगा लेतीं। मन्द-मन्द मुस्कराकर जब कृष्ण उनके गले से लिपट जाते, तो यशोदा सारा गुस्सा भूल जाती।

यशोदा से भी अधिक भय नन्द को कृष्ण के विषय में था। वह जानते

थे कि पूतना गोकुल क्यों आई थी। ऐसा लगता था, मानो कंस को इस बात की खबर लग गई हो कि कृष्ण देवकी का आठवाँ पुत्र है। पूतना की मृत्यु से कंस कृष्ण की हत्या करवाने का अपना इरादा नही बदल सकता था। नन्द ने अपने सम्बन्धियों और नौकर-चाकरों को बुलाकर सावधान किया कि गोकुल में आए किसी भी नये व्यक्ति पर अच्छी तरह निगरानी रखी जाए। किसी भी अनजान आदमी को कृष्ण के पास नही जाने देना चाहिए। एक-दो मजबूत आदमियों को साथ भेजे बिना कृष्ण को यशोदा के साथ भी बाहर नही भेजा जाता।

परन्तु कृष्ण कोई सामान्य बालक नही था, वह तो किसी और ही मिट्टी का गढा हुआ था। वह अपनी इच्छा होती, वहाँ घूमता-फिरता और मौका मिलते ही अपने चौकीदारो की नज़र बचाकर किसी दीवार के पीछे, गोशाला अथवा घास भरने के स्थानों मे जा छिपता। कृष्ण को कही न देखकर यशोदा आकाश-पाताल एक कर देती और सभी उन्हें खोजने लगते। जब वह मिलते तो उनके मुख पर एक मन्द-मन्द मुस्कान छाई रहती। कभी-कभी तो वह बलराम को धक्का देकर आगे कर देते, मानो सारा दोष उन्ही का हो। इस आँख-मिचौनी के खेल में उन्हे बहुत मज़ा आता, परन्तु यशोदा और उनके सम्बन्धी व नौकर-चाकरों को यह ज़रा भी पसन्द नही था। अत्यन्त चिन्तातुर होकर वे ठौर-ठौर जब कृष्ण को खोजकर थक जाते, तो वह पास ही खड़े मन्द-मन्द मुस्कराते दिखाई पड़ते।

'कृष्ण, तू था कहाँ? मैं तो ढूँढ-ढूँढकर थक गई तुझे!' यशोदा कहती, और कृष्ण, 'मैं तो यहीं था, माँ!' कहकर उनसे लिपट जाते। यशोदा अपना सारा परिश्रम सार्थक अनुभव करने लगतीं। परन्तु कृष्ण के इन उत्पातों से नन्द और उनके साथी अत्यन्त चिन्तातुर हो उठे थे।

इस प्रकार कुछ दिन बीत गए। एक दिन यशोदा अपने सम्बन्ध की किसी प्रसूता स्त्री को देखने गईं, क्योंकि उसके बहुत कष्ट से प्रसव हुआ था। वहाँ से लौटते समय सदा की भाँति उन्होंने कृष्ण को गोद में लेकर बाएँ हाथ से पकड़ रखा था। एकाएक कृष्ण को खेल सूझा। मानो घोड़े पर सवार हों, इस प्रकार वह ज़ोर-ज़ोर से ऊपर-नीचे उछलने लगे। उन्हें

पकड़ रखना यशोदा के लिए असम्भव हो गया। 'कृष्ण, यह तू क्या कर रहा है, बेटा ! चुपचाप बैठा रहा न !' उन्होने कृष्ण को कहा, मगर वह तो और भी ज़ोर से उछलने लगे। आखिर यशोदा को उन्हे सँभालना कठिन हो गया। उन्होने हारकर कृष्ण को नीचे उतारा और खुद एक चबूतरे पर साँस लेने बैठ गई।

एकाएक आकाश बादलों से घिर गया। धूल का बवण्डर सारे शहर पर छा गया और इस जोर से बहने लगा कि यशोदा के लिए खड़ा रहना मुश्किल हो गया। उनकी आँखो मे धूल भर गई। कृष्ण को एक ओर बिठाकर उन्होंने एक हाथ से एक खम्भे को पकड लिया। कृष्ण बार-बार उनका हाथ छुडाने की कोशिश कर रहे थे और उन्हें पकड़ रखना मुश्किल हो रहा था। थोड़ी देर बाद जब आँधी का जोर कुछ कम पडा, और आँखे खोलकर उन्होने देखा, तो कृष्ण वहाँ नही थे।

'कृष्ण, कृष्ण, कहाँ है तू ?' उन्होने जोर से पुकारा। परन्तु कोई उत्तर नही मिला। पास-पड़ोस के गली-कूचो मे वह उसे ढूँढने निकली। लेकिन कृष्ण का कही पता नही था। भय से यशोदा पीली पड़ गई और कृष्ण-कृष्ण चिल्लाने लगी। जब कही भी कृष्ण दिखाई नही पड़े, तो वह रोने लगी। और 'मेरा कृष्ण कहाँ गया ? कृष्ण कहाँ गया ?' कहकर विलाप करने लगी।

उस मार्ग से गुज़रती हुई गोपिकाओ को जब इस बात की खबर लगी तो वे भी कृष्ण को ढूँढने लगी। नन्द को भी सूचित किया गया और सभी लोग कृष्ण की खोज मे चल पड़े। जगह-जगह तलाश करते हुए वे गाँव के किनारे पहुँच गए। वहाँ उन्होने एक आदमी की लाश पड़ी देखी। उन्होंने सोचा कि धूल के बवडर में भागते समय वह आदमी गिर गया होगा और वहाँ पड़ी शिला से उसका सिर टकरा गया होगा। एक गोकुल-वासी ने उसे पहचान भी लिया। वह एक व्याध था और दो दिन पहले मथुरा से आया था। उसका नाम तृणावर्त था।

नन्द के मुख से निराशा के उद्गार निकल पड़े। इसी आदमी ने कृष्ण को कही छिपा दिया होगा ! लेकिन कहाँ ? सभी लोग कृष्ण को पुकारते हुए भिन्न-भिन्न दिशाओं में दौड़े। थोड़ी देर बाद एक मधुर,

प्रिय स्वर सुनाई पड़ा, 'मैं यही हूँ, बाबा !' और पडोस के आम्र-कुंज से कृष्ण निकल आए। नन्द ने दौड़कर उन्हें गोद में उठा लिया।

'कृष्ण, तू यहाँ कैसे आ गया ?' नन्द ने पूछा ; धरती पर निर्जीव पड़े तृणावर्त की ओर अँगुली से इशारा करते हुए कृष्ण ने कहा, 'यह मुझे इधर धकेल लाया। इसने जोर से मुझे पकड लिया था और मैं भी ज़ोर से इसका हाथ पकड़े था। परन्तु, फिर तो यह गिर पडा और मैं इसकी पकड से छूटकर भाग गया।' यह कहकर वह हँसने लगे।

पूतना के कृष्ण को विष देने के प्रयास की खबर जब वसुदेव-देवकी ने सुनी, तो वे दोनो अत्यन्त भयभीत हो उठे। उन्हें लगा कि कंस को पता चल गया है कि कृष्ण कौन है और कहाँ है, नही तो पूतना गोकुल नही जाती; और अब वह कृष्ण के प्राण लिये बिना नही छोड़ेगा। गर्गाचार्य ने जब उन्हे सारी बात कही कि पूतना किस प्रकार ब्राह्मण-पत्नी बनकर गोकुल गई, स्तन पर जहर लगाकर कृष्ण को पिलाने का प्रयास किया और अन्त मे अपने ही प्राण खो बैठी, तो वसुदेव-देवकी ने अत्यन्त व्याकुलता से यह सब विवरण सुना।

देवकी की यह श्रद्धा और भी बलवती हो उठी कि मेरा बालक अवश्य ही अवतारी पुरुष है। पूतना को मारने जैसा चमत्कार भगवान् के सिवा और कौन कर सकता है ! अश्रु-भीगे नयनों से वह अपने पूजागृह में गईं और भक्ति-भाव से प्रार्थनालीन हो गईं। परन्तु वसुदेव को अपने बालक मे इतनी श्रद्धा नही थी। वह तो इस आशंका से बहुत घबरा गए कि कृष्ण की हत्या करवाने का संकल्प कंस कभी नही छोड़ेगा। थोड़े दिन बाद वसुदेव ने अक्रूर तथा गर्गाचार्य से मन्त्रणा की। किसी भी उपाय से कृष्ण को बचाना ही होगा। और कुछ नही तो कंस का ध्यान कही और जाए इसका प्रबन्ध करना पड़ेगा।

अक्रूर ने वसुदेव के मन का समाधान करते हुए कहा, 'वसुदेव, अधिक चिन्ता करने की आवश्यकता नही। अभी तो वैसे चिन्ता का कोई कारण है भी नही। मैंने सुना था कि कंस ने प्रलम्ब को बुलाकर उसकी सलाह माँगी थी। वह तो गोकुल को नष्ट-भ्रष्ट कर देने पर तुला था।'

'हे भगवान् !' वसुदेव ने कहा ।

'यह मत भूलो कि प्रभु ने हमारा उद्धार करने के लिए ही अवतार लिया है,' अक्रूर ने कहा, 'उनका कोई कुछ नही बिगाड सकता । फिर भी हमे तो सामान्य लोगों की भाँति ही पूरी सावधानी बरतनी चाहिए । वैसे भय की कोई बात नही । मुझे खबर मिली है कि पूतना का बदला न लेने की प्रलम्ब ने सलाह दी है ।'

'परन्तु एक भय है,' गर्गाचार्य ने कहा, 'प्रति सप्ताह मै गोकुल जाकर वहाँ के समाचार ले आता हूँ । नन्द की ओर से आपको भी समाचार मिलते रहते है । कृष्ण के बारे में पूछताछ किये बिना आपसे नही रहा जाता । देर-अबेर कस को इसकी खबर पड जाएगी । इसी से शायद वह यह अनुमान लगा ले कि कृष्ण आपकी ही सन्तान है; और यदि उसकी यह शका दृढ़ हो गई, तो वह कृष्ण को मारने का कोई उपाय नही छोड़ेगा ।'

'तो आप क्या परामर्श देते है ?' वसुदेव ने पूछा ।

'कृष्ण के साथ आपका कुछ भी सम्बन्ध है, इसकी आशंका कस को नही होनी चाहिए । इसके लिए आवश्यक है कि आप तथा देवकी मथुरा छोड़कर एक लम्बी यात्रा पर निकल जाएँ ।' गर्गाचार्य ने उत्तर दिया ।

'हमारी अनुपस्थिति में हमारे बालक का क्या होगा !' करुण स्वर मे वसुदेव ने प्रश्न किया ।

'मैं तो यहाँ रहूँगा ही । पूजा-पाठ कराने के लिए गोकुल जाते हुए वृद्ध ब्राह्मण के प्रति किसी को क्या शका होगी ? और फिर नन्द को कहकर उससे यज्ञ भी कराऊँगा, ताकि कुछ दिन वहाँ रहा भी जा सके ।' गर्गाचार्य ने कहा । अक्रूर ने अपना विचार व्यक्त करते हुए कहा, 'वसुदेव, मुझे भी लगता है कि गर्गाचार्य की बात सही है । यदि आप मथुरा छोड़-कर कुछ समय के लिए कही दूर चले जाएँ, तो कृष्ण अधिक सुरक्षित रहेगा । वैसे भी मथुरा मे रहकर आप कृष्ण को बचाने के लिए क्या कर सकते हैं ? और फिर मैं तो हर समय यहाँ उपस्थित रहूँगा ही ।'

'अक्रूर, मथुरा छोड़कर इतनी दूर चले जाना, जहाँ कि हमारे प्रिय

पुत्र का कोई समाचार न मिल सके, देवकी के लिए अत्यन्त कष्टप्रद होगा।' वसुदेव ने कहा।

भय-मिश्रित स्वर मे गर्गाचार्य ने कहा, 'जानते है, आज सवेरे मुझे क्या खबर मिली है ? चार दिन पहले एक वनवासी ने कृष्ण का हरण किया था, जिस दिन रेत का बवण्डर आया था, उसी दिन। किन्तु वन-वासी तो बवण्डर मे फँसकर अपनी जान गँवा बैठा और कृष्ण हँसता-खेलता वापस घर आ गया। वसुदेव, देवकी की श्रद्धा सच्ची है—वह प्रभु का ही अवतार है।'

'तो फिर हम फैसला कर ही ले, वसुदेव !' अक्रूर ने कहा, 'मैं तुमको वचन देता हूँ कि एक-एक वृष्णि का बलिदान भले ही देना पड़े, परन्तु कृष्ण का बाल भी बाँका हम नहीं होने देगे। मथुरा छोड़कर यदि तुम लोग चले जाओ, तो शायद कृष्ण की सँभाल मैं अधिक अच्छी तरह कर सकूँगा। यह शंका कंस के मन से मिटाना अति आवश्यक है कि कृष्ण तुम्हारा पुत्र है।'

'देवकी से मैं मथुरा छोड़ने को कैसे कहूँगा ? आगे भी वह कम दुखी नही है, इस पर यदि यह आफत उस पर आ गई तो वह बचेगी नहीं। जिस पुत्र के मुख-दर्शन का आनन्द वह क्षण-भर भी नही उठा सकती, उसके क्षेमकुशल की चिन्ता मे वह मृतप्राय जीवन बिताती है। आपको खबर नही, उसका तो सारा जीवन ही कृष्णमय हो गया है।'

'स्वामी !' अत्यन्त भाव-विह्वल देवकी का कम्पित स्वर सुनाई पड़ा।

तीनो जनो ने पीछे मुड़कर देखा। दरवाज़े के बीच खम्भे का सहारा लिये देवकी खड़ी थी। दृढ तथा कठोर मुखाकृति ! होठ काँप रहे थे और आँखे भय से फटी हुई थीं।

'स्वामी, आचार्य ठीक ही कहते हैं। हमे मथुरा छोड़कर चले ही जाना चाहिए। मेरा प्रभु यदि जीवित रहे, तो मै मरने को भी तैयार हूँ।' देवकी ने कहा और मूर्च्छित होकर वहीं गिर पड़ी।

१५

माखनचोर

गोकुल मे भोर के समय एक दिन छः वर्ष का बालक कृष्ण बैठा हुआ विचार कर रहा था—अपने तो जीवन मे बस आनन्द-ही-आनन्द है। पौ फटते ही यशोदा मैया गाये दुहने बैठ जाती है। बछड़े अधीर हो रँभाने लगते है, और मैया प्रत्येक का नाम ले-लेकर पुकरती हैं, उन्हे शान्त करती हैं। ये आवाजें जब मेरे कान मे पडती है तो मै समझ जाता हूँ कि अब उठने का समय हो गया और आँखें मलता हुआ मैं उठ जाता हूँ। उस समय मुझे वड़ी प्रसन्नता होती है, पता नही क्यो !

परन्तु बलराम भारी आलसी है। झकझोरे बिना वह कभी उठता ही नही। जागकर भी देर तक आँखें मलता रहता है, और रीछ की तरह घूरता है। उस समय मैं और कुछ न करके उसके पैर पकड़कर खीचता हूँ। वैसे तो देखने में वह ऊपर से कठोर है, परन्तु मुझ पर बहुत प्रेम रखता है और मुझे भी वह बहुत प्रिय है। इसीलिए तो वह मुझे छोड़कर अपनी माता के साथ रहने मथुरा नहीं गया।

जाग उठने के बाद हम दोनों हाथ-मुँह धोकर तैयार हो जाते है। इससे पहले कि गायों को चराने महावन ले जाने के लिए दूसरे ग्वाले गाँव के छोर पर इकट्ठा हो जाएँ, हम दोनों वहाँ पहुँच जाते है। इसी तरह तो ग्वालों का प्रधान बना जाता है। यदि हमारे पहुँचने मे कभी कुछ देर हो जाए, तो ये बेचारे अधीर हो उठते हैं।

बलराम और मैं, दोनों भाई धोती पहन, सिर पर साफा बाँध, हाथ में लकड़ी लेकर बाहर निकलते हैं। बलराम कोई काम सुघड़ता से नही करता। परन्तु मैं तो अपनी धोती और साफा खूब सँवारकर बाँधता हूँ, फिर एक मोरपाँख कहीं से लाकर उसमें खोंस लेता हूँ। बलराम को सजने-सँवरने की कोई धुन नहीं।

वैसे हम दोनों एक जैसी ही पोशाक पहनकर गायें चराने जाते हैं।

मैं ग्वालों का मुखिया ठहरा, इसलिए मुझे सभी को प्रसन्न रखने की चेष्टा करनी पड़ती है। फिर वे मेरे मित्र भी है, उनके बिना आनन्द-विनोद ही कैसे हो ? हम लोग सब पानी में कूदते, गोते लगाते है; फिर सबके साथ जगल में पहुँच जाते है। वहाँ गायो को चरने के लिए छोड़कर वापस आ जाते है। घर लौटने से पहले हम सब साथी नदी पर जाते है। बलराम मुझसे बड़े है, इसलिए उन्हे आगे रखना मैं कभी नही भूलता। परन्तु मेरे भाई का स्वभाव इतना अच्छा है कि यदि मैं ही कभी आगे हो जाऊँ, तो वह बुरा नही मानता। फिर भी बड़े भाई का खयाल तो मुझे रखना ही चाहिए।

अपने मित्रों के साथ नदी में नहाने में बड़ा मजा आता है। एक-दूसरे से हम तैरने की होड़ लगाते हैं, पानी के छीटे मारते है और कई बार किसी की गर्दन पकड़कर उसका सिर पानी में तब तक डुबोए रखते है, जब तक कि वह छटपटाने न लग जाए। पानी में मैं तो किसी की पीठ पर ही सवारी कर बैठता हूँ, परन्तु मेरी पीठ पर सवार होने की कोई हिम्मत नही करता।

वहाँ से फिर मैं गाँव लौटता हूँ—घर नही। गाँव की स्त्रियाँ कब क्या करती है, इसकी मैं खबर रखता हूँ। सवेरे जब वे सब नदी पर पानी भरने जाती हैं, तो वह अवसर मैं कभी नहीं चूकता। जिस घर में कोई नही होता—सब बाहर गये रहते हैं—उस घर पर मैं छापा मारता हूँ। चोर की तरह धीमे-धीमे चलकर या तो पिछवाड़े से, अथवा कोई खिड़की खुली रह गई हो तो उसमें से, मैं घर के भीतर दाखिल हो जाता हूँ। यदि ये दोनों ही तरीके असफल रहे तो छप्पर पर चढ़कर खपरैल हटाकर भीतर घुस जाता हूँ।

यह सब मैं बड़ी आसानी से कर लेता हूँ। इसमें मेरी बराबरी कोई नहीं कर सकता। मुझ जैसा चपल गाँव में और है ही कौन ? बलराम से तो कुछ बन ही नही पड़ता। एक तो उसका शरीर ही भारी है, फिर चपलता भी उसमें इतनी नही है। कभी-कभी कोई साथी मेरी मदद करने जरूर आ जाता है, परन्तु अधिकांश तो अपने माता-पिता के डर से मुझे अकेला छोड़कर ही चल देते हैं। बलराम भी कई बार मुझे अकेला छोड़

देते हैं। परन्तु मैं इससे डरनेवाला नहीं हूँ। मेरी नज़र हमेशा छीके पर टँगी मही-माखन की हँडियों पर रहती है।

मैं ठहरा नन्हा बालक, इसलिए छीके तक मेरा हाथ तो पहुँचने से रहा। परन्तु मैं उसका भी उपाय जानता हूँ। किसी बालक को बुलाकर या तो मैं उसकी पीठ पर चढ़ जाता हूँ, अथवा ढेला उठाकर जहाँ मटकी पर फेका कि काम बना ! मटकी मे कभी छेद हो जाता है, कभी उसमें दरार पड़ जाती है, और दही अथवा माखन नीचे टपकने लगते है। कभी-कभी तो हँडियाँ फूट भी जाती है। तब अंजुली में जितना दही-मक्खन लिया जा सके, उतना लेकर चल पड़ता हूँ अथवा धार के नीचे मुँह खोलकर खड़ा हो जाता हूँ। परन्तु केवल अपना ही पेट भरना मुझे पसन्द नहीं। दोनो हाथो से अजुलि भर माखन लेकर मैं जिस रास्ते आया, उसी रास्ते वापस निकल जाता हूँ और अपने साथियो को दही-माखन का प्रसाद पहुँचाता हूँ। चोरी का दही-माखन हम लोगों को बड़ा मीठा लगता है। और, अगर उस समय कोई साथी हाजिर नही रहा, तो प्रसाद बन्दरों को ही खिला देता हूँ। आनन्द से किलकारी भरते हुए बन्दर पेड़ों पर से कैसे उछल-उछलकर आते है और हाथ से माखन लेकर फिर पेड़ों पर चढ़ जाते हैं। उन्हें देखकर मै बहुत खुश होता हूँ। बन्दर भी कैसे मौजी जीव है !

पर अधिक देर तक किसी के घर ठहरना उचित नही। पुरुप तो सभी जगल मे अथवा खेतों पर गये होते है, परन्तु स्त्रियो का कुछ नही कहा जा सकता। वे तो चाहे जब टपक पड़ती हैं, विशेषकर जब उनकी कोई आवश्यकता नही होती। इसलिए मैं तो जिस रास्ते से आया था, उसी रास्ते से बाहर निकलकर चटपट घर पहुँच जाता हूँ और हाथ-मुँह धोकर बैठ जाता हूँ। पर यशोदा मैया बड़ी चतुर हैं। उन्हें पता नही कैसे खबर पड़ जाती है कि मैंने चोरी से माखन खाया है। नहीं तो भी, यह वहम तो उन्हें सदा रहता ही है।

कई बार तो उनसे निपटना मेरे लिए भारी हो जाता है। वह स्वयं तो सदा साफ-सुथरी और सुघड़ रहती ही हैं, मुझे भी सदा ऐसा ही रखना चाहती हैं। कभी-कभी गन्दा बनने, अथवा खेल-खेल मे गलियों में धूल

उछालने या बछड़ो के साथ खेलने में कितना आनन्द आता है, इसकी उन्हें जरा भी खबर नही। एक बार तो उन्हें यह वहम हो गया कि मैने मिट्टी खाई है। हाथ मे बेत लेकर वह मेरे पास आई और धमका-कर कहने लगीं, 'खोल, अपना मुँह खोल तो ज़रा!' मैंने तुरन्त मुँह खोल दिया। वह इतना साफ-सुथरा और अच्छा था कि उसे देखकर तो वह मानो ठगी-सी रह गई, जैसे आकाश के सभी तारे उसमे उन्होने देख लिए हो।

फिर भी कई बार इतनी आसानी से छुटकारा नही मिलता था। एक दिन बलराम और मैं आँगन मे राजा-राजा का खेल खेल रहे थे। उपलों का एक किला भी हम लोगो ने बनाया। फिर एक-दूसरे पर उपले उठा-उठाकर फेकने लगे। हम दोनो का द्वन्द्व-युद्ध भी हुआ। परन्तु उसका कोई परिणाम नही निकला, इसलिए हम दोनो ने वहाँ पर पड़े ताजे गोबर से एक-दूसरे का मुँह लीपना शुरू किया। कितना मज़ा आया था उस दिन इस प्रकार आपस में खेल करने मे!

हम दोनों ने सोचा था कि मैया घर मे नही होंगी। परन्तु वह भीतर ही थी। हमारा युद्ध-गर्जन सुनकर वह बाहर आ गई और हमें देखा तो एकदम आगबबूला हो गई। हम दोनो के कान पकड़कर उन्होंने हमारे दो-दो चपते लगाई। फिर बड़बड़ाते हुए हम दोनों को नहलाकर साफ किया। जैसे-जैसे मैया का क्रोध बढता गया, वैसे-वैसे हमे अधिक आनन्द आता गया और हम हँस-हँसकर उनकी पकड़ में से छूटने का प्रयत्न करने लगे। फिर तो वह बेंत की छडी ले आई। बलराम डरकर एक कोने में छिप गया। परन्तु मैं तो जहां-का-तहाँ डटा रहा। बलराम को मैया का स्वभाव नही मालूम। मैने तो आँखे मूँदकर रात के समय महावन में, जैसा कि सियार करते है, वैसी आवाज़ करना शुरू किया। मैं जानता था कि ऐसा करने से माँ पिघल जाएँगी। तुरन्त ही वह छड़ी छोड़कर दोनों हाथ फैलाए खड़ी हो गई। मैं कूदकर उनकी गोद मे चढ गया और जोर-जोर से चिल्लाने लगा। बस मैया का सारा क्रोध हवा हो गया। उन्होंने मेरी पीठ थपथपाई, मुझे प्यार किया और आँसू पोंछकर मुझे छाती से लगा लिया।

इस प्रकार जब हमारे बीच समाधान हो गया, तो बलराम भी कोने मे से बाहर निकल आया। उसकी माता रोहिणी काकी जब मथुरा रहने गई, तब वह केवल मेरे प्रेम के कारण ही गोकुल रहा था, यह बात माँ भूली नही थी।

'इसकी भी मैं माँ ही हूँ,' यह आश्वासन उन्होने रोहिणी काकी को दिया था। और मुझे तो दाऊ (बलराम) इतना अच्छा लगता कि उसके बिना मैं रह नही सकता था। इसलिए माँ ने उसे भी गोद मे बिठाकर उसका लाड-दुलार किया। हम दोनो को मैया बहुत अच्छी लगती है।

पर मुश्किल तो दरअसल इन गोपियों को लेकर है, विशेषकर बडी उम्र की गोपियों को लेकर। वे हमारे लिए कई कठिनाइयाँ उपस्थित करती। जब-जब उनका दही-माखन का मटका फूटता, वे मुझ पर ही शक करती, और मैया के पास आ मुँह बिचकाती हुई मेरी शिकायत करती। मै मैया के पीठ-पीछे खड़ा हो गोपियों के सामने आँखे नचाता। बहुत-सी गोपियाँ तो भले स्वभाव की थीं; उलाहना देती हुई भी मुझे देखकर हँस पड़ती। मै ज़ोर से उनकी बात का विरोध करता। मटकी मैंने फोडी ही नही—फोड़ भी कैसे सकता था ? मै तो उस समय नदी-किनारे था। मेरी बातें सुनकर गोपियाँ हँस पड़ती और मुझे 'माखनचोर' कह-कर चिढाती। मैं माथा हिलाकर 'ना, ना' कहता ही रहता।

मुख पर क्रोध का भाव धारण कर और भवे चढाकर मैया कहती, 'कन्हैया, तूं बड़ा नटखट है रे—बडा ऊधमी! सारी व्रजबालाओं को सताता है!' मैं निर्दोष बनकर कातर कण्ठ से कहता, 'मैया, इन गोपियों को तो मेरी बाँक निकालने में ही रस मिलता है—मै तो बन मे गैया चरा रहा था।'

'मेरो छोरो कहे कि तूँ उस वेला वहाँ था ही नहीं,' एक गोपी कहती।

'तेरो छोरो मेरो साथी भलो, पर वो लुच्चो है ! कौन जाने ओ खुद ही माखन चुराकर खा न गयो होय ! तेरे घर के पिछवाड़े मैने खुद ही उसे माखन खाते देखा है।'

यह सुनकर सभी गोपियाँ हँस पड़ती।

'और तूँ तो हरिश्चन्द्र है न !' अट्टहास कर मैया मुझसे कहती, 'तूँने उसे माखन खाते कहाँ से देखा, बोल ! घर के भीतर से नही ?'

'ना, ना, मैया, मै घर के भीतर कहाँ था ! मैं तो सामने के पेड़ पर से देख रहा था। दाऊ (बलराम) भी था, मेरे साथ वहाँ।'

'तूँ झूठ बोल रहा है,' मैया कहती और गुस्सा होने का दिखावा करती। परन्तु इसमे वह कभी सफल नही हो पाती। फिर आँखों में आँसू लाकर, जैसे मुझे बहुत बुरा लग गया हो, मैं गुस्से मे बडबड़ाता वहाँ से खिसक जाता।

'मैं तुझे ज़रा भी अच्छा नही लगता—तेरे मन तो मैं तेरा बेटा ही नही हूँ, आँ-आँ.........'

यह सुनकर माँ पिघल जाती। मुझे अपने पास खीचकर कहती, 'ना, ना, कन्हैया, यह तूँ क्या कहे है, मेरा लाल ! तूँ मेरा राजा बेटा है। पर देख, आज से कही भी कभी भी माखन मत चुरैयो !'

'काहे को चुराऊँ हूँ माखन कभी !' मैं वड़े जोश में आकर कहता, पर अपनी हँसी छिपाने के लिए मै माँ की गोद में छिप जाता।

फिर मैया सभी बाते भूल जाती। गोपियाँ सिर हिला-हिलाकर कहती, 'बडो भलो है न यह पूत तेरो !' मेरी यह तारीफ सुनकर मेरी भी हँसी फूट पडती। वैसे ये गोपियाँ बडी भली है, मन को भाये वैसी ! मुझे सदा प्रेम से घर बुलाकर बिन माँगे ही ताज़ा माखन खिलाती है। पर, कुछ गोपियाँ मूर्ख भी थी। मैया के पास आकर मेरे बारे में खरी-खोटी लगाती।

'ठीक तो, अब इनका कुछ उपाय करना पड़ेगा !' मैंने मन-ही-मन सोचा। बलराम और मैं बड़ी सावधानीपूर्वक खबर रखते कि ये गोपियाँ घर से बाहर कब निकलती है। फिर बलराम की पीठ पर चढकर, आँगन की दीवार फाँद मैं उनके घर के भीतर कूद पड़ता और बछड़ों को छुड़ाकर आँगन के दरवाज़े खोल उन्हे बाहर ढकेल देता। जब घर के लोग वापस आते और खोये हुए बछड़ों को ढूँढने में हैरान होते, तो हमे यह देखकर बड़ा मज़ा आता। इस तरह बस, अपने जीवन में तो आनन्द-ही-आनन्द था।

१६
चीरहरण

छः वर्ष का बालक, कन्हैया अपने मन मे सोचता था, यह जीवन कितना सुन्दर है ! कैसी भली लगती है गोकुल की ये छोटी-छोटी छोरियाँ ! कितने सुन्दर है इनके सुकोमल चेहरे और कितनी शोभायमान है इनकी घनी केश-राशि ! मेरे साथ ये सभी खेलने आती है, परन्तु मेरे मित्रो के साथ नही खेलती। बलराम वैसे तो काफी बहादुर है, मगर लड़कियो से उसे न जाने क्यों डर लगता है। मेरी तो बात ही निराली है। मुझे लड़कियो के साथ घूमना-फिरना अच्छा लगता है और लडकियों को भी मेरा साथ पसन्द है।

गोकुल में लड़के और लड़कियाँ अलग-अलग टोलियाँ बनाकर नदी पर नहाने जाते है। लड़के और लड़कियों के नहाने का समय तथा स्थान भी अलग-अलग है। परन्तु, इस बात की वे अच्छी तरह खबर रखती है कि मैं नहाने कब जाता हूँ और ठीक उसी समय नदी पर स्वयं नहाने चली आती है। जिस स्थान पर मैं अपने मित्रो सहित नहाता रहता हूँ, उसके नज़दीक ही नदी में उतर आती है। उनकी माताओ को यह पसन्द नही। परन्तु इन बालिकाओं को देखकर मेरा हृदय आनन्द से नाच उठता है। मेरे मित्र उन्हें देखकर हँसते हैं और सीटियाँ बजाते है, परन्तु मैं उन्हे ऐसा करने से रोकता हूँ। इन नन्ही-नन्ही सुन्दर बालिकाओ के साथ ऐसा बर्ताव भला कोई करता है, हमारे कुलपुरोहित गर्गाचार्य ने मुझसे एक बार कहा था, 'तू क्षत्री है, निर्बल की रक्षा करना ही तेरा धर्म है।' और, ये बेचारी लड़कियाँ तो निर्बल ही समझी जाएँगी न ! न उनसे दौड़ा जाता है, न पेड़ पर चढ़ा जाता है और ज़रा भी कुछ हुआ, तो रोने लग जाती हैं।

नदी मे से नहाकर मैं बाहर न निकलूँ तब तक ये लड़कियाँ भी नहाने का उपक्रम करती रहती हैं। टेढ़ी नज़रों से वे बराबर देखती

रहती है कि मैं क्या करता हूँ और उनकी ये हरकतें मुझसे छिपी नही है। मित्रों को आगे जाने देकर मैं जान-बूझकर पीछे रह जाता हूँ और लडकियों पर दृष्टि दौडाता हूँ। नदी मे से बाहर निकलकर वे सब अपने-अपने कपडे खोजने लगती है और हा-हा, ही-ही करती रहती है। ऐसे अवसरो पर मै कमरबन्द से अपनी बाँसुरी निकालकर बजाने लगता हूँ। यह तो सभी जानते है कि सारे गोकुल में मेरे जैसा कोई बाँसुरी बजाने-वाला लडका नही है। बाँसुरी की धुन सुनकर ये सभी लड़कियाँ मेरी ओर भाव-विभोर हो देखने लगती है और उस समय स्वय मुझे भी लगने लगता है कि औरो से मैं कुछ अलग ही हूँ।

साँझ पड़े, विशेषकर चाँदनी रातों मे सभी लड़कियाँ खेलने के लिए गाँव के चौक मे इकट्ठी होती है। लड़कों के साथ खेलना उन्हे पसन्द नही, पर मेरी बात निराली है। मुझे तो वे बड़े प्रेम से बुलाती है और मुझे चारों ओर से घेरकर बाँसुरी बजाने का आग्रह करती है। ऐसे मौको पर मै भी उन्हे निराश नहीं करता।

फिर तो वे मुझे अपने खेल में भी सम्मिलित कर लेती है। यही नही बल्कि कभी-कभी तो जो मैं बताता हूँ, वही खेल भी खेलने लगती हैं। लेकिन, मेरे बताए खेल तो लड़कों के खेलने के होते हैं, लड़कियाँ उन्हे ठीक से खेल नहीं पाती। ललिता, विशाखा साहसी लड़कियाँ है, वे लड़कों के खेल खेलने के लिए कमर तो कसती हैं, परन्तु जहाँ कोई मुश्किल आन पड़ी कि वे वही रुक जाती है या गिर पड़ती हैं और रोने लगती हैं। उस समय मै उनके पास दौड़कर जाता हूँ और ज़मीन से उन्हे उठाकर सान्त्वना देने के लिए बड़े प्रेम से मीठी-मीठी बाते करता हूँ।

मुझसे मीठी-मीठी बाते सुनना लड़कियों को बहुत अच्छा लगता है; और इस कला मे तो मैं अद्वितीय हूँ। मेरी बातें सुनकर ये फिर से हँसने-खेलने लग जाती हैं और सब हा-हा, ही-ही करती रहती हैं।

बलराम बड़ा विचित्र जीव है। ज़िद्दी भी खूब है। लड़कियों के साथ खेलना उसे जरा भी पसन्द नहीं। उनके साथ बात करना भी उसे नही भाता। और मैं उनके साथ हँसता-बोलता हूँ, इसलिए वह मेरी मज़ाक उड़ाता रहता है। पर इससे क्या मैं लड़कियों के साथ घूमना-फिरना

छोड़ दूं ? यह छोड़ दूं तो सारा मज़ा ही किरकिरा हो जाए। गोपियाँ जब सर पर गागर धरे चलती है, और मैं गुलेल से पत्थर फेककर उनकी गागर फोड डालता हूँ, तो बलराम इसे दुष्टता कहता है। परन्तु इसमे दुष्टता क्या है ? यह तो मन बहलाने का एक अच्छा तरीका है, और मेरा खयाल है कि गोपियों को भी यह नापसन्द नही है।

माखन की चोरी करने के लिए जब मै कई घरों मे घुसता और गोपियाँ इसकी फरियाद लेकर बार-बार यशोदा मैया के पास जाती, तो मुझे ऐसा लगता कि उनकी यह रोज़-रोज़ की शिकायत अच्छी नही। माखन चोरी करना ही छोड दूं, तो फिर जीवन में आनन्द ही क्या रह जाएगा ? हाँ, इन गोपियों को मेरी शिकायत करने से किसी प्रकार रोकना होगा। इसके लिए मेरा मन बडा उधेड़बुन में रहता है। परन्तु करूँ क्या ? उस दिन नई-नई युक्तियाँ सोचता हुआ, मैं नदी किनारे आ पहुँचा। दोपहर का समय था और आसपास कही कोई पुरुष दिखाई नही पड रहा था। इसीसे कुछ सुन्दर-युवा और कुछ अधेड़ उमर की भी गोपियाँ नदी मे स्नान करने का आनन्द उठा रही थी। मेरी दृष्टि एकाएक नदी-किनारे पीपल के एक पेड के नीचे पडी, जहाँ साड़ियाँ रखी थी। ऐसा लगता था कि सभी स्त्रियाँ नहाने से पहले अपने-अपने वस्त्र उतारकर वहाँ रख गई थी। मेरे लिए तो उनसे बदला लेने का यह स्वर्ण अवसर था। मुझे लगा कि अब उन्हे मज़ा चखाना चाहिए। किसी तरह लुक-छुपकर मैं दबे पाँव पीपल के पेड़ के पास पहुँच गया और सभी साड़ियों को इकट्ठा कर उनकी एक गठरी बनाई और उसे लेकर पेड़ पर काफी ऊँचाई पर चढ़ गया। फिर घने पत्तो की ओट मे छिपकर शान्ति से बैठ गया और तमाशा देखने लगा।

कुछ देर बाद नहा-धोकर जब गोपियाँ पानी से बाहर निकलीं तो उनके अंग-प्रत्यंग से पानी टपक रहा था और नाग-जैसे लम्बे-लम्बे केश उनके सुन्दर शरीरो मे चिपके हुए थे। बड़ी मौज से वे हँसती-इठलाती आ रही थीं, लेकिन पीपल के पेड के नीचे आकर जब उन्होने देखा कि उनके कपड़े कही दिखाई नहीं दे रहे है, तो वे हैरान हो गईं और फिर तो ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने भी लगी। सभी एक-दूसरी का मुँह ताक रही

थी और हाथो से अपने विभिन्न अगो को ढँकने का प्रयास कर रही थीं। परन्तु, इस प्रकार क्या कही शरीर ढँका जाता है ! मुझे तो उनकी परेशानी देखकर बहुत ही मजा आया।

कुछ देर बाद उनकी दृष्टि पेड की ऊँचाई पर पडी, जहाँ मैं बैठा हुआ तमाशा देख रहा था, तो मुझे देखकर वे बहुत नाराज हुई और जोर-जोर से चिल्लाने लगी। पर मैने उनकी ओर आँख उठाकर भी नही देखा और बड़े मजे से अपनी बाँसुरी निकालकर बजाने लगा। फिर तो वे आपे मे बाहर हो गई और गाली-गलौज करने लगी। एक वृजागना ने तो पेड पर चढने का भी प्रयत्न किया, परन्तु वह असफल रही बेचारी ! अब तो सभी गोपियाँ घबड़ा गईं और उनका रहा-सहा गरूर भी जाता रहा। सभी ने हाथ जोडकर कहा, 'कन्हैया, यह क्या कर रहे हो लाला! हमारे कपड़े दो न ! बडा अच्छा है हमारा कान्हा।'

लेकिन उत्तर देने के बजाय, मैंने तो अपना बाँसुरी-वादन ही चालू रखा। जब उन्हे अच्छी तरह छका दिया, तब कहा, 'मैया के पास मेरी फरियाद लेकर जाती हो, न ! जाओ, और करो शिकायत मेरी ! अब से फिर कभी न जाने की कसम खाओ और माफी माँगो, तो मिलेंगे वस्त्र।' उन सबके चेहरे उस समय देखने लायक थे। इस दयनीय स्वर मे सभी ने क्षमा-याचना की कि मेरा क्रोध जाता रहा। उनकी साड़ियाँ मैंने लौटा दी, पर एक साथ नही। एक-एक कर साड़ी ऊपर से नीचे फेकी। साड़ियो को लेने के लिए गोपियों मे हंगामा-सा मच गया। अन्त में जब सबको अपनी-अपनी साड़ी मिल गई, तब कही जाकर वे शान्त हुई। फिर तो मैं पेड़ पर से धीरे-धीरे नीचे उतर आया और वंशी बजाता हुआ घर चला गया।

'यह यशोदा का पूत तो बड़ा उपद्रवी है री !' मैंने एक गोपी को कहते हुए सुना और मुझे हँसी आ गई।

'इतनी ही भगवान् की दया मानो कि वह अभी सात बरस का है केवल !' दूसरी गोपी ने शिकायत के स्वर में कहा।

सात के बदले अगर मैं सत्तर का भी होता, तो क्या फर्क पड़ता, यह मेरी समझ में नहीं आया।

स्त्रियाँ अपना मुँह उन बातों में भी बन्द नही रख सकती जो स्वयं उनके लिए लज्जाजनक हों। यदि मैं उस दिन गोपियो के वस्त्र नहीं लौटाता तो दिन-दहाड़े उन्हें निर्वसन ही लौटना पड़ता, लेकिन मैंने उन्हे इस लज्जाजनक स्थिति से बचाया। उन्हें मेरा उपकार मानना चाहिए था; किन्तु इसके वदले वे तो सभी मैया के पास मेरी शिकायत लेकर पहुँच गई और ऐसा कुछ नमक-मिर्च लगाकर कहा जैसे मैंने कोई बड़ा पाप कर दिया हो। उनके इस अपकार से मेरे मन को आघात पहुँचना स्वाभाविक ही था।

मैया को सचमुच मुझ पर बहुत क्रोध आ गया। उनके बिगड़ने पर मै अक्सर ज़मीन पर पड़कर रोने लगता और पड़े-पड़े ही छिपी नजरो से यह भी देख लेता कि सदा की भाँति मैया इस बार भी मुझे माफ कर अपनी बॉह मे भरने आती है कि नही। लेकिन इस बार उन्होने ऐसा कुछ नही किया।

इस तरह उपकार के बदले अपकार कर गोपियॉ तो चली गई। नौकर-चाकर उस समय सब बाहर गये हुए थे सो मैया घर मे अकेली ही थीं। वह मक्खन बिलोने की तैयारी करने लगी। मैंने सोचा था कि माखन बिलोना शुरू करने के पहले वह आकर मुझे पुचकारेंगी, लेकिन आज तो उन्होंने मेरी ओर मुड़कर भी नही देखा। इस पर मैंने और भी ज़ोर से सिसकियाँ भरनी शुरू की, फिर भी वह पसीजी नहीं।

इस प्रकार मेरे रोने-धोने का मॉ पर कोई असर न होता देखकर मुझे भी गुस्सा आ गया। लेकिन मेरा गुस्सा भड़कीला नहीं। मैंने सोचा, इतने दिनों से तो माँ मुझे बहुत प्यार करती थी; आज क्यों इतनी नाराज़ है। पर, ऐसा क्योंकर हुआ यह मेरी कुछ भी समझ में नही आया।

गोपियो के कपड़े उठाकर मैंने एक तरह का मज़ाक ही किया था। इस बात की खबर सुनकर पिताजी तो हँस ही पड़े थे। उन्हे तो यह बड़े मज़े की बात लगी थी; परन्तु मैया के मन पर इसका कुछ और ही असर पड़ा। उनका मुँह गुस्से से लाल हो गया था। आख़िर वह स्त्री ही रही न!

मेरा क्रोध बलराम के क्रोध जैसा नही था। बलराम को जब क्रोध

आता तो वह आपे से बाहर हो जाता, पैर पछाड़ता, ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगता और आँखे निकालता। परन्तु उसकी ये सब चेष्टाएँ बेकार जातीं। क्रोध आने पर अपने होश-हवास खो देना तो एक प्रकार की मूर्खता ही है। मुझे तो गुस्सा आने पर यही लगता कि मैया को इस बात की खबर लगनी चाहिए कि मैं नाराज़ हूँ और तब वह आकर मनाये। लेकिन कपड़ो की बात मे स्त्रियो की समझ शायद पुरुषों से कुछ भिन्न हो। इसलिए मैया को मुझे मनाने का एक और मौका देने के विचार से रोना बन्द कर मै उनके पास पहुँचा और उनकी साड़ी का पल्ला खीचने लगा। मै समझता था कि ऐसा करने से वह पीछे मुड़कर मेरी ओर देखेगी और मेरी ओर देखकर अपना सारा गुस्सा भूल जाएँगी तथा अपनी बाँहो मे मुझे भर लेंगी। परन्तु इस बार तो उन्होंने पीछे मुड़कर मेरी ओर इस तरह देखा मानो वह मुझे समूचा निगल ही जाएँगी और फिर धक्का मारकर मुझे एक ओर हटा दिया।

'मैया!' दयनीय स्वर मे मैने पुकारा। परन्तु तभी उफनते हुए दूध की गन्ध आई और दूध बर्तन में से उफन न जाए, इसलिए मैया दौडकर दूसरी कोठरी में चली गई। मुझे फिर से गुस्सा आ गया; परन्तु गुस्से मे भी मै शान्त रहता हूँ और अच्छी तरह विचार करता हूँ। मैंने निश्चय किया कि मैया का मिजाज़ ठीक रखने के लिए कुछ करना होगा। मेरी नजर रस्सी से लटकती हुई माखन की मटकी पर पड़ी। मटकी फोडना, यह तो मैं अच्छी तरह जानता था। ऐसी मटकियाँ मैंने हज़ारो फोड़ी होगी, किन्तु सभी बाहर की। घर की मटकी अभी तक नही फोड़ी थी। इस बार यही सही! एक कंकड़ उठाकर मैने इस अन्दाज़ से निशाना ताककर मारा कि कंकड़ लगते ही मटकी मे दरार पड गई और माखन नीचे टपकने लगा। जितना खा सकता था, उतना माखन तो मैंने खा लिया और जो बच रहा उसे थाली मे इकट्ठा किया। फिर पिछवाड़े से बाहर निकलकर बन्दरो को इस माखन-गोष्ठी में भाग लेने के लिए पुकारा। निमन्त्रण पाते ही कई बन्दर एक-एक कर मेरे पास आ पहुँचे और मेरे हाथ मे से माखन ले-लेकर बड़े चाव से खाने लगे। उनके हाथ और मुँह में से कुछ माखन जमीन पर भी गिर गया।

मैया जब वापस आई तो फूटा हुआ मटका और जमीन पर जहाँ-तहाँ गिरे हुए माखन को देखकर समझ गई कि यह काम मेरा ही है। गुस्सा होकर फिर वह मेरी ओर दौडी आई और मेरे कान ऐंठकर तथा एक तमाचा लगाकर बोली, "कान्हा, हरामखोर, तू कब सुधरेगा ?"

मुझे बहुत ही बुरा लगा। यदि वह मुझे पुचकारती तो मै जरूर उनकी बात पर ध्यान देता। परन्तु उन्होने मुझे इसका मौका ही नही दिया। उनको गुस्से मे देखकर मुझे तो बड़ा मजा आता। उस वक्त उनकी भौहें चढ जाती, नाक फूल जाती, ललाट पर बल पड जाते और उनका सुन्दर मुख विकृत हो जाता। यह देखकर अगर मुझे हँसी आ जाती तो इसमें मेरा क्या दोष ?

'देख तो सही, मैं तुझे कैसा मजा चखाती हूँ !' चिल्लाकर उन्होने कहा। मैया का गुस्सा भी बलराम जैसा ही है। गुस्से-ही-गुस्से मे मुझे मारने के लिए वह एक मोटा-सा सोटा भी ले आई। तब वहाँ से भाग जाने के सिवाय मेरे पास और उपाय ही क्या था ? मै भागा, तो मेरे पीछे वह भी दौडीं। परन्तु मेरे पैर मक्खन से चिकने हो जाने की वजह से फिसल पड़े। सो मैया ने मुझे पकड लिया। तब मै ऊखल पर बैठकर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा। जब भी, मुझे मारने के लिए उनका हाथ जरा रुक जाता, तो मैं अपने पूरे जोर-शोर से रोने लगता। मैं सोचता था कि मेरी चीख-पुकार से वह कभी तो पिघलेगी ही। परन्तु मैया ने हाथ की लकड़ी दूर फेंककर पास ही खूँटी पर लटक रही रस्सी ली और बड़े आश्चर्य की बात, कि मुझे उन्होने उस रस्सी से ऊखल के साथ बाँधना शुरू कर दिया। अपने को छुड़ाने के लिए मैं बहुत ही छटपटाया, परन्तु मैया में मुझसे ज़्यादा ताकत थी। थोड़ी ही देर मे मैं हाँफ गया। छुड़ाने की कोशिश में भरपूर ज़ोर लगाने के कारण मेरा चेहरा लाल हो रहा था। मैया के भी बाल बिखर गए थे और उनकी वेणी में गुँथे हुए फूल एक-एक कर ज़मीन पर बिखर गए थे। ऊखल से मुझे अच्छी तरह बाँध-कर पैर पटकती हुई वह दूसरे कमरे मे चली गई।

१७
यमलार्जुन का प्रसंग

मैया को क्रोध आया तो फिर मेरा भी क्रोधित होना स्वाभाविक था। उन्हे किसी तरह मै यह बता देना चाहता था कि हर समय उनका क्रोधित होना ठीक नही। परन्तु करूँ क्या, यही समझ में नहीं आता था। मेरे हाथ-पैर दोनो ऊखल से बँधे थे, जिससे जब भी मैं खड़ा होने का प्रयास करता तब ऊखल भी मेरे साथ खिच आता। बहुत परिश्रम करने पर रस्सी ज़रा ढीली पडी, पर ऊखल तो किसी तरह खिसक ही नही रहा था। फिर भी माँ को बताने के लिए कुछ तो करना ही था। नीचे झुककर जब मैने चलना शुरू किया, तो ऊखल भी मेरे साथ-साथ खिंचने लगा। इससे मै जल्दी तो नही चल सकता था, लेकिन ऊखल को अपने साथ घसीटना बहुत मुश्किल भी नही था।

इस प्रकार धीरे-धीरे और ज़रा भी आवाज़ किये बिना मैं दरवाज़े तक पहुँच गया। मैया तो कभी सोच ही नही सकती थी कि ऊखल को घसीटते हुए मै घर से भाग निकलूँगा। दरवाज़े से आँगन पार कर मैं बाड़े में पहुँच गया और वहाँ से मुख्य द्वार की देहलीज़ को पार कर बाहर निकल गया। सामने ही जगल की ओर जाने वाला रास्ता था। मुझे लगा कि ऊखल को घसीटते-घसीटते यदि जंगल में ले जाऊँ तो बड़ा लुत्फ रहेगा। मैया को दूसरे दिन सवेरे ही चावल कूटने के लिए ऊखल की जरूरत पड़ेगी और उसे लेने के लिए उन्हे जंगल मे जाना पड़ेगा।

परन्तु ऊखल तो अधिकाधिक भारी होता जा रहा था। उसे घसीटने में मुझे बहुत मेहनत पड़ी और मेरी देह से पसीना छूटने लगा। फिर भी मैया का गुस्सा जब तक शान्त न हो और वह मुझे मनाने न आएँ, तब तक घर लौटना निरर्थक था। इसलिए थक जाने पर भी ऊखल को घसीटता-घसीटता मै वन की ओर चला गया। जब अधिक थक जाता तब सुस्ताने के लिए ऊखल पर ही बैठ जाता और हवा मे झूमती डालियों

की ओर देखता अथवा पंछियों के गाने सुनता। अपने सुन्दर पख फैलाकर मोर जब मेरे सामने नाचते तो उनकी नृत्यकला देखकर मेरी सारी थकावट उतर जाती। परन्तु जब मै उनके निकट पहुँचने का प्रयास करता तो वे सब उड़कर भाग जाते। तब उनके गिरे हुए पख उठाकर मैं उन्हे जमा करता। मोरपंख मुझे बहुत अच्छे लगते है और अपने घने, घुंघराले केशों मे एकाध मोरपंख मै सदा ही खसोट लेता हूँ, सभी कहते हैं कि मेरे-जैसे सुन्दर, घुंघराले केश ब्रज मे और किसी के नही, लेकिन जब तक उनमे मोरपख न लगा लूँ तब तक मुझे सन्तोष नही होता।

मुझे प्यास लग आई, इसलिए नदी-किनारे जाने का मैंने निश्चय किया। शायद कोई पानी भरती हुई ब्रजबाला मुझे वहाँ मिल जाए और वह मेरी प्यास बुझा दे। ऊखल को घसीटता हुआ मै नदी की ओर बढा और किसी पनिहारी की प्रतीक्षा मे ऊखल पर ही बैठ गया। लेकिन बहुत देर तक प्रतीक्षा करने के बाद भी जब कोई उधर नही आया तो मैं अधीर हो उठा और घर लौटने को मेरा मन करने लगा। इतने मे मेरी नजर साथ-साथ खड़े दो वृक्षों की ओर गई। उनमें से एक था यमल, और दूसरा था अर्जुन। उनके बीच में बहुत सकरी जगह थी। क्षण-भर विचार करने के बाद एक उपाय मुझे सूझा। क्यो न मै उस सकरी जगह मे से ऊखल को निकालने का प्रयत्न करूँ। ऊखल तो शायद उसमे से नही निकलेगा, मगर रस्सी जरूर टूट जाएगी और तब मै मुक्त हो सकूँगा।

जैसे-तैसे मैं दोनो पेड़ों के बीच की संकरी जगह मे से पहले तो स्वय निकला, और फिर पूरा जोर लगाकर ऊखल को खींचने लगा। दाँत पीसकर मैंने अपनी पूरी ताकत इसमें लगा दी, परन्तु रस्सी नही टूटी। मैं कुछ देर सुस्ताने लगा। जब कुछ थकान मिटी तो फिर सारा जोर लगाकर ऊखल को खीचने में जुट गया, परन्तु रस्सी तो फिर भी नही टूटी; हाँ यमल और अर्जुन दोनों पेड अवश्य धराशायी हो गए।

मुझे बहुन गुस्सा आया। पेड़ तो टूट गए, परन्तु ऊखल फिर भी मेरे पैर से बँधा ही रह गया। और अब वृक्षो के कारण मुझसे खिसका भी नहीं जाता था। आगे बढने के लिए ऊखल के साथ-साथ अब तो मुझे उन भीमकाय वृक्षों को भी घसीटना पड़ेगा। और यह किस प्रकार सम्भव

था ! थककर मैं चूर-चूर हो रहा था, गुस्से से मेरा सारा बदन काँप रहा था। लेकिन प्रतीक्षा करने के सिवा अब तो कोई चारा भी नही था। मुझे तो इस बेबसी पर रोना आ गया। अन्त में हार-थककर वही ज़मीन पर पड़ गया। फिर भी विशाल वृक्षो को गिरा देने के गौरव का अनुभव मुझे अवश्य हुआ। हाँ, खीचातानी में मेरे शरीर पर जहाँ-तहाँ खरोचे भी लग गई थी।

इतने ही मे कुछ आवाज़े सुनाई दी। कुछ स्त्रियाँ नदी पर जाती दिखाई दी। नही, वे स्त्रियाँ नही, लड़कियाँ ही थी। एक छोटी थी, मेरी अवस्था की, और दूसरी ज़रा बड़ी और सुघड़ थी। उनके सिर पर पीतल के बड़े और बगल में छोटे घड़े थे। हँसती हुई वे दोनो चली आ रही थी। उनमें से जो बडी थी उसने अपने सुन्दर केशों मे फूल खोस रखे थे। उसकी बड़ी-बड़ी चमकीली आँखे अत्यन्त मादक और अपूर्व सुन्दर थी। उसकी चाल में नृत्यागना की-सी थिरकन थी और उसके पैरो की पायल की झकार मे तालबद्ध गति थी।

'अरी, देख तो, यहाँ कोई ज़मीन पर बैठा है।'

'कोई छोकरा है।' छोटी ने कहा।

'देखे, कौन है !' बड़ी ने कहा। उसका स्वर किसी पंछी के कलरव के समान सचमुच बहुत मधुर था।

'राधा, यह तो यशोदा का कान्हा है,' ललिता ने कहा। ललिता को मैं अच्छी तरह जानता था; उसके साथ कई बार खेल भी चुका था।

'नन्दबाबा का छोरा, कान्ह ? ओ माँ !' बड़ी लडकी ने कहा। उसका नाम राधा था। उसकी भावभीनी स्वरलहरी ने मेरे हृदय मे आनन्द की धारा बहा दी।

दौड़ती हुई दोनों बालाएँ मेरे पास आईं; उन्होने अपने घड़े जमीन पर रख दिए।

'यहाँ क्या कर रहा है कान्हा ?' ललिता ने पूछा।

'देखती नही, इन वृक्षों को उखाड़ डाला है मैने !' मैंने हँसते-हँसते कहा।

'पर तुझे तो किसी ने ऊखल से बाँध रखा है। किसने बाँधा तुझे ?'

राधा ने प्रश्न किया ।

'और कौन ? मेरी मैया ने !' मैने इस अन्दाज से कहा मानो कुछ हुआ ही नही ।

'अरे ! यह तो बडा जुल्म है उनका !' राधा के हृदय मे दया के भाव उमड पड़े ।

मैंने उसे सूक्ष्म दृष्टि से देखा । उसके छोटे-छोटे कोमल हाथ, सुघड अग और सुन्दर, सलोने मुख की ओर मैं ताकता ही रह गया । मुझसे वह कुछ बड़ी ज़रूर थी, परन्तु ऐसी सुन्दर और नाजुक, नन्ही-सी छोकरी मैंने पहले कभी नही देखी थी । वह कौन थी, यह मैं नही जानता था; फिर भी ऐसा लगता था मानो जन्म से ही मै उससे परिचित होऊँ ।

'नही, नही; मेरी मैया तो बडी नेक है । मुझ पर बहुत प्रेम रखती है । हाँ, कभी-कभी गुस्सा जरूर हो जाती है । सभी स्त्रियाँ इस प्रकार गुस्सा हो जाया करती है ।' मैंने चिढ़ाने की गरज से कहा ।

राधा हँस पड़ी और उस समय उसके गाल में पड़े अद्भुत खड्डे को मैंने देखा ।

'स्त्रियों का तुम्हें क्या अनुभव है ?' उसने प्रश्न किया ।

'क्यो नही !' मैंने उत्तर दिया, 'मेरी मैया भी तो स्त्री ही है । और फिर ललिता को भी मैं जानता हूँ ।'

'मुझे तो तू जानता ही है न, लुच्चा, कान्हा ! उस दिन तूने मुझे ज़मीन पर पटक दिया और जब मुझे रोना आ रहा था तो फिर हँसा भी दिया ।' ललिता ने कहा ।

मुझे ऊखल के साथ बँधा और पास ही दो गिरे हुए वृक्ष देखकर राधा चिन्तित हो उठी ।

'ललिता, रस्सी खोलकर हम कान्ह को छुड़ा दे ।' राधा ने हाथ में रस्सी लेते हुए कहा । गोकुल की स्त्रियों की भाँति वह मुझे कान्हा न कहकर केवल कान्ह कहती थी, और कुछ इस मिठास से इस शब्द का उच्चारण करती थी कि यह छोटा नाम और भी अधिक सुन्दर लगने लगता ।

'नहीं, मुझे छुड़ाने की ज़रूरत नही । यशोदा मैया ने मुझे बाँधा है,

वह स्वयं ही आकर मुझे छुड़ाएँगी,' मैंने कहा। मुझे मुक्त नही होना था; मुझे तो मैया को मना लेना था।

'पर, वह यदि न आई तो!' राधा ने शंका प्रकट की।

'आये बग़ैर रह ही नहीं सकती। वह स्वयं आकर मुझे नहीं छोड़ती, तब तक उनका गुस्सा शान्त नही होगा।'

'तो कान्हा, फिर हम क्या करे?' ललिता ने पूछा।

'जा, मेरे लिए पानी ले आ। तू बहुत अच्छी लड़की है, ललिता!' यह कहकर मैंने उसकी ओर मुस्करा दिया। मैं जानता था कि मेरी मुस्कराहट किसी का भी हृदय वश मे कर सकती थी।

एक छोटा-सा घड़ा उठाकर ललिता नदी की ओर तेजी से गई। राधा आकर मेरी बगल में बैठ गई। उसके शरीर से भीनी-भीनी खुशबू आ रही थी। उसके सुन्दर, गुलाबी, शान्त-शीतल मुख को मैं निहार रहा था और इससे, मुझे पहले कभी न प्राप्त हुई हो, ऐसी अपूर्व शान्ति और सुख का अनुभव हो रहा था।

'तू नन्द बाबा का छोरा है न? सभी तेरी चर्चा करते हैं।'

'हाँ, मै नन्द बाबा का छोरा ही हूँ, और सभी मेरी चर्चा करते हैं, यह भी सही है। उनके पास और कोई काम नहीं तो क्या करे! पर देखना, तू भी कुछ समय में मेरी ही बाते न करने लग जाए!' मैंने विनोद के स्वर में कहा।

'तुझे कैसे मालूम कि थोड़े समय मे मैं भी तेरी ही बातें करने लगूँगी?' मुझे चिढाने की गरज से राधा ने नयन नचाते हुए कहा।

'तू जो इतनी भली, सरस और सुन्दर लगती है!' मैंने कहा। ऐसे शब्द मुझे न कहने चाहिए थे, पर न जाने क्यों मेरे मुख से अनायास ही निकल गए। वह थी ही कुछ ऐसी कि प्रशंसा किये बिना रहा ही नहीं जाता था।

'तू कहाँ से आई? गोकुल में तो मैंने तुझे इससे पहले कभी नही देखा। यदि पहले ही मिल गई होती तो कितना अच्छा होता!' मैंने कहा। इस प्रकार पहले मैंने कभी किसी से बात नही की थी, पर उससे ऐसा कहे बग़ैर मुझसे रहा ही नहीं गया।

मानो फूल खिल उठा हो इस प्रकार वह हँसी और अनार के दानों से उसके सुन्दर, सुगठित दाँत चमक उठे ।

'मै तो बरसाने रहती हूँ । मेरे पिता इस समय वृन्दावन मे है, उनसे मिलने हम लोग जा रहे है । गोपनाथ महादेव की हमने मनौती मानी थी न, उसी के लिए मेरा भाई मुझे यहाँ ले आया है । अरे, तेरे शरीर पर रस्सी के कितने गहरे दाग पड गए है । ला, उन पर पडी धूल मै साफ कर दूँ ।' मधुर मुस्कराकर राधा ने कहा ।

पर यहाँ दागों की किसे परवाह थी ! ऐसी मीठी ग्वालन से बात करने को मिले तो मामूली खरोचो को कौन याद रखता है ? परन्तु धूल साफ करते समय उसके सुकोमल स्पर्श का आनन्द भी तो नही छोडा जा सकता था । उसने रस्सी को ठीक-ठाक कर मेरे शरीर पर से धूल झाड़ना शुरू किया । इससे मुझमें एक नई ताजगी, एक नई तरावट आ गई, और मेरे हृदय मे ऐसे भाव उमड़ पड़े, जिनका अनुभव पहले मैने कभी नही किया था ।

'तुझे तेरी मैया ने ऊखल से क्यों बाँध दिया, कान्ह ?' मेरे केशो में से धूल झाड़ने की गरज से अपनी नन्ही-नन्ही सुकोमल उँगलियाँ फेरते हुए राधा ने कहा ।

'माखन की मटकी फोड़ दी थी मैने और माखन बन्दरों को लुटा दिया, इसलिए !' मैने कहा ।

'ओह, इसीलिए तुझे माखनचोर कहते है ! मैंने सुना है कि गोकुल की प्रत्येक गोपी को तू इसी तरह सताता है ।' उसने कहा ।

'तू यदि गोकुल आकर रहे तो तुझे नही सताऊँगा—मैं वचन देता हूँ ।' मैंने कहा । जिसका स्पर्श रोम-रोम में इतने आनन्द का संचार करता हो, उसको कोई सता सकता है भला ?

'और मैं यदि यहाँ रहूँ तो तुझे सीधी गौ भी बना दूँ !' राधा ने कहा ।

'मैं तो अभी से सीधा हो गया हूँ । और देख, यदि तू गोकुल में आकर रहे तो फिर कभी माखन की मटकी भी नहीं फोडूँगा । हाँ, तेरी मटकी अवश्य फोडूँगा ।' औरो के साथ जैसी बात करता था, वैसी बात

लगी मानो मैने कोई महान् वीरता का काम कर दिखाया हो। इतने में ललिता नदी से पानी भर लाई और मुझे पानी पिलाया। सभी गोपियाँ कहने लगी कि मैया मुझसे बहुत प्यार करती है। और, राधा तो मेरी चर्चा इस तरह करने लगी मानो मुझ पर उसका अधिकार हो।

इस बीच रास्ते पर से गुजर रहे कई लोग भी वहाँ आ पहुँचे और थोडी ही देर बाद मैया भी हाँफती-हाँफती आ गई। उनके पीछे लम्बे-लम्बे डग भरते नन्द बाबा भी आ पहुँचे।

मैया ने आते ही मेरी रस्सी खोल डाली और मुझे छुड़ाकर अपनी बाँहों में भर लिया। उनकी साँस अब भी फूल रही थी। मै भी लिपट गया। मैया के समान मुझे और कोई प्यारा नही लगता था और यह भी मैं जानता था कि वह मुझे बेहद प्यार करती है। मैया से अधिक मै कभी भी किसी को प्यार नही कर सकूँगा।

यमलार्जुन के आसपास फिरकर पिताजी ने उनका निरीक्षण किया। उन्हें इस बात से भारी अचम्भा हुआ कि कैसे एक छोटे-से बालक ने उन्हे तोड़ गिराया। आकाश की ओर वह इस तरह देखने लगे मानो मै कोई देव हूँ। और, राधा हर समय अपनी मधुर वाणी मे मेरी ही बाते करती रही।

मै बहुत थक गया था, फिर भी उस रात मुझे नीद नही आई। मुझे मालूम था कि राधा दूसरे ही दिन सवेरे गोकुल से चली जाएगी। मैं उसीका विचार करता रहा। सवेरे जब मै उठा तो नित्यप्रति जैसे बलराम को जगाता था, वैसे आज नही जगाया, वल्कि चटपट तैयार हो मैं चुपचाप बाहर निकल गया। राधा अपने भाई के साथ जिस गोप के यहाँ ठहरी थी उसका घर मुझे मालूम था। जब मैं वहाँ पहुँचा तब वे दोनो भाई-बहन घर से बाहर निकलकर बैलगाड़ी मे बैठने की तैयारी कर रहे थे।

१८

वसुदेव-देवकी की यात्रा

वसुदेव-देवकी को मथुरा छोड़े पाँच वर्ष बीत चुके थे। इस अवधि मे उन्होने काफी प्रवास किया। प्रभास-स्थित सूर्य-मन्दिर से लेकर पुण्यसलिला गगा के तट पर आये धाम तथा देवाधिदेव शकर की पुरी वाराणसी तक उन्होंने यात्रा की। मार्ग मे जो भी मन्दिर पड़े, उन सबका उन्होने दर्शन किया और पापविनाशिनी नदियो के पुण्य जल में स्नान किया। अन्त मे वे तीर्थो मे श्रेष्ठ बद्रिकाश्रम की यात्रा पर निकले। कल-कल निनाद से रात्रि को मुखरित करती अलकनन्दा के तीर पर उनकी राजा पाडु से भेट हुई। उस समय पाडु वसुदेव की बहन कुन्ती तथा मद्रदेश की राजकुमारी माद्री, इन दोनों पत्नियों के साथ वहाँ निवास कर रहे थे। अप्रतिम सौन्दर्य से शोभित पुष्पों से सजे गन्धमादन की अनोखी छटा का भी उन्होने अवलोकन किया।

अन्त मे वे बद्रिकाश्रम पहुँचे और परम तत्त्व की शोध में निमग्न, एव ज्ञान तथा तप की साधना में लीन पर्वतीय गुहाओं मे ध्यानस्थ ऋषियो का दर्शन कर प्रणिपात किया। मुनिश्रेष्ठ कृष्ण द्वैपायन वेद व्यास के आश्रम पर भी वे गये, पर मुनि उस समय वहाँ नही थे। वह कुरुक्षेत्र गये हुए थे। आध्यात्मिक प्रेरणा का अनुभव करते हुए उन्होने हिमाच्छादित शिखरो के सौन्दर्य का आकण्ठ पान किया और अत्यन्त वेगवती अलकनन्दा के पवित्र जल में स्नान किया। फिर उस परम पवित्र स्थल बद्रिकाश्रम मे जाकर उन्होने पूजा-अर्चना की, जहाँ परम सिद्धि प्राप्त करने के लिए अचल भक्तियोग का उपदेश देने स्वयं विष्णु भगवान् ने नारायण ऋषि का रूप धारण कर निवास किया था।

बद्रिकाश्रम के अपने निवास-काल में ही उन्होने राजा पांडु के अव-सान के दुखद समाचार सुने और तुरन्त ही वे दोनों शोकाकुल कुन्ती को सान्त्वना देने वापस रवाना हुए। कुन्ती की कथा अत्यन्त करुण थी।

वसन्त ऋतु का समय था, पुष्प खिल उठे थे, रंग-विरंगे पक्षीगण सवनन-काल के आनन्द से मत्त होकर कल्लोल कर रहे थे। यह जानकर भी कि मुझ पर शाप है, पाडु राजा इस मादक ऋतु के प्रलोभन से स्वय को न बचा सके। दीर्घ काल से दबे हुए भाव उमड़ आए और वर्जित विलास की इच्छा में माद्री के भुजपाश में ही वह पचतत्त्व को प्राप्त हुए।

पहले तो कुन्ती तथा माद्री दोनो ने ही पति के पीछे सती होने का निश्चय किया। पतिव्रता स्त्रियो के लिए इससे बढकर सौभाग्य की बात और क्या हो सकती थी ? परन्तु माद्री ने कुन्ती को सती होने से रोका। कुन्ती के तीन पुत्र तथा उसके अपने दो, पाँचों बालक नन्हे थे; इसलिए उनकी देखभाल के लिए उन दो मे से किसी एक का जीवित रहना नितान्त आवश्यक था। अन्ततः पति के साथ परलोक के सुखो मे सह-भागी बनना माद्री ने स्वीकार किया, और पाँचो पुत्रो को पालने का काम कुन्ती ने। इस प्रकार तीन पुत्रों की माता कुन्ती पाँच पुत्रों की माता बनी।

वसुदेव तथा देवकी जब पाडुकेश्वर पहुँचे, जहाँ कुन्ती रहती थी, तब उन्हें मालूम हुआ कि ऋषियो ने न केवल कुन्ती तथा उनके पुत्रों के सहित प्रतापी कुरुओ की राजधानी हस्तिनापुर जाने की तैयारी कर ली थी, अपितु भीष्म पितामह को यह सन्देश भी अग्रिम रूप से भेज दिया था, कि हम कुन्ती तथा उसके पुत्रों को लेकर आ रहे है।

वसुदेव ने मथुरा लौटने से पहले मुनि वेदव्यास के दर्शनार्थ कुरुक्षेत्र जाने का निश्चय किया था; इसलिए कुन्ती ने भी हस्तिनापुर जाने से पहले मुनि का आशीर्वाद प्राप्त करने उन्ही के साथ कुरुक्षेत्र जाने का विचार किया।

कुन्ती से मिलकर देवकी का हृदय भर आया। अपनी ननद का कष्ट देखकर उन्हे असीम दुख हुआ और दोनों ने एक-दूसरे की आपबीती सुन-कर खूब आँसू बहाये। कुन्ती ने रोते-रोते कहा, 'देवकी, मै बड़ी अभा-गिन हूँ। पति के साथ परलोकगमन का अधिकार भी देवों ने मुझसे छीन लिया।'

'परन्तु माद्री का कहना सत्य था, बहन !' देवकी ने उत्तर दिया,

'तुम उससे बडी हो और बालकों की सँभाल अधिक अच्छी तरह रख सकती हो ।'

'तुम ठीक ही कहती हो,' कुन्ती ने कहा, 'इसीलिए तो मैंने उसकी बात मान ली । वह तो निरी बच्ची थी । बच्चो की सँभाल रखना मेरा कर्तव्य है । पर, महारानी गान्धारी अपने मन मे न जाने कैसी योजनाएँ रचती होगी। यदि उनका वश चले तो वह मेरे बच्चो को अपने पिता की विरासत से वचित ही कर दे ।'

कुन्ती के प्रति देवकी को असीम स्नेह था । फिर भी उन्हे कुन्ती से ईर्प्या हुए बिना नही रही । कुन्ती की गोद में जब कोई बालक आ बैठता, अथवा पाँचो ही बालक उनके आसपास मँडराते, तो उन्हे लगता कि कुन्ती कितनी भाग्यवान है, और स्वय कितनी भाग्यहीन ! आठ-आठ सन्ताने उनके हुई, परन्तु उनमे से छ. की बड़ी निर्दयता से हत्या कर दी गई और शेष दो कौन जाने कहाँ, किस प्रकार रह रहे थे ! वह स्वय तो उन्हे एक नजर देख भी नही सकती थी ।

देवकी के मन मे विचार उठता, कुन्ती के पुत्र कितने सुन्दर और देखने में भले लगते है ! ऐसे ही सुन्दर क्या मेरे पुत्र भी दीखते होगे ? क्या मुझसे वे ऐसा ही प्रेम करेंगे ?

सबसे ज्येष्ठ पुत्र, आठ-वर्षीय युधिष्ठिर, अपनी अवस्था के प्रमाण में अधिक गम्भीर दीखता था । उससे एक वर्ष छोटा भीमसेन काफी ऊँचा, हृष्ट-पुष्ट और हँसमुख था; खेलने का उसे बड़ा शौक था । देवकी को लगता, 'मेरा बलराम भी ऐसा ही होगा ।' कृष्ण से एक ही वर्ष छोटा, अर्जुन चपल, चालाक और बुद्धिमान था । उसका मुख सुन्दर था और स्वभाव भी स्नेहिल था । 'शायद मेरा कृष्ण भी ऐसा ही हो !' देवकी को लगता । शेष दो बालक, माद्री के पुत्र, देखने में सुन्दर और अपनी नन्ही अवस्था के प्रमाण मे काफी चतुर थे । ये पाँचों जन हिल-मिलकर रहते, आपस में कभी लड़ते-झगड़ते नही, न माता कुन्ती को कभी कोई कष्ट देते ।

धीरे-धीरे पद-यात्रा करते हुए सभी लोग पवित्र-तीर्थ-धाम ऋषि-केश आ पहुँचे । वहाँ से स्त्रियाँ तथा बालक बैलगाड़ियों पर सवार होकर

और पुरुप पैदल ही अथवा घोडो पर रवाना हुए। वसुदेव के लौटने की जो लोग राह देख रहे थे, उन्हे भी साथ लेकर उन्होने आगे प्रयाण किया। कुन्ती को हर समय यही चिन्ता सताती रहती कि हस्तिनापुर मे उनका तथा उनके पुत्रों का कैसा सत्कार होगा ? कुरुक्षेत्र पहुँचने मे जब एक दिन बाकी रह गया, तब दोनों दलो ने विशाल वट-वृक्ष के एक नीचे रात्रि में विश्राम किया। उनके पहले ही अन्य घुड़सवारो के एक दल ने वहाँ एक दूसरे वृक्ष के नीचे पडाव डाल रखा था। वसुदेव को स्वभावत. यह जानने के लिए कौतूहल हुआ कि वे लोग कौन है। पूछ-ताछ करने पर खबर लगी कि गान्धार-देश के राजकुमार शकुनी के साथ घुड़सवारो का वह दल वहाँ आया था। शुकनी पाण्डु के भाई अन्धराजा धृतराष्ट्र की महारानी गान्धारी का भाई था।

'बहन, यह युवक कुरुक्षेत्र इस समय किसलिए आया है ? मुझे तो इसमे कुछ दाल मे काला दिखलाई पड़ता है,' वसुदेव ने कुन्ती से कहा।

'कौन जाने भाई ? हाँ, कौरव श्रेष्ठ[१] (पाण्डु) सदा यही कहा करते थे कि यह लडका बड़ा दुष्ट है।'

'हस्तिनापुर मे शकुनी तेरे मार्ग में कोई विघ्न तो उपस्थित नही करेगा न ?' वसुदेव ने पूछा।

'कर भी सकता है,' कुन्ती ने कहा, 'न जाने क्यो अपने सौ पुत्र होते हुए भी गान्धारी मुझसे जलती है। भाई, मैंने तो अपने पुत्रों को देवाधि-देव महादेव और मुनिश्रेष्ठ को सौप दिया है। वे ही इनकी रक्षा करेगे।'

दूसरे दिन सुबह ही घुड़सवारो का दल कुरुक्षेत्र की ओर रवाना हो गया और दूसरा दल भी धीरे-धीरे बैलगाड़ियो मे तथा पैदल चल पडा। मध्याह्न के करीब उन्हें कुरुक्षेत्र के दर्शन हुए, जो पवित्र सरस्वती के सूखे हुए जल से बने पाँच सरोवरो के तट पर बसा हुआ था। अनेक पर्णकुटियो से बना हुआ यह विशाल शिविर-जैसा दिखाई पड़ता था।

---

१. हिन्दू स्त्रियाँ अपने पति का उल्लेख सदा किसी आदर-वाचक शब्द से ही करती थीं। पर विश्व-युद्ध के पश्चात् हालिवुड की पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित हो, बडे शहरों मे कई स्त्रियाँ अपने पति को नाम लेकर पुकारती है, अथवा तू कहकर ही सम्बोधन करती हैं।

वहाँ सैंकडो यज्ञ-वेदियों से निकले हुए आकाश की ओर उन्मुख पवित्र धुएँ को देखकर कुन्ती आश्चर्यविमुग्ध हो गई। कई ऋषि तथा उनके शिष्य सरोवर में मध्याह्न सूर्य को अर्घ्य दे रहे थे। अन्य सरोवरो मे वल्कल धारण की हुई स्त्रियाँ अपने बच्चों को नहला रही थी। कोई-कोई स्त्री अपने घड़े मे पानी भर रही थी, स्वयं वेदव्यास द्वारा सिखाये गए सस्वर वेद-मन्त्रो के पाठ की सगीतमय ध्वनि चारो ओर गूँज रही थी।

एक तरुण शिष्य द्वारा मार्ग प्रदर्शित किये जाने पर वसुदेव, देवकी, ऋषि-गण, कुन्ती तथा उनके पुत्र पर्ण-कुटियो के मध्य मे स्थित मुनि के आश्रम मे पहुँचे। वहाँ विद्वान ब्राह्मण, सत्य की गहन चर्चा कर रहे थे। उन सवके बीच में, वृक्ष के नीचे चबूतरे पर बैंठे हुए मुनि वेदव्यास को कुन्ती, वसुदेव तथा देवकी ने तुरन्त पहचान लिया। श्यामवर्ण, विशाल मस्तक, लम्वे केश, तेजस्वी मुखमुद्रा और गम्भीर नेत्रो से वे सबसे विलग ही दीख पड़ते थे।

कुन्ती, वसुदेव तथा देवकी को देखकर मुनि ने तुरन्त ही चर्चा बन्द कर दी और आगन्तुकों का मधुर मुस्कान के साथ स्वागत किया। वहाँ बैंठे हुए ब्राह्मणों को उन्होने हाथ से इशारा कर उनके लिए मार्ग देने का आदेश दिया। कुन्ती और उनके पुत्रों तथा वसुदेव और देवकी को उनके साथ आये हुए ऋषि मुनि के समक्ष ले गये। मुनि के पास जाकर सभी ने साष्टांग-प्रणाम किया और उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया। अपने पाँच पौत्रों, अर्थात् पाँचों पाण्डु-पुत्रों को देखकर मुनि के नेत्र वात्सल्य-भाव से भर गए। उनकी आज्ञा पाकर पाँचों भाई आदरपूर्वक नतमस्तक हो उनके पास चले आए। उनमें से सबसे छोटे सहदेव को उठाकर मुनि ने अपनी गोद में बिठाया और सुपुष्ट शरीर के भीम की पीठ थपथपाई। वसुदेव तथा स्त्रियाँ उनकी दाहिनी ओर तथा ऋषि उनके सामने बैठे।

'वत्सो, अव हम कल फिर मिलेंगे।' मुनि ने अपने शिष्यों से कहा, 'आप लोग जाकर अतिथियो के निवास का उचित प्रबन्ध करें।'

शिष्यो के चले जाने पर मुनि ने स्नेहिल स्वर में कुन्ती से कहा, 'पृथा, बेटी, तुम्हारे दूत से मुझे तुम्हारे दुर्भाग्य की खबर मिली। माद्री तो नारी-रत्न थी। मुझे पूरी आशा है कि तू माद्री और अपने पुत्रों के

बीच कोई भेद-भाव नही रखेगी ।'

'प्रभु, माद्री कैसी थी, यह तो आप जानते ही है। अन्त समय तक वह एक अबोध बालिका जैसी ही रही। वह जीवित थी, तब भी नकुल और सहदेव को मैने ही अपने पुत्रवत् पाला था।'

'तू भाग्यशालिनी है बेटी,' मुनि ने स्नेहपूर्वक मुस्कराकर कहा, 'बचपन से ही तुझे बालक प्रिय है। उनका स्नेह प्राप्त करने की कला मे भी तू प्रवीण है। सहस्र माताओ मे तेरा स्थान विरल है।'

द्वितीय पाण्डु-पुत्र विशालकाय भीम स्वय पर नियन्त्रण न रख सका। भारी आवाज मे वह बोल उठा, 'मै जानता हूँ कि हम लोगों से भी अधिक यह नकुल और सहदेव को प्यार करती है।' यह सुनकर सभी हँस पड़े। भीम भी सबके साथ हँसने लगा। प्रेमपूर्वक उसकी ओर देखकर मुनि ने कहा, 'और तू क्या उन्हे प्रेम नही करता ? वे तेरे छोटे भाई हैं, नन्हे-नन्हे ! और तू कितना बलवान है ! उनकी देख-भाल तुझे रखनी चाहिए।' भीम ने गर्वपूर्वक उत्तर दिया, 'मैं उनकी बराबर देखभाल रखता हूँ। परन्तु जब हम साथ खेलते है, तब मैं ही उन्हे सबसे पहले जमीन पर पटकता हूँ।'

तरुण युधिष्ठिर बडों की तरह गम्भीर भाव से बोल उठा, 'गुरुदेव ! भीम को तो जो चाहे सो बकने की आदत है। हम सबको एक-दूसरे पर बहुत स्नेह है।' अर्जुन ने अपने तेजस्वी नेत्रो से युधिष्ठिर के कथन को सम्मति प्रदान की, और कुन्ती का हृदय ऐसे अद्भुत पुत्र प्राप्त करने के लिए कृतज्ञता से भर गया।

'तब तो बहुत ही अच्छा है,' मुनि ने कहा। फिर वसुदेव तथा देवकी की ओर देखकर वह बोले, 'तुम्हारी चर्चा हम अकेले मे करेगे। वसुदेव, तुम्हें मालूम है, हस्तिनापुर मे आजकल क्या हो रहा है ?'

'नहीं गुरुदेव,' वसुदेव ने उत्तर दिया।

'गान्धार का कुमार शकुनी आज सवेरे मेरे पास आया था। तुम्हारे यहाँ पहुँचने से कुछ ही देर पहले वह यहाँ से गया है।'

'ठीक है, गत रात्रि जहाँ हमने पड़ाव डाला था, वहीं बगल मे उसने भी रात्रि बिताई थी।'

'महारानी गान्धारी का सन्देश लेकर वह मेरे पास आया था। सम्भव है कि वह सन्देश स्वय शकुनी द्वारा ही प्रेरित हो। गान्धारी ने कहलाया था कि कुन्ती के पुत्रो को हस्तिनापुर न भेजकर अपने ही पास रख ले। पाण्डु के पुत्र राजपुत्रो की तरह राजधानी मे रहे और अपने पुत्रो की तरह पद प्राप्त करे, यह गान्धारी को ज़रा भी पसन्द नही। शकुनी ने तो यह भी कहा था कि कुन्ती यदि अपने पुत्रों सहित हस्तिनापुर मे आकर रहेगी, तो भविष्य मे भाई-भाइयो में विग्रह होने की सम्भावना है।'

अपने भय को सच होते देखकर कुन्ती की आँखो मे आँसू छलक आए। 'गुरुदेव, मेरे पुत्रो का क्या होगा ?'

'जो होगा अच्छा ही होगा,' मुनि ने कहा, 'मैने माता तथा पूज्य भीष्म को सन्देश भेजा है कि मै स्वयं पाण्डु के पुत्रों को लेकर आ रहा हूँ और उनका योग्य, विधिपूर्वक सत्कार होना चाहिए।'

'शकुनी क्या करेगा, प्रभु ?' वसुदेव ने पूछा। मुनि ने मुस्कराकर उत्तर दिया, 'अपने भाजों की देखभाल के लिए वह हस्तिनापुर में ही रहेगा, परन्तु पूज्य भीष्म तो मानो धर्म के अवतार है। उनके लिए सभी बालक बराबर रहेगे। वसुदेव, तुम भी हमारे साथ हस्तिनापुर चलो न !' जब सभी चले गये, और वसुदेव तथा देवकी अकेले रह गए, तब मुनि ने उनसे कहा, 'अक्रूर आश्रम मे आया है और तुम्हारी राह देख रहा है।' फिर उन्होने अक्रूर को वही बुला लिया, अक्रूर ने आकर मुनि को साष्टाग-प्रणाम किया, उनकी चरण-रज ली और फिर वसुदेव से गले मिले।

इसके बाद, कस कैसी-कैसी नीच योजनाएँ रच रहा था, सभी आपदाओ में से कृष्ण किस प्रकार बच गया और उसका विकास किस प्रकार हो रहा था, इन सबका वर्णन उन्होने किया। कृष्ण के अद्भुत पराक्रमों और उसके आबाल-वृद्ध सभी का प्रिय भाजन होने की चर्चा भी उन्होने की।

'परन्तु मेरे यहाँ आने से पहले एक भयकर घटना घटी थी, प्रभु !' अक्रूर ने मुनि की ओर देखकर कहा।

'कौन-सी घटना ?'

'गोकुल में प्रत्येक रात्रि को महावन से हज़ारों की संख्या में भेडिये घुस आते थे और छोटे बच्चों का भक्षण कर लेते थे। इस भयंकर विपत्ति

को देखकर नन्द और यशोदा तथा गोकुल के सभी गोप-गोपियाँ गोकुल छोड़कर वृन्दावन जा बसे है ।'

'कृष्ण तो सकुशल है न ?' रुँधे हुए स्वर से देवकी ने पूछा । अत्यन्त प्रेमपूर्वक मुस्कराकर मुनि ने देवकी से कहा, 'देवकी, चिन्ता न कर । तू माता है, माता का तेरा हृदय तुझे सच्ची वस्तुस्थिति नही देखने देता । तू समझती है कि तेरे पुत्र कृष्ण को किसी की रक्षा की आवश्यकता है; परन्तु सच तो यह है कि जगत् को उसके सरक्षण की आवश्यकता है ।'

'परन्तु उसकी शिक्षा का क्या होगा ?' वीच मे ही वसुदेव वोल उठे । 'वडा होकर क्या वह निरक्षर रहेगा ?'

'सन्दीपन से मैंने बात की है', मुनि ने कहा,'युद्ध-कला मे वह जितना प्रवीण है, उतना ही पारगत वेद-विद्या मे भी है । वह वृन्दावन जाकर आश्रम स्थापित करे और वहाँ कृष्ण को रखा जाए, इसका प्रबन्ध करने के लिए मैंने अक्रूर से कह दिया है । और अक्रूर, कृष्ण की सभी बातें सुनने को देवकी बहुत अधीर हो रही है । मै अब मध्याह्न-सन्ध्या के लिए जा रहा हूँ । बाद में तुम लोग भोजन के लिए चले जाना ।' सभी उठ खड़े हुए और उन्होंने मुनि को प्रणाम किया ।

अत्यन्त आदर एव पूज्य भाव से सभी लोग मुनि के कृश, किन्तु सुदृढ शरीर की ओर देख रहे थे । जो भी उनके सम्पर्क मे आता, उसे यही लगता कि मुनि मेरे अपने है और उनके वचनो का श्रवण करने के अतिरिक्त जीवन मे अन्य कोई उन्नत कार्य नही हो सकता ।

फिर देवकी ने अधीरता से अक्रूर की ओर देखकर कहा, 'ज्येष्ठ,अब मेरे लाड़ले की बात कहो !' यह कहकर वह अक्रूर के सामने आकर बैठ गई । वसुदेव उनकी बगल में बैठे ।

'देवकी, कृष्ण के विषय में तेरी सभी आशाएँ सफल हुई हैं । वह निरोगी, चंचल और बुद्धिमान है, और कुछ-न-कुछ पराक्रम करता ही रहता है । सारा गोकुल उसके पीछे दीवाना है ।' इसके बाद अक्रूर ने देवकी को कृष्ण के बारे में सभी बाते बताई और कहा, 'मैंने जिस भयं-कर घटना की चर्चा अभी की थी, वह मात्र एक महीने पूर्व ही घटी थी । न जाने कैसे महावन के हज़ारों भेड़िए गोकुल में घुस आए और कितने

ही बालकों, बछड़ों, कुत्तों और एक-दो आदमियों को भी उठा ले गए।'

'दैया री !' देवकी बोल उठी।

'प्रति रात्रि ऐसा ही होता था। यादव सभी घबड़ा उठे। रात्रि के समय सभी रोज पहरा देते। सभी की नींद उड़ गई थी। भेड़ियों की आवाज से सभी चौंक उठते।'

'फिर क्या हुआ ?' वसुदेव ने पूछा।

'नन्द ने मुझे सन्देश भेजकर बुलाया और हमने निश्चय किया कि सभी यादव गोकुल खाली कर वृन्दावन जाकर रहें।'

'फिर सब वृन्दावन चले गए ? कृष्ण का क्या हुआ ?'

'ओह ! कृष्ण तो बड़ा अद्भुत बालक है। हाथ में लकड़ी लेकर वह सभी बालकों का नेतृत्व करता। बलराम सहित वह सभी प्रवासियों के आगे-आगे चला।' अक्रूर ने कहा।

'उनकी यात्रा तो निर्विघ्न समाप्त हुई न ?' वसुदेव ने पूछा।

'हाँ,' अक्रूर ने कहा, 'बीच में मथुरा आने पर सभी लोग विश्राम के लिए रुके। गाँव की सरहद पर जाकर मैंने सभी का सत्कार किया। कृष्ण को देखकर तो मेरी आँखों से आनन्दाश्रु बहने लगे।'

'कृष्ण आपसे मिला ?'

'वह सभी का नेता था। यद्यपि वह बलराम को ही सदा अपने से आगे रखता, फिर भी सभी बालकों का मुखिया वही था। गाड़ी में बैठने से तो उसने इन्कार ही कर दिया और जब वह गाड़ी में नहीं बैठा, तो उसकी उम्र के सभी बालक और बड़े भी गाड़ी में नहीं बैठे।'

'वह कैसा दीखता था ?'

'हाथ में नन्ही-सी लकुटी, मोर-पंख का सुन्दर मुकुट और नाक से लटकते बाले के साथ वह कितना सुन्दर और भव्य लगता था ! नन्द तो आनन्द और गर्व से फूले नहीं समा रहे थे।'

'और बलराम ?' वसुदेव ने पूछा।

'वह काफी ऊँचा, हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर दिखाई दे रहा था। दोनों भाइयों का एक-दूसरे पर असीम स्नेह है। कृष्ण अधिक चतुर है। परन्तु वसुदेव, तुम्हारे विवेक और विनय की विरासत भी उसे मिली है। वह

अकेला ही सबका लाड़ला बना है, ऐसा वह बलराम अथवा अन्य को अनुभव नही होने देता। प्रत्येक को लगता है कि कृष्ण जितना उसको प्यारा है, उतना ही वह कृष्ण को भी प्यारा है।"

'हे देवाधिदेव, मैं अपने लाडले को फिर कब देख सकूँगी !' देवकी ने कहा।

'फिर यादवो का क्या हुआ ?'

'वे वृन्दावन मे जाकर सुख से बस गए है, जंगलों को काटकर सभी ने नई जमीन तैयार की है। वृष्णि उनकी मदद कर रहे है।'

'और कंस युद्ध से कब लौटने वाला है ?' वसुदेव ने पूछा।

'उसके श्वशुर जरासघ ने अश्वमेध यज्ञ आरम्भ किया है और कंस अश्व को लेकर कलिग पहुँचा है।'

'देवाधिदेव की कृपा है। अब हम सुख से मथुरा जा सकेगे।' वसुदेव ने कहा।

और, पाण्डु के पाँचो पुत्र हस्तिनापुर आ पहुँचे। राजकुमारों के उपयुक्त ही उनका स्वागत किया गया और कुरु साम्राज्य के संरक्षक महानुभाव भीष्म का उन्हें आशीर्वाद प्राप्त हुआ। राजा धृतराष्ट्र को अपने भाई पाण्डु के प्रति अत्यन्त प्रेम था। पाण्डु के पुत्रों को गले लगाकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनकी आँखों में प्रेमाश्रु छलक आए। वृद्ध सत्यवती, पाण्डु की दादी ने उनका प्रेमपूर्वक मस्तक सूँघा। यह जानकर कि देवों की कृपा से उनके प्रति महाराज शान्तनु के वंश का अब उच्छेद नही होगा, उनके मन को बड़ी शान्ति मिली।

१९

राधा

[राधा हमारी लोक-कल्पना द्वारा सृजित रसवन्ती गोपी है। उसका उद्भव कहाँ और किस प्रकार हुआ, यह ठीक से नही कहा जा सकता। 'महाभारत', 'हरिवंश' और सम्भवत: ८वीं सदी मे रचित 'भागवत' मे उसका उल्लेख कही नही मिलता। दूसरी ओर, 'सिलप्पदीकरम्' नामक प्राचीन तमिल ग्रन्थ मे नप्पिनाई नाम की कृष्ण-पत्नी के रूप में उसका उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार, लगभग दूसरी सदी मे रचित 'राधा-सप्तशती' नामक ग्रन्थ में उसका उल्लेख है।

जो भी हो, ऐसा प्रतीत होता है कि दूसरी सदी के प्रारम्भ मे प्राकृत भाषा के लेखक राधा के नाम से परिचित थे। ८वीं सदी के बाद कई प्राकृत कवियों ने, अधिकांशत: श्रृंगार रस के काव्यों मे, राधा का उल्लेख किया है। उस समय कृष्ण के साथ गोपियो की उपासना की जाती थी। परन्तु इन गोपियों में राधा का समावेश हुआ दीख नही पड़ता।

संस्कृत साहित्य में राधा का प्रथम उल्लेख मालव के परमार-वंशी महाराज वाक्पति मुञ्ज (ई० स० ९७४-९९४) के तीन शिलालेखों मे आए एक आशीर्वादात्मक श्लोक में मिलता है। परन्तु राजा लक्ष्मणसेन (ई० स० ११७९-१२०३) के राजकवि जयदेव ने जब अपने 'गीत गोविन्द' की नायिका उन्हे बनाया, तभी रासलीला की अधिष्ठात्री देवी, रसेश्वरी के रूप में समस्त भारतवर्ष मे उनकी कीर्ति फैली।

एक-दो शताब्दियों में तो इस मधुर, सुगेय, शृंगार-काव्य ने समस्त भारतवर्ष के लोगों का चित्त हर लिया। मात्र एक ही कृति से इतनी अधिक प्रतिष्ठा और लोकप्रियता अन्य किसी कवि को नही मिली और बहुत कम कवियो की लोकप्रियता उनसे अधिक टिक भी सकेगी। थोड़े ही समय में लोगों ने 'गीतगोविन्द' को भगवद्भक्ति का प्रामाणिक ग्रन्थ मान लिया और बंगाल मे उस समय के बहिष्कृत बौद्ध सहजीवों ने भी

इसे आधारभूत ग्रन्थ माना। उसके बाद बंगाल और मिथिला मे विद्यापति ने अपने गीतों द्वारा सामान्य लोक-समूह में भी राधा-महिमा में अत्यन्त वृद्धि की। बाद के पुराणो में राधा के दिव्य जन्म तथा कृष्ण के साथ उनके सम्बन्ध की भिन्न-भिन्न कथाएँ देखने मे आती हैं, परन्तु वे सब एक जैसी नही। हाँ, उन सबका ध्येय एक-सा अवश्य है। श्रीकृष्ण की प्रिय बालसखी के रूप मे उनको अन्य देवताओं के साथ प्रतिष्ठित किया गया।

चैतन्य ने उन्हे देवी रूप मे माना और इसी प्रकार राधापन्थियों, विष्णुस्वामियो और निम्बार्क के अनुयायियो ने भी उन्हे देवी पद पर स्थापित किया। प्रचलित मान्यता के अनुसार वह श्रीकृष्ण की दिव्य पत्नी हैं और इस मान्यता को निम्बार्क ने भी स्वीकार किया है। परकीया प्रेम को अत्यन्त महत्त्व देती पूर्व भारत की धार्मिक प्रणाली के अनुसार श्रीकृष्ण ने राधा को अपनी प्रियतमा के रूप मे स्वीकार अवश्य किया, परन्तु वह पत्नी तो किसी अन्य की ही है। कई स्थानो पर उनके पति का नाम अय्यन दिया गया है।

जो भी हो, राधा के बिना कृष्ण-कथा का विचार करना ही मुश्किल जान पड़ता है, और सामान्य लोक-प्रणालिका के अनुसार जो मान्यता प्रचलित है, वही मुझे योग्य भी लगती है।

—क० मा० मुन्शी]

गोकुल से वृन्दावन की ओर धीरे-धीरे बढ़ती हुई बैलगाड़ी मे बैठी बारह वर्ष की राधा, बैलों के गले मे बँधी घण्टियों की सुरीली ध्वनि के साथ एक मधुर कल्पना-लोक मे विहार करने लगी। आह, जीवन कितना आनन्द और उल्लासमय है! और फिर, कान्ह जैसे अद्भुत बालक से परिचय हो जाए, फिर तो पूछना ही क्या!

कान्ह सचमुच बड़ा अद्भुत बालक था। राधा की आँखो में बसा उसका सुन्दर, सलोना मुख रस का अपार सागर था, और उसके नयन तो मानो आनन्द के सरोवर ही थे। उसकी मीठी आवाज़ कितनी मन-मोहक थी! और किस धृष्टता से उसने राधा को अपनी ओर आकर्षित किया था, मानो किसी ने उस पर जादू डाल दिया हो! वह क्या कभी

कोई भुला [illegible]नेवाली बात थी ?

राधा वृन्दावन पहली ही बार अपने पिता वृषभानु के पास जा रही थी। उसके भाई दामोदर ने वृन्दावन को स्वर्ग के समान बताया था। वहाँ पहले-पहल बसनेवालो में उसके पिता और भाई थे।

छः वर्ष की अवस्था मे राधा ने अपनी माता को खो दिया था। इसके बाद उसके पिता उसे उसके ननिहाल में छोडकर अपनी अन्य पत्नियो सहित बरसाने से चले गए थे। हँसती, खेलती, नाचती, अपनी ही उम्र के लडके-लड़कियों के साथ हँसी-ठट्ठा करती हुई वह बड़ी हुई और अपने ननिहालवालो की ही नही, सारे गाँव की लाडली बन गई।

राधा की सगाई उसके पिता ने अपने एक वृन्दावनवासी मित्र के पुत्र अय्यन के साथ कर दी थी। वह राधा से उम्र मे बड़ा था। खेतों, गायों तथा वनों से उसे इतनी घृणा थी कि वह वृन्दावन छोड़कर मथुरा चला गया और वहाँ जाकर कंस की सेवा उसने स्वीकार कर ली।

राधा की मातामही जब परलोक सिधारी, तो पिता वृषभानु ने राधा को अपने पास बुला लिया। वह जानती थी कि मेरी सगाई हो चुकी है; परन्तु अय्यन उसके लिए मात्र एक नाम से अधिक कुछ नहीं था। शादी की बात सुनकर उसकी उम्र की अन्य बालिकाओं के हृदय जैसे उमग से भर जाते थे वैसा राधा को कभी अनुभव नही हुआ। खिलते पुष्प, चहकते पछी, रँभाती गायें, नृत्य करते मयूर—ये ही सब उसे प्रिय लगते। हँसती, खेलती, गाती, सबकी लाडली वह सदा अपने ही में मगन रहती।

बरसाने के छोरे-छोरियों के साथ जब वह खेलती, तो अपनी अदम्य चंचलता और उल्लास से सब पर शासन करती। इसलिए गाँव छोड़ते समय उसे केवल क्षण-भर के लिए अपने साथियो से विदा होने का दुःख अवश्य हुआ; परन्तु फिर नये लोगों, नये दृश्यों, नये गाँवो को देखकर वह शीघ्र ही सब-कुछ भूल गई।

फिर भी गोकुल की बात न्यारी थी। उसका जन्म गोकुल में ही हुआ था और उसकी माँ ने उसके लिए गोकुल में ही गोकुल के ग्रामदेवता गोपीनाथ महादेव की मनौती भी मानी थी। जब वह बारह वर्ष की हुई, तब वृन्दावन जाते समय उस मनौती को पूरा करने वह गोकुल ठहरी।

अपने भाई के साथ वहाँ वह एक दूर के सम्बन्धी के यहाँ टिकी थी। थोड़े ही दिनो मे वहाँ के आनन्दप्रिय, मौजी लोग, सुन्दर लुभावनी गाये, निडर और मत्त मयूर उसके मन भा गए। परन्तु इन सबमे अधिक मनमोहक उसे लगा कान्ह। ऊखल से बँधे रहने पर भी उसने जिस मधुर मुस्कान और मोहक चितवन से उसकी ओर देखा, वह उसके हृदय मे बस गई थी। मस्ती से नयन नचाते हुए उसने उसके केशों के साथ जो खेल किया, वह अब भी उसे याद था। जब भी वह अपनी आँखे मूँदती, तभी उसे लगता मानो कृष्ण के सुकोमल हाथ का सुखद स्पर्श उसे हो रहा है।

वन से घर लौटते समय कान्ह ने वंशी बजाई थी। वंशी तो गाँव के सभी लोग बजाते थे—वृद्ध, युवा, बालक सभी—परन्तु कृष्ण की वंशी कुछ और ही थी। कुछ ऐसे मन्त्र-मुग्ध स्वर उसमे से निकलते थे कि जो भी सुनता वह ठगा-सा रह जाता। वैसी बाँसुरी उसनें अन्यत्र कही नही सुनी थी। अब भी वे स्वर उसके कानो में गूँज रहे थे।

कुछ दिनों मे राधा वृन्दावन जा पहुँची। निर्जन वन को साफ कर वृषभानु और प्राय. पचास अन्य लोगो ने मिलकर वह गाँव बसा लिया था और स्थान-स्थान पर उनके सुन्दर, स्वच्छ झोपड़े दिखाई देने लगे थे। प्रत्येक द्वार पर घने वृक्ष और रग-बिरंगे पुष्पो से लदी लताएँ शोभित थी। पास ही यमुना प्रचण्ड वेग से बहती थी। चारों ओर हरे-भरे गोचर थे, जहाँ ढोर निडर होकर चरते थे। आकाश और अवनि पर सर्वत्र सौन्दर्य का साम्राज्य था। प्रत्येक प्रभात वहाँ के उद्योगपरायण ग्राम-वासियों के हृदय मे उल्लास और आनन्द की प्रेरणा भर देता था।

वहाँ पहुँचने पर राधा को उसकी विमाता ने बताया कि अय्यन कंस की सेनाओं के साथ युद्ध मे गया हुआ है, इसलिए उसका विवाह फिल-हाल स्थगित कर दिया गया है। पर राधा को तो इस बात में कोई रस था नही। उसकी दुनिया में अय्यन के लिए कोई स्थान नही था। रात-दिन उसे तो गोकुल में सुने वही मधुर शब्द सुनाई पड़ते थे, 'मैं वृन्दावन आऊँगा'। उनमे उसे गम्भीर रूप से दिये गए वचन की ध्वनि सुनाई पड़ती थी। इन वचनों का कब पालन होगा, इसी की राह वह देख रही थी। उसे पूर्ण विश्वास था कि ये वचन मिथ्या सिद्ध नहीं होंगे।

एक वर्ष बीत गया। वसन्त आया; पेड़ और पुष्पो की समृद्धि से वृन्दावन खिल उठा। स्थान-स्थान पर कदम्बकुसुम अपनी छटा दिखा रहे थे। डाली-डाली पर पछियो के मधुर स्वर गूँज उठे, घर-घर तुलसी की सुगन्ध महक उठी। स्वभाव से आनन्दप्रिय और सदा मगन रहने वाली राधा भी बेचैन हो उठी।

इसके बाद गोकुल के यादव-सरदार नन्द बाबा का सन्देश लेकर एक दूत वहाँ आया। गोकुल गाँव मे भेड़ियो ने उत्पात मचा रखा था। रोज़ रात को वे आकर पशुओं, बालको, बछड़ों तथा कुत्तो को उठा ले जाते। इसलिए नन्दबाबा ने सभी गोकुलवासियों सहित वृन्दावन में आकर निवास करने का निश्चय किया था। कुछ ही दिनों मे वे सब गोकुल छोड़कर वृन्दावन के लिए प्रस्थान करने वाले थे। जब यह खबर राधा ने सुनी तो उसका हृदय आनन्द-उल्लास से भर उठा। अब फिर वही बंसरीवाला नयन नचाता और अपनी मोहक हँसी बिखेरता उसके सामने होगा। आखिर कान्ह ने अपने वचन का पालन किया ही !

वृन्दावनवासी गोकुल से आनेवालों के लिए ज़मीन साफ करने लगे। स्त्रियाँ भी उनके स्वागत की तैयारियों मे जुट गई। राधा तो हर समय अपने साथियों से गोकुल की ही बाते करती, विशेषकर पूतना और तृणावर्त जैसे दानवों के संहारक और अपने अपूर्व बल से यमलार्जुन जैसे विशाल वृक्षों को जड़-सहित उखाड़ देनेवाले कान्ह की चर्चा में तो वह खो-सी गई।

फिर एक दिन वृषभानु सभी वृन्दावनवासियो को लेकर नन्दबाबा तथा अन्य गोकुलवासियों के स्वागत के लिए गाँव की सीमा पर अगवानी करने पहुँचे। अन्य बालकों के साथ राधा भी आनन्द से नाचती-कूदती वहाँ जा पहुँची।

आखिर गोकुलवासियो का दल आ पहुँचा। सबके आगे थे नन्हे-नन्हे बालक—हँसते, कूदते, शोर मचाते। उनका सरदार था कन्हैया। उसके हाथ में एक छोटी-सी लकुटी थी, कमर में बाँसुरी और सिर पर सुनहरी पगड़ी में मोर-पंख शोभित था। बच्चों के पीछे एक लम्बा जुलूस-सा चला आ रहा था, जिसमे थीं गोकुल की सुविख्यात गायें और बैल, सर पर पीतल के चमचमाते कलश लिये मंगल-गीत गाती स्त्रियाँ। वृद्ध स्त्री-

पुरुष तथा शिशुओं को लिये सुन्दर सुशोभित गाडियों की एक कतार चली आ रही थी। सबके आगे वृद्ध नन्दराज हाथ मे लम्बी लकड़ी लिये चल रहे थे। परन्तु राधा के नैन तो छोटी-सी लकुटी हाथ मे लिये, सबके आगे चल रहे घनश्याम को ही खोज रहे थे। विनय, विवेक की मर्यादा को भूलकर वह 'कान्ह-कान्ह' पुकारती हुई उसके पास दौड़ी आई और अपने छोटे-से, पर सुगठित शरीर का सारा बल लगाकर उसने कन्हैया को बाँहों मे उठा लिया। कन्हैया भी खुशी मे झूम उठा। उसने राधा की पीठ इतने जोर से थपथपाई कि राधा का मुँह लाल हो गया। और, तभी उसने कन्हैया को अपने भुजपाश से मुक्त किया। सभी बालक एक-दूसरे का हाथ पकड़कर इन दोनों के आसपास गोल-गोल चक्कर लगाने लगे।

वयस्क लोग एक-दूसरे से मिले। वृन्दावन की स्त्रियाँ गोकुल की स्त्रियो के साथ हँस-हँसकर बाते करने लगी। गाडियाँ अर्धवर्तुलाकार मे खडी कर दी गई। ढोरो को नहलाने-धुलाने के लिए नदी पर ले जाया गया। सैंकड़ो घरों में चूल्हे जल उठे और गृहिणियाँ भोजन तैयार करने में व्यस्त हो गई। साँझ पड़ जाने पर, जगल की ओर से वन्य पशुओं को आने से रोकने के लिए जगह-जगह आग जलाई गई और स्थान-स्थान पर चौकीदार बिठा दिये गए। ढोरों को अर्धवर्तुलाकार खड़ी गाड़ियो के पीछे लाकर खड़ा कर दिया गया और प्रत्येक परिवार ने अपने-अपने ढोरों को अपनी-अपनी गाड़ी से बाँध दिया।

उस रात यशोदा तथा रोहिणी वृषभानु के घर सोई। उन्होंने कृष्ण तथा बलराम को अपने ही पास सुलाया। बगल की कोठरी में अपनी विमाताओं के साथ राधा सोई थी, किन्तु उसकी आँखो मे नीद कहाँ! उसका हृदय तो अत्यन्त उद्वेलित हो उठा था। सारी रात एक ही विचार उसके मस्तिष्क में चक्कर काटता रहा—'कान्ह ने अपने वचन का पालन किया और यहाँ आया ही!' दूसरे दिन सबेरे राधा आहिस्ता-आहिस्ता कदम रखती हुई वहाँ जा पहुँची, जहाँ कृष्ण सोया था। यशोदा तथा रोहिणी तो कभी की बाहर निकल गई थी और गायें दुहने लगी थी। हाथ पर सर रखकर सोये हुए कृष्ण की ओर कुछ देर तक राधा विमोहित-सी देखती रहीं। कृष्ण के होठों पर एक मधुर मुस्कान फैली हुई थी,

मानो वह कोई सुख-स्वप्न देख रहा हो। फिर जैसे राधा के पास आने की आहट उसे लग गई, इस प्रकार आँखे खोलकर उसने राधा की ओर देखा। राधा का हृदय आनन्द से तरगित हो उठा।

'कान्ह !' भावावेग से कम्पित स्वर मे राधा बोल उठी।

'राधा !' प्रेमपूर्ण स्वर में कृष्ण ने कहा, 'मुझे बिछौने मे उठा तो जरा !' और अपने हाथ उसने राधा की ओर बढा दिए।

राधा ने उसका हाथ पकडकर खीचा और कृष्ण हँसता-हँसता राधा की बाहुओं मे जा गिरा।

'बलराम कहाँ गया ?' उसने पूछा।

'ओह ! वह तो यशोदा माँ के साथ बाहर गया है।' राधा ने यशोदा को माँ कहना शुरू कर दिया था। 'बलराम को माँ ने कहा था, "कृष्ण काफी थक गया है, उसे मत जगाना। अच्छी तरह सो लेने दे उसे !" और तुम्हारे जग जाने पर तुम्हारी देखभाल का काम मुझे सौंपा है उन्होने।'

'जा, जा, बड़ी आई देखभाल करने वाली ! बलराम गया कहाँ है ? नदी पर श्रीदाम और उद्धव मेरी राह देख रहे होंगे।'

राधा का मुँह उतर गया। कृष्ण को इस बात का खेद हुआ कि इतना प्रेम-भाव रखने वाली इस लड़की का दिल मैंने दुखाया।

'लेकिन नहाने कहाँ जाना है, यह तो मैं जानता ही नही,' कृष्ण ने कहा।

कृष्ण कही इनकार न कर दे, इस भय से घबराती हुई राधा ने कुछ हिचकते हुए कहा, 'नहाने के लिए एक बडी अच्छी जगह है, यदि हम वहाँ चलें तो ?'

उसका दिल फिर न दुखे, इस गरज से कृष्ण ने कहा, 'वह जगह कहाँ है, यह तो तू ही जानती है। लेकिन हम लोग साथ-साथ नहाने कैसे जाएँ ? तू लड़की जो ठहरी !'

'तो इससे क्या ? तुझसे तो मैं काफी बडी हूँ। बडी उम्र की औरतो के साथ तो तू नहाने जाता है न ! और फिर कोई वहाँ पहुँचे, उसके पहले ही हम लोग वापस आ जाएँगे।' कृष्ण हँसने लगा। उसने सोचा

कि राधा के साथ-साथ नहाने में बडा आनन्द रहेगा। हाथ मे हाथ डालकर दोनो जने जगल की पगडण्डी से होकर नदी के तीर पर पहुँचे। कदम्ब वृक्षों के बीच से होकर जहाँ नदी बहती थी, वहाँ पानी अधिक गहरा नही था। वही वे लोग पानी मे कूद पड़े। पंख फड़फड़ाते हस उड़कर किनारे पर दौड गए।

कृष्ण को लगा कि राधा ललिता और चन्द्रावली की तरह शर्मीली लडकी नही है। तैरती, दौड़ लगाती और पानी उछालती हुई वह लडको जैसी ही अधिक लगती थी। देह पोछकर वे दोनों जल्दी-जल्दी घर पहुँचे। बड़े लोग अभी लौटे नही थे। ऐसा मालूम होता था कि वे सब नवागन्तुकों की सेवा-टहल में लगे हुए थे।

कृष्ण को खेल सूझा। पेड़ पर बँधे एक हिडोले पर चढकर उसने राधा से कहा, 'मुझे झूला झुलाओ।' राधा ने झुलाना शुरू किया। परन्तु शान्त बैठा रहे तो वह कृष्ण ही क्या ! दोनों हाथो से रस्सी पकड़कर वह झूले की पटरी पर खड़ा हो गया।

'ज़ोर से झुलाओ,' उसने कहा।

'ज़ोर से ही तो झुला रही हूँ,' कहकर राधा ने दौड-दौड़कर झूले को और भी ज़ोर से धक्का देना शुरू किया। तब कमरबन्द से बाँसुरी निकालकर कृष्ण उसे बजाने लगा।

'अब तुझे झुलाने की मेरी बारी है,' कहकर कृष्ण झूले पर से कूद पड़ा। तब झूले पर चढकर राधा ने दोनों हाथो से रस्सी थाम ली और पटरी पर चढ़कर खड़ी हो गई। कृष्ण ने उसे झ़ुलाना शुरू किया। राधा हँसने लगी। वह अपना ही रचा हुआ एक गीत गाने लगी और उसे गाते-गाते अत्यन्त भाव-विभोर हो उठी।

कान्ह, ओ मेरे कान्ह !
बन की राह, जब मैं जा
रही थी पनघट पर,
ऊखल से बँधे दिखे तुम;
पास ही पड़े थे भूमिगत
यमलार्जुन

तेरे भुजवल से आहत !
तूँ हँसा, और तभी से तेरा रूप
मेरी आँखो मे सदा के लिए बसा;
मैं बन गई तेरी—
तेरी दासी, जनम-जनम की
कान्ह, ओ मेरे कान्ह !
धूलि-धूसरित तेरा मुख,
मैने प्यार से पोछा !
और तूने सहलाये मेरे केश,
जल पिलाते समय, जब
हुआ तेरे हाथो का मधु स्पर्श,
एक अपूर्व उल्लास, एक अबूझ प्यास,
मेरी नस-नस में तभी से तरगित है।
तूँ हँसा, और तभी से तेरा रूप
मेरी आँखो मे सदा के लिए बसा
मैं बन गई तेरी—
तेरी दासी, जनम-जनम की !
कान्ह, ओ मेरे कान्ह !

कृष्ण झूला देते-देते रुक गया और अपनी बाँसुरी निकालकर राधा के गीत के साथ-साथ बजाने लगा। कुछ ही देर बाद झूले के मन्द पड़ने पर, राधा नीचे कूद आई और बाँसुरी की ताल पर कृष्ण के चारों ओर थिरकने लगी।

तूँ हँसा और तभी से तेरा रूप
मेरी आँखों मे सदा के लिए बसा
मैं बन गई तेरी—
तेरी दासी, जनम-जनम की !
कान्ह, ओ मेरे कान्ह !

कृष्ण एक पैर दूसरे पैर पर टिकाकर खड़ा हो गया, और अपनी बाँसुरी से सुमधुर, भाव-भीने स्वरों की रचना करने लगा। राधा उसके

आस-पास थिरक रही थी। अचानक बाँसुरी की ध्वनि सुनकर ललिता, विसाखा, चन्द्रावली तथा अन्य गोपियाँ आकर द्वार पर खडी हो गई। राधा भावावेश में पैर के ठेके से तथा हाथ से ताली देती हुई नृत्य करती और गीत गाती रही।

जहाँ सुन्दर धेनु नि.शंक चरती है
जहाँ मयूर मत्त हो नृत्य करते हैं
तेरी बंसी के मधुर स्वरो से गूँजती
गोकुल की गलियो में
तूँ मुझे मिला।

सभी गोपियाँ मस्त होकर राधा के साथ-साथ हाथ से ताल देती हुई नृत्य करने लगी। राधा जो गीत गा रही थी, उसका साथ सभी गोपियाँ देने लगी।

तूँ हँसा और तभी से तेरा रूप
मेरी आँखो में सदा के लिए बसा
मैं बन गई तेरी—
तेरी दासी, जनम-जनम की।
कान्ह, ओ मेरे कान्ह !

अपने गीत के स्वरों में हृदय की समस्त भावनाएँ उँडेलती हुई राधा ने द्रुत गति से गाना शुरू किया। एक-एक पंक्ति वह पहले गाती थी और अन्य गोपियाँ उसे दुहराती थी।

वृन्दावन के कुसुम कुंजों में,
जहाँ कल्लोल करती हुई,
यमुना बहती है,
वही बैठी-बैठी मैं,
निर्निमेष नेत्रो से,
तेरी राह देख रही थी।
तूँने अपने वचन का पालन किया;
तूँ आया, आखिर आया !
कान्ह ! ओ मेरे कान्ह !

वन-देवियों के समान दिखाई पडती नृत्यरत गोपियाँ मधुर स्वरों मे गाती हुई कृष्ण के चारों ओर घूमने लगीं। बसी के स्वरो ने इस भाव-भीने गीत की सुमधुरता को पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया था। गोपियाँ त्वरित गति से नाच रही थीं। सहसा कृष्ण ने अपनी बाँसुरी कमरबन्द मे खोस ली और पैर के ठेके तथा हाथ से ताल देता हुआ वह भी उनके साथ नृत्य करने लगा। प्रत्येक गोपी के पास जाकर वह बारी-बारी से नाच रहा था। रास की गति धीरे-धीरे बढती ही गई और सभी रसोन्मत्त हो उठे।

अचानक किसी की हँसी सुनाई पड़ी। थिरकते हुए पैर वहीं रुक गए। माता यशोदा, रोहिणी तथा वृषभानु के घर की स्त्रियाँ दरवाज़े पर आकर खड़ी हो गई थी। सबके पीछे ज़ोर-जोर से हँसते हुए वृद्ध नन्दबाबा गीत की कड़ियाँ दुहराने में मग्न थे।

२०

कुछ वर्षों बाद

सौन्दर्य और समृद्धि से छलकता वृन्दावन यादवो के लिए सर्वोपम बन गया था। वहाँ की जलवायु आरोग्य की दृष्टि से अति उत्तम थी, इसलिए पशुधन भी खूब बढ़ने लगा और ढोर भी काफी हृष्ट-पुष्ट हो गए। सभी लोग दिन-भर खूब परिश्रम करते और रात को मीठी नीद सोते।

वसन्त ऋतु अब शेष हो चली थी। सेमल के वृक्षो पर नये-नये पुष्प उग आए थे। वृन्दावन मे आए नवागन्तुक घर बाँधने, नई गाड़ियाँ बनाने आदि कार्यों में जुट गए। फिर आया होली का पर्व! कुछ समय

के लिए काम-धाम भूलकर सभी वृन्दावनवासी ठौर-ठौर होलिकोत्सव मनाने मे निमग्न हो गए। नृत्य, गीत, खेल-कूद और हँसी-ठहाके की चारो ओर धूम मच गई। गॉव के छोरे-छोरियॉ भॉति-भॉति के खेल खेलते, आपस में मजाक भी करते तथा चारो ओर धूम मचाते फिरते। गिरोह बनाकर एक पक्ष दूसरे पक्ष को चुनौती भी देता। लडकों के नेता थे कृष्ण और बलराम, तथा लड़कियो का नेतृत्व करती राधा और ललिता। कीच, रंग, फूल तथा गुलाल लेकर दोनो पक्षो मे आक्रमण-प्रति-आक्रमण होते रहते। इस युद्ध मे सदा लडकों की ही हार रहती, क्योंकि खेल के नियमानुसार वे अपने हाथों का उपयोग नही कर सकते थे।

फिर भी, विजय हो या पराजय, खेल के अन्त में जीत बालकृष्ण की ही होती। और इसका कारण यह था कि खेल पूरा होने पर सभी लड़कियॉ उसे अपने कन्धो पर बिठाकर ले जातीं और वह सबके ऊपर बैठा-बैठा मज़े से बॉसुरी बजाता। जुलूस नन्द बाबा के घर जाकर ठहरता, जहॉ माता यशोदा और रोहिणी सबका स्वागत करने मिठाई लिये तैयार रहती। राधा तो बालकृष्ण के प्रेम-गीत सदा ही गाती रहती और उसकी देखादेखी कृष्ण पर स्नेह रखने वाले सभी व्यक्ति ये गीत गाने लगे।

बरसाने में जिस स्वच्छन्दता के साथ राधा सब जगह घूमती-फिरती थी, उसी स्वच्छन्दता से वह वृन्दावन में भी घूमती-फिरती। सारे गॉव मे इतनी स्वतन्त्रता और किसी लड़की को प्राप्त नही थी। होली का उत्सव समाप्त हो जाने पर भी राधा के नेतृत्व में सभी गोपियॉ मिलकर लड़को को खूब छकातीं। जब लडके जंगल से गाँव वापस लौटते, तब गोपियाँ एक-दूसरी का हाथ थामे पंक्तिबद्ध खड़ी होकर उनका रास्ता रोक लेतीं। चाँदनी रात में तो उनका उल्लास चरम सीमा पर पहुँच जाता। जमुना के रेतीले तट पर राधा तथा अन्य लड़कियॉ काफ़ी रात तक नाचती-गाती रहतीं। वे हाथ से ताल देती हुई, लयबद्ध पैरों के ठेके पर गोल-गोल घूमती हुई गीत गाती। फिर दो-दो की जोड़ियॉ बनती और प्रत्येक जोड़ी गोल-गोल चक्कर काटती हुई तब तक घूमती रहती जब तक कि वह थककर चूर न हो जाती और हँसते-हँसते ज़मीन पर न गिर पड़ती।

कृष्ण अपने सभी साथियों के साथ आकर इन लड़कियो का गीत

और नृत्य देखा करते; परन्तु बाद में ये लोग भी उसमे शरीक होने लगे। रास जब पूरे जोश मे आकर अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचता तो दूसरे लडके इस खेल से खिसक जाते और गोपियों के बीच में बाँसुरी बजाता हुआ केवल कृष्ण ही रह जाता। बाँसुरी के जादू से मोहित, पैरों से लय-वद्ध ठेका देती हुई, पायल झनझनाती, वे गोल-गोल घूमती रहती। अन्त मे रास पूरा होने पर सभी बालाएँ हँसती-हँसती कृष्ण को अपने साथ इस प्रकार ले जाती, मानो वह उन्हे मिला हुआ विजय-पद्म हो।

कृष्ण और बलराम अधिकतर एक-दूसरे के साथ ही घूमते-फिरते। एक ऊँचे कद का, चचल तथा सुकुमार था; दूसरा अत्यन्त विशाल और बलवान तथा प्रचण्डकाय था। फिर भी दोनो एक जैसी ही पोशाक पहनते। कृष्ण बलराम के वर्ण से मिलता पीले रंग का पीताम्बर पहनता तथा बलराम कृष्ण के रंग से मिलता नीले रग का नीलाम्बर पहनता। यशोदा मैया इन दोनो को सगे भाइयों के समान ही समझती थी। दोनो भाई रोज़ सवेरे जल्दी उठकर गोप-बालको को साथ लिये चरवाहों के साथ-साथ जगल में ढोर चराने जाते। कई बार वे चरवाहों से अलग, अनजाने रास्तों पर भी निकल पड़ते और ढोरों को चराने के लिए नये गोचर ढूँढ़ निकालते।

कृष्ण और बलराम के नेतृत्व में वृन्दावन के लड़के खूब धूम मचाते। जंगल की राह मे गलमाला, कान के कुण्डल, गजरे इत्यादि बनाने के लिए फूल चुनने मे वे एक-दूसरे की प्रतियोगिता करते, भाँति-भाँति के खेल खेलते, तूफान मचाते, हँसी-मजाक करते, एक-दूसरे की पीठ पर सवारी करते, अथवा कुश्ती लड़ते। ये वाल तथा तरुण गोप गुलेल लेकर दूर-दूर तक पत्थर फेंकने में भी होड़ लगाते थे। इन सबमे कृष्ण सबसे चतुर और चंचल था। उसका निशाना भी अचूक था। बड़े-से-बड़े लड़के के साथ वह कुश्ती लड़ता और बलवान-से-वलवान गोप से भी अधिक दूर तक गुलेल से पत्थर फेंक सकता। वह खूब हँसता, गाता और नृत्य करता। जिस किसी खेल में बुद्धि की परीक्षा होती, उसमे वह सबसे अधिक निपुण निकलता। उसकी बाँसुरी में से ऐसे मधुर स्वर निकलते कि मनुष्य तथा ढोर, सभी उसे सुनकर चित्र-लिखित-से ठगे रह जाते।

सभी बालक कृष्ण को बेहद चाहते थे और उनमे से प्रत्येक को लगता कि कृष्ण भी मुझसे बहुत प्रेम करता है।

इस प्रकार न केवल बालक और तरुण बल्कि वृन्दावन का प्रत्येक व्यक्ति—स्त्री और पुरुष—कृष्ण के प्रेम मे विभोर था। कृष्ण अब माखन-चोर नही रह गया था। जब कभी वह अपने पडोसियो से मिलने जाता, और ऐसा सदा ही होता, तब बड़ी उम्र की गोपियाँ उसके आगे अपना मन-भावन माखन धर देती, उसके पिछले करतब कह सुनाती, अथवा उसके बारे में रचे हुए गीतों की पक्तियाँ गाती। वृन्दावन की प्रत्येक स्त्री कन्हैया पर वारी जाती। यदि वह किसी गोपी की उपेक्षा करता तो वह उसे उलाहना दिये बिना नही रहती। ऐसे मौको पर कृष्ण इस प्रकार खेद प्रकट करता कि गुस्से से भरी गोपी उसे केवल माफ़ ही नही कर देती, बल्कि मन-ही-मन यह इच्छा भी करती कि कृष्ण द्वारा माफ़ी माँगने का अवसर उसे फिर देखने को मिले।

अपनी जन्मभूमि से बाहर जाकर जब कभी कोई जन-समुदाय नये प्रदेश मे प्रवास करता है, तो वहाँ के नये वातावरण मे स्थापित होने के लिए कुछ समय लगता ही है। ऐसे समय में स्वभावत: उनके आचार-विचार के नियम व्यवस्थित नही रहते और पुराने नियन्त्रण तथा अंकुश शिथिल हो जाते है। इसीलिए नई बस्ती में गोप-बालिकाएँ स्वच्छन्दता से घूमती-फिरती, लड़कों के साथ खेल खेलती तथा उनके साथ नदी में नहाने भी चली जाती। लड़के-लडकियाँ जल मे खूब नहाते, खेलते और एक-दूसरे पर तब तक पानी के छीटे उछालते रहते जब तक कि अन्त में एक पक्ष हारकर बाहर नही निकल जाता।

माता यशोदा का अपने पुत्र के प्रति असीम प्रेम था। दूसरों को भी उस पर बहुत प्रेम रखते देखकर उनका हृदय फूला न समाता। कृष्ण ने सभी के हृदय में एक असीम स्नेह तथा भक्ति का भाव प्रेरित किया था। प्रत्येक दिन सबेरे जिन गायो तथा बछड़ों को चराने के लिए वह ले जाता, उनके प्रति भी उसके मन मे अपार स्नेह था। कइयों को तो वह नाम से भी पुकारता। गाय तथा बछड़े उसे अपनी ओर आते देखकर इसलिए दौड़े जाते कि वह अपने नन्हे-नन्हे कोमल हाथ उन पर फेरे, उन्हें पुचकारे

और प्यार करे। जब कभी वह किसी गाय पर सवारी करता, तब वह गाय गर्व से सिर ऊँचा उठाकर चलती। जब वह बुलाता तब मोर भी निडर होकर उसके पास चले आते। जब वह बाँसुरी बजाता, तब गायें मानो ध्यानस्थ होकर एक जगह निश्चल खड़ी रहती। मोर आनन्द-समाधि में लीन होकर नृत्य करने लगते। इस प्रकार मनुष्य और पशु, सभी का वह लाडला बन गया था। फिर भी वह उच्छृङ्खल नही था। कृष्ण जो भी करता उसमे एक स्वाभाविक सम्पूर्णता स्वत. ही बरतती थी। गाँव के सभी युवाओ से वह अधिक साहसी था, फिर भी वह स्वयं को कभी असाधारण नही समझता।

कृष्ण और बलराम जैसे-जैसे उम्र में बढते गए वैसे-वैसे उनकी शक्तियों का विकास भी होता गया। साथ ही उनमें प्रचुर साहस भी हो गया। एक बार एक हृष्ट-पुष्ट बछड़ा उन्मत्त होकर वृन्दावन की गलियो में दौड़ने लगा। कई ढोरों को उसने घायल कर दिया और कुछ गोपो के पीछे भी दौडा। निष्णात ग्वालों ने उसे पकड़कर बाड़े में बन्द कर देना चाहा, परन्तु वह किसी की पकड़ में नहीं आया। एक स्थान पर जहाँ बालक खेल रहे थे वहाँ इस मत्त बछड़े ने एक गाय को लोहू-लुहान कर दिया। सभी भय और आश्चर्य से उसकी ओर देखने लगे। तब कृष्ण अपने साथियों को छोड़कर उस मत्त बछड़े के सामने लकड़ी लेकर खड़ा हो गया। बछड़ा अत्यन्त रोष से नथुने फुलाकर तथा माथा नीचा कर कृष्ण की ओर दौड़ा, पर कृष्ण छलाँग मारकर एक तरफ खिसक गया। उसके साथी उसे वहाँ से दौड़ आने को कहने लगे, परन्तु कृष्ण वहीं अड़ा रहा। बछड़ा कई बार गुस्से मे भर-भरकर उसकी ओर दौडा, पर कृष्ण चतुराई से एक ओर खिसककर उससे हर बार बच जाता। आखिर साँस भर जाने पर बछड़ा कुछ देर के लिए रुका और कृष्ण पर फिर आक्रमण करने की तैयारी करने लगा। कृष्ण ने इस मौके का फायदा उठाया और आहिस्ता से खिसककर एक मजबूत पेड़ के साथ रस्से का एक सिरा बाँध दिया। फिर बछड़े के पीछे धीरे-धीरे स्वयं खिसकता चला गया और इससे पहले कि बछड़ा यह समझ पाता कि कृष्ण क्या कर रहा है, उसने बछड़े के पिछले पैरों में रस्से का फन्दा डाल दिया। ज्यो ही

बछड़ा पीछे की ओर मुडा और रस्से से पैर छुड़ाने की कोशिश करने लगा, त्यों ही रस्से की गाँठ और भी मजबूत हो गई।

इस पर मित्रो ने कृष्ण की खूब सराहना की, किन्तु उनकी ओर ध्यान न देते हुए कृष्ण फिर उछलकर बछड़े के सामने आ खड़ा हुआ और भाँति-भाँति के शब्द कहकर उसे चिढाने लगा। पिछले पैर बँधे होने पर भी बछड़ा कृष्ण की ओर कई बार दौड़ा, परन्तु कृष्ण प्रत्येक बार बच निकलता। फिर बडी सफाई से कृष्ण स्वयं पेड की ओट हो गया। क्रोध से अन्धे बने बछड़े ने पेड़ को ही टक्कर मारी और उससे उसकी खोपड़ी फट गई। फिर, जैसे यह मात्र एक खेल हो इस लापरवाही के साथ, कृष्ण भय तथा प्रशंसा के भाव से विमूढ बने अपने मित्रो के पास पहुँच गया।

इस प्रकार के पराक्रमो की चर्चा जब वृन्दावन के लोग सुनते, तब उसमे कल्पना के रग चढाकर उसे और भी बढ़ा-चढ़ाकर वे कहते, जिससे यह माना जाने लगा कि कृष्ण मे कोई अद्‌भुत चमत्कारी शक्ति है। परन्तु स्वय कृष्ण ऐसी चर्चा से अलिप्त रहता। मुख पर सतत मुस्कान लिये, शान्त तथा निश्चिन्त, कभी भी घबड़ाए या गर्विष्ठ बने बिना, सहज स्वाभाविक भाव से वह ऐसे पराक्रम करता रहता।

२१

अद्‌भुत साहस

वर्षों बीत गए। कृष्ण कद में ऊँचा और शरीर से सुन्दर, सुडौल तथा सुदर्शन बन गया था। चपल स्नायुओंवाली उसकी सुपुष्ट देह के अंग-अंग से लावण्य फूट पड़ता था, जबकि बलराम का शरीर प्रचण्ड, अत्यन्त

हृष्ट-पुष्ट और अपार शक्ति का भण्डार था।

वृन्दावन की समृद्धि निरन्तर बढ़ रही थी। पशुओं की सख्या भी काफी हो चली थी। तरुण तथा वृद्ध स्त्री-पुरुष अपने-अपने कामो मे निमग्न रहते। युवा गोप-गोपियाँ अवकाश के समय आनन्द-प्रमोद करते। रासोत्सव के समय एक दिन कृष्ण, बलराम, श्रीदाम और उद्धव, ये चारों मित्र यमुना के किनारे एकत्रित जनसमूह से कुछ दूर जाकर आपस में धीरे-धीरे बाते करने लगे।

बलराम ने कृष्ण से कहा, 'कल रास का अन्तिम दिन है। यदि तूने हस्तिन् पर सवारी नही की कृष्ण, तो शर्त में हार जाएगा।'

'कौन कहता है, मै शर्त मे हार जाऊँगा ? देखना, कल सबेरे हस्तिन् पर सवारी कर मैं शर्त जीतता हूँ कि नही !' कृष्ण ने उत्तर दिया।

'ऐसा दुःसाहस मत करना, कृष्ण !' उद्धव ने कहा, 'बलराम, इसे हस्तिन् पर सवारी करने को मत कह ! वह तो केवल मजाक था। उसे इस बात की याद दिलाई ही क्यों तूने ?'

'ठीक तो है। हस्तिन् पर हम तुम्हे सवारी नही करने देंगे। नन्द बाबा ने हमे बड़े-बड़े साँडों से दूर रहने को ही कहा है।' श्रीदाम ने कहा।

'पर मैं तो हस्तिन् पर सवारी करूँगा। अपने वचन से मैं पीछे कभी नही हटता !' कृष्ण ने ज़ोर देकर कहा।

'बलराम, इस मजाक को और ज्यादा घसीटने में कोई फ़ायदा नहीं। हस्तिन् कितना भयकर वृषभ है और कभी-कभी तो वह कितना मतवाला हो जाता है, यह तुम जानते ही हो। कृष्ण को चोट पहुँचे बिना नही रहेगी।' उद्धव ने कहा।

'तुम लोग मज़ाक समझो तो मज़ाक, और सच मानो तो सच; पर मैं तो कल सबेरे हस्तिन् पर सवारी करूँगा ही। फिर तुम लोग चाहे वहाँ उपस्थित रहो या नहीं।' कृष्ण ने कहा और गाँव की ओर लौटते गोप-गोपियो के गिरोह के साथ चल दिया।

'बलराम, तुम क्या कहते हो ? अब क्या होगा ?' श्रीदाम ने चिन्तातुर स्वर में कहा।

'चिन्ता मत कर, श्रीदाम ! कृष्ण को मैं यह बता देना चाहता हूँ कि

अब उसकी शेखी नही चलेगी ।'

'परन्तु उसने यदि यह दुःसाहस किया तो ?' उद्धव ने प्रश्न किया ।

'हस्तिन् पर सवारी करना कोई हँसी-खेल नही । वह तो मत्त हाथी पर सवारी करने के समान है । मैं उसे उस पर नहीं बैठने दूँगा ।' बल-राम ने कहा ।

'पर वह मानेगा थोड़े ही । यदि हस्तिन् पर सवारी करने का उसने निश्चय किया है तो वह ज़रूर करेगा ।' उद्धव ने कहा ।

'तो हस्तिन् उसे ज़मीन पर उठा फेंकेगा । इससे कुछ साधारण चोट जरूर आएगी, पर कोई बड़ा नुकसान नही होगा ।' बलराम ने कहा और अकड़ता हुआ चल दिया ।

श्रीदाम और उद्धव तुरन्त मन्त्रणा करने लगे ।

'अब क्या उपाय है ?' श्रीदाम ने पूछा ।

'यदि राधा को कहा जाए कि वह कन्हैया को समझाये, तो कैसा रहे ? मुझे अभी-अभी खयाल आया कि राधा को ही सारी बातें समझा-कर कही जाएँ ।' उद्धव ने कहा ।

हस्तिन् वृन्दावन के सभी वृषभो में श्रेष्ठ था । मांसल और प्रचण्डकाय इस वृषभराज के सीग मज़बूत और पैने थे और गर्दन के स्नायु अत्यन्त शक्ति-शाली थे । उसकी चमड़ी साँवली और नरम थी । उसके प्रताप से वृन्दा-वन के बहुत-से वृषभों तथा गायों ने जन्म पाया था । विशाल वृक्ष से बँधा वह शक्ति का मूर्तिमान अवतार दिखाई पड़ता था । सारा दिन अधीरता से वह ज़मीन कुरेदता रहता और किसी के भी पास आने पर क्रोध से नथुने फुलाकर फुफकार उठता । यदि कोई गाय आ जाती तो वृक्ष से बँधा हो या नहीं, प्रबल आवेग से अशान्त होकर वह गर्जना करता और वंशवृद्धि के लिए आतुर बन जाता ।

एक बार सभी लड़के जब हस्तिन् को देखने गये तब बलराम ने कहा कि एक रोज़ मैं इनना बलवान बनूंगा कि आवश्यकता पड़ने पर एक ही प्रहार से इस हस्तिन् को धराशायी कर दूँ ।

'एक ही प्रहार से तूँ उसे धराशायी कर सकेगा या नहीं, यह तो मैं

नही जानता; पर इतना जरूर जानता हूँ कि तूँ इस पर सवारी नहीं कर सकता !' बड़े भाई को चिढ़ाने की गरज से कृष्ण ने कहा।

'तो तूँ ही कहाँ इस पर सवारी कर सकता है ?' बलराम ने उत्तर दिया।

थोड़ी देर तो कृष्ण चुप रहा, फिर शान्ति से उसने कहा, 'मैं उस पर सवारी कर सकता हूँ।'

'तूँ नही कर सकता !'

'कर दिखाऊँ तो ?'

'पर नन्द बाबा ने तो हमे साँड पर सवारी करने को मना किया है,' उद्धव ने कहा 'जो भी हस्तिन् पर सवारी करने की कोशिश करेगा, वह वही ढेर हो जाएगा।'

'मैं उस पर सवारी ज़रूर करूँगा।' कृष्ण ने कहा।

'शर्त लगाएगा ?' बलराम ने पूछा।

'यदि मैं उस पर सवारी नहीं कर सकूँ तो तुझे अपने कन्धो पर बिठाकर दिन-दहाड़े सारे गाँव मे चक्कर लगाऊँगा।' कृष्ण ने कहा।

'मजूर ?'

'हाँ, मंज़ूर !'

'ठीक, तो एक महीने बाद आगामी पूनम के दूसरे दिन मै उस साँड पर सवारी करूँगा।' कृष्ण ने कहा।

इसके दूसरे दिन कृष्ण समय निकालकर वहाँ गया जहाँ हस्तिन् को रखा जाता था। अन्य वृषभों से हस्तिन् को दूर ही बाँधा जाता था, क्योंकि पता नही वह क्रोधित होकर कब उन पर हमला कर बैठे।

कुछ आनाकानी के बाद हस्तिन् का रखवाला कृष्ण को उस महाकाय वृषभ के पास ले जाने को तैयार हुआ। हस्तिन् बड़े मजे से घास चर रहा था और पैरों से लात मार-मारकर उसे उछाल रहा था। तीनों रखवालो को चिन्ता हुई कि इस भयंकर जीव के पास कृष्ण को जाने दें तो नन्द बाबा क्या कहेगे ? एक रखवाला हस्तिन् के लिए बिनौले भर-कर टोकरी ले आया और दूसरा इस तरह उसके पास जाकर खड़ा हो

गया कि यदि हस्तिन् ने कुछ गड़बड़ की तो वह बीच-बचाव कर सके; परन्तु कृष्ण तो हँसते-हँसते हस्तिन् के पास वही जा पहुँचा जहाँ रखवाला खड़ा था।

अचानक हस्तिन् की दृष्टि नये व्यक्ति पर पड़ी और उसने अपना भयंकर मुख उसकी ओर फेरा। क्रोध से नथुने फुलाकर वह दहाड़ उठा। बिनौले की टोकरी हाथ में लिये जो रखवाला खड़ा था वह कृष्ण के आगे आकर खड़ा हो गया। हस्तिन् पुराने पीपल से बँधा अपना रस्सा तुडाने लगा। उसकी आँखे लाल हो गई और माथा नीचा कर उसने नवागन्तुक को देखा। कृष्ण ने अपनी बाँसुरी निकालकर बजाना शुरू किया। थोडी देर तक तो हस्तिन् नथुने फुलाकर हुँकारता रहा। यह अपरिचित ध्वनि सुनकर वह रोष से भर गया। फिर उसका क्रोध कुछ शान्त हुआ, और उसने कौतूहल से कृष्ण की ओर देखा। रखवाले ने उसके सामने बिनौलो की टोकरी रखी, पर उसकी उसे उस वक्त कोई जरूरत नही थी। उसे तो उस अपरिचित लड़के की बाँसुरी में रस आ रहा था। बाँसुरी के स्वर उसे मीठे लगे और कृष्ण जब एक कदम आगे बढकर उसकी ओर गया तो हस्तिन् ने उसकी ओर शान्त दृष्टि से देखा। फिर तो कृष्ण ने हिम्मत कर बाँसुरी बजाना बन्द कर दिया और हस्तिन् के पास जाकर वह स्वयं टोकरी उसके मुँह के आगे ले गया।

कृष्ण अब रोज़ वहाँ जाने लगा और अपनी बाँसुरी की मधुर ध्वनि से वृषभ को रिझाने लगा। प्रत्येक बार वह अपने साथ ताजा, हरी घास और घी से तर मिठाइयाँ ले जाता और हस्तिन् बड़े प्रेम से उन्हे खाता। कुछ दिन बाद बंसी बजाते-बजाते कृष्ण हस्तिन् के इतना नज़दीक चला गया कि वह उसके शरीर को स्पर्श कर सके। हस्तिन् को वह अच्छा लगा और उसने कृष्ण को अपनी देह पर हाथ फेरने दिया। रखवाले तो आश्चर्य से चकित रह गए कि यह उग्र स्वभाववाला वृषभ कृष्ण का मित्र कैसे बन गया।

निश्चित तिथि को सवेरे कृष्ण और बलराम हस्तिन् के स्थान पर पहुँचे। वह उस समय ज़मीन पर बैठा था। इन्हे देखते ही वह नथुने फुलाकर

गरज उठा ।

'क्या तूँ सचमुच ही हस्तिन् पर सवारी करेगा ?' बलराम ने पूछा ।

'अवश्य करूँगा ।' कृष्ण ने उत्तर दिया ।

'पागल मत हो । मैं तो यो ही मज़ाक कर रहा था ।' बलराम ने कहा । फिर किसी नवीन व्यक्ति को आते देखकर श्रीदाम और उद्धव से उसने पूछा, 'यह तुम किसे साथ ले आए हो ?'

'राधा आई है हमारे साथ ।' श्रीदाम ने कहा ।

'यह क्या हो रहा है, कान्ह ?' गुस्से से भरी राधा ने प्रश्न किया, 'ऐसी शर्त तूने लगाई ही क्यों ? और मुझसे इमकी चर्चा भी नही की !' भृकुटि चढ़ाकर कृष्ण पर मानो अपना अधिकार जता रही हो इस प्रकार आकर वह खड़ी हो गई और फिर बोली, 'अरे दाऊ भैया, कान्ह को तुम हस्तिन् पर सवारी करने को क्यो कहते हो ? कही पागल तो नही हो गए तुम !'

'मैं तो पागल नही हुआ, पर यह ज़रूर हो गया है,' कृष्ण की ओर सकेत करते हुए बलराम ने कहा, 'मैं तो केवल मज़ाक कर रहा था । मै स्वय भी नही चाहता कि कृष्ण हस्तिन् पर सवारी करे । मैं अपनी शर्त वापस लेता हूँ । मुझे क्या खबर थी कि यह इसे सचमुच ही मान लेगा ।'

'सुना न, कान्ह ! अब तुझे यह दुःसाहस करने की ज़रूरत नही,' राधा ने कहा ।

कृष्ण ने मुस्कराकर कहा, 'राधा, तू गुस्सा करती है तब कितनी भली लगती है ! तेरी आँखे तो सचमुच बडी अद्भुत दीख पड़ती है !'

'मुझे गुस्सा मत दिला !' राधा ने चिढकर कहा, 'हस्तिन् पर तुझे सवारी नही करनी है ।'

'कौन कहता है कि नही करनी है ?' कृष्ण ने हँसने-हँसते पूछा ।

अपने आराम मे खलल पड़ते देखकर हस्तिन् का मिजाज़ बिगड़ गया । वह खड़ा हो गया और अपने कक्ष मे आये इन बिनबुलाये मेह-मानों को सशंकित दृष्टि से कुछ देर देखने के बाद क्रोध से गरज उठा । इस प्रचण्ड प्राणी को क्रोध से भरा देखकर राधा तो घबड़ा उठी ।

'कान्ह ! मैं तुझे इस पर नहीं बैठने दूंगी । अपनी जिद छोड दे !'

भयजनित शब्दो में राधा ने विनती की ।

'मै ज़िद नही कर रहा; पर उस पर सवारी अवश्य करूँगा ।' कृष्ण ने कहा ।

'ना भैया, ना !' स्नेहपूर्वक कृष्ण के कन्धे पर हाथ रखते हुए बलराम ने कहा ।

'बलराम, चिन्ता मत कर ! हस्तिन् पर मैं सवारी जरूर करूँगा, इसलिए नहीं कि मैने शर्त बदी है, वल्कि इसलिए कि सवारी करने का मेरा मन है,' कृष्ण ने दृढ़ता से कहा, 'मैं अपने इरादे से हटनेवाला नहीं हूँ । तुम लोग सब यहाँ खड़े रहकर मेरा काम मुश्किल बना रहे हो । जाओ, उस दीवार के पीछे जाकर खड़े हो और देखो कि मै क्या करता हूँ !' कृष्ण ने शान्ति से, पर आदेशात्मक वाणी मे कहा ।

'अब क्या होगा ?' उद्धव ने कहा ।

'कुछ नही होगा । बस, मैं उस पर सवारी करूँगा, और कुछ नही । अब तुम हटो यहाँ से । राधा, गुस्सा छोड़ और शान्ति से सबके साथ खड़ी होकर देख !' कृष्ण ने कहा ।

राधा का गुस्सा अभी उतरा नही था ।

'नही, मैं नही जाऊँगी । यदि तूँ इस साँड पर सवारी करेगा तो तेरे साथ मैं भी सवारी करूँगी । यदि तूँने मरने का ही निश्चय कर लिया है तो मै भी तेरे साथ मरूँगी !' क्रोध में भरकर राधा ने कहा ।

'पर, मेरे साथ तूँ किस तरह सवारी करेगी ?' कृष्ण ने पूछा ।

'तो फिर मैं मर जाऊँ तभी अपना शौक पूरा करना !' राधा ने जवाब दिया । उसके हाथ काँप रहे थे और उसकी सुन्दर आँखों मे दृढ़ निश्चय झलक रहा था ।

क्षण-भर तो कृष्ण चुप रहा । सुकुमारता और प्रेम की दृष्टि से वह राधा की ओर देख रहा था । वह चौदह वर्ष का था और राधा उन्नीस की । फिर भी वह सुकुमार और सुन्दर दिखाई पड़ती थी । उसे अपने इरादे से हटाना मुश्किल था ।

'अच्छा ठीक है, मैं तुझे अपने साथ हस्तिन् पर सवारी कराऊँगा । पर, भई ज़रा दूर तो जाकर खड़ी रह !' कृष्ण ने कहा ।

बलराम, श्रीदाम तथा उद्धव ने कुछ हिचकते-हिचकते वहाँ से हटना शुरू किया। राधा से कृष्ण ने कहा, 'कुछ देर यही खड़ी रह ! जब मैं अपनी तैयारी कर लूँगा तब तुझे अपने साथ सवारी करने ले जाऊँगा।'

राधा को वही छोड़कर कृष्ण वहाँ गया जहाँ विनौले और खली रखी थी और उन्हे एक टोकरी मे डालकर हस्तिन के पास ले गया। वह अधीर होकर ज़ोर-जोर से गर्जना कर रहा था। उसने राधा की ओर गुस्से से देखा।

टोकरी को ज़मीन पर रखकर कृष्ण ने बसी बजाना शुरू किया। कुछ देर तक तो हस्तिन् की अधीरता ज्यों-की-त्यों बनी रही, फिर बाँसुरी का जादू उस पर चढा और वह शान्त हुआ। कृष्ण ने टोकरी लेकर उसके मुँह के आगे रखी और वह आनन्द से खाने लगा। कृष्ण और भी नजदीक जाकर उसे प्रेम से थपथपाने लगा। फिर उसका सहारा लेकर वह खडा हो गया और बॉसुरी निकालकर बजाना शुरू किया।

जब हस्तिन् खाने मे मग्न था तब कृष्ण ने राधा के पास जाकर कहा, 'मैं हस्तिन् को पानी की नॉद के पास ले जाता हूँ। जब वह पानी पी रहा होगा तब मैं बॉसुरी बजाऊँगा। उस वक्त तूँ आकर मेरे पीछे खड़ी हो जाना और कसकर मुझे पकड़ लेना। छोडना नही ! याद रखना कि मुझसे जरा भी दूर हटी तो सॉड तुझे लोहू-लुहान कर देगा। क्यों, होगी न हिम्मत तेरी ?'

'तूँ मेरे साथ रहे तब मुझे किस बात का भय ?' आँखों में एक अद्भुत चमक लाकर राधा ने कहा।

एक रखवाला तब दरवाज़े के पास दिखाई पड़ा। उसे सम्बोधित कर कृष्ण ने कहा, 'गोपाल, हस्तिन् को मैने खिला दिया है। अब मै इसे पानी पिलाने बाहर ले जा रहा हूँ। तू वहाँ मत आना। यदि तू आया और मुझे कुछ हुआ तो सारी जिम्मेदारी तेरी होगी।'

हस्तिन् के पास लौटकर कृष्ण ने फिर बॉसुरी बजाना शुरू किया। हस्तिन् खा रहा था, वहाँ से उसे छुड़ाकर वह उसे पास ही रखी नॉद के पास ले गया। जब सॉड ने पानी पीना शुरू किया तब कृष्ण ने फिर बाँसुरी बजाना आरम्भ किया। तब दबे पॉव आकर राधा उसके पीछे

खडी हो गई । हस्तिन् पानी पी ही रहा था कि कृष्ण उसके पास आकर खड़ा हो गया और उसकी गर्दन थपथपाने लगा ताकि दीवार पर चढ़ती राधा को वह न देख सके । बड़े प्यार से कृष्ण ने हस्तिन् के साथ बात करना जारी रखा और अचानक कूदकर उसकी पीठ पर बैठ गया । उसकी नाथ हाथ मे लेकर कृष्ण ने राधा को भी अपने पीछे बिठा लिया । हस्तिन् ने अपना मुँह ऊपर उठाया, कृष्ण की ओर देखा और बड़े मज़े से फिर पानी पीने लगा ।

'बेटा हस्तिन्, चलो अब जगल मे ज़रा घूम आएँ !' बड़े प्यार से उसे सम्बोधित कर कृष्ण ने साँड से कहा ।

जैसे कृष्ण की बात भली भाँति समझ रहा हो, इस प्रकार उसकी ओर मुँह उठाकर हस्तिन ने देखा और फिर प्रातःकाल की ताजी स्वच्छ हवा खाने जंगल की ओर चल दिया ।

'चल बेटा चल ! जल्दी-जल्दी पाँव उठा !' कृष्ण ने कहा ।

कृष्ण ने हस्तिन् को जब जल्दी-जल्दी चलने को कहा तब राधा ने कृष्ण की कमर जोर से पकड़ ली । कृष्ण ने अपने दोनों हाथो की कुहनियों को दोनो ओर दबाकर राधा के हाथों को मजबूती से जकड़ रखा था । साँड दौड़ने लगा । कृष्ण ने प्यार से मुस्कराते हुए हस्तिन् को एड मारी और वह और भी जोर से दौड़ने लगा । थोड़ी ही देर बाद वह जगल के भीतर पहुँच गया । राधा मज़बूती से कृष्ण को थामे थी ।

कुछ देर बाद हस्तिन् रुक गया । अब तक तो दौडने में उसे आनन्द ही आया था, पर अब उसकी साँस भर आई थी । राधा आहिस्ता से उसकी पीठ पर से खिसक गई और कृष्ण भी नीचे उतरकर उसके पास आकर खड़ा हो गया । हस्तिन् ने उन दोनो की ओर आनन्द और कृतज्ञता के भाव से देखा और रास्ते के पास जो घास उगी हुई थी उसे चरने लगा ।

राधा कृष्ण के पास आकर बैठ गई । कृष्ण ने उसके मुँह पर के स्वेद-बिन्दु पोंछे और फिर बाँसुरी बजाने लगा ।

जब सूर्य आकाश में ऊँचा उठ आया तब बलराम, श्रीदाम और उद्धव रखवालों के साथ उनके पीछे-पीछे वहाँ आ पहुँचे । राधा-कृष्ण से जब वे आकर मिल गए तब कृष्ण ने मत्त हस्तिन् को डोरी बाँधकर अपने

साथ-साथ चलाना शुरू किया। राधा, कृष्ण और हस्तिन् के बीच मित्रता स्थापित हो चुकी थी।

सभी लड़के और रखवाले भी, इस अपूर्व दृश्य, इस अद्भुत साहस को देखकर गर्व से उनकी ओर देख रहे थे। पर सभी इस बात पर एक-मत थे कि यदि नन्द बाबा किसी तरह जान गए कि कृष्ण को यह दुःसाहस उन्होंने करने दिया तो वे कभी उनको क्षमा नहीं करेंगे।

२२

कालिय नाग

नये-नये चरागाहों की तलाश करते हुए कृष्ण और बलराम गोवर्धन पर्वत के समीप जा पहुँचे। वहाँ गायों के लिए उत्तम प्रकार की घास विपुल प्रमाण मे प्राप्य थी। तुलसी तथा वृन्दा के वृक्षों का भी वहाँ बाहुल्य था और उन्ही पर वहाँ के गाँव का नामकरण भी हुआ था। कृष्ण तो पहले से ही तुलसी तथा वृन्दा पर मोहित थे; उनकी सुगन्ध से उनके हृदय में एक नवीन स्फुरणा का सचार होता था। कदम्ब वृक्ष की ओर भी अब वह आकर्षित होने लगे थे और तारो के समान दिखाई पड़नेवाले सुन्दर पुष्पो को निहारते हुए उसकी छाया मे विश्राम करना उन्हे अच्छा लगता था। चपक, केतकी तथा कुन्दी के पुष्प भी कृष्ण को अत्यन्त प्रिय थे। उनके आकार, रंग और सुगंध से उनकी सौन्दर्य-भावना को परितुष्टि मिलती। इन फूलों को वह अपने साफे मे खोंसते, कान अथवा गले में धारण करते।

वृक्षों के प्रति कृष्ण को उतना ही अनुराग था जितना अपने प्रिय

मित्रो के प्रति। कभी-कभी तो मित्रवृन्द को छोडकर वह पुरातन वृक्षों की छायातले भ्रमण तथा विश्राम करते। उनके सान्निध्य में कृष्ण को एक अपूर्व शान्ति का अनुभव होता और कभी-कभी तो वह वृक्षों से मूक सम्भाषण भी करते दिखाई पडते। कई बार उनकी बाँसुरी के स्वर प्रकम्पित पर्णराशि में से छन-छनकर पवन की लहरों के साथ मिल जाते।

पर, इन सबसे भी अधिक, कृष्ण को सौन्दर्यराशि गोवर्धन पर्वत अति प्रिय था। उस पर भाँति-भाँति के सुन्दर वृक्ष सुशोभित थे, और उन वृक्षो पर विविध प्रकार के रग-बिरगे पुष्प सदा खिले रहते थे। पास ही कलकल निनाद करते छोटे-छोटे झरने बहते थे। सारे पर्वत-प्रदेश पर, अपनी मादाओ के साथ विहार तथा नृत्य करते हुए मयूर अतीव सुन्दर लगते थे। वे कृष्ण को अपना मित्र समझते थे। इसी प्रकार, सरोवर मे सगर्व तैरते हुए हस-युगल भी कृष्ण की आवाज सुनकर उनकी ओर मैत्री-भाव से दौड़े आते। जब वह पर्वत पर चढते, तो वन के पक्षी उनके ऊपर उड़ते-उड़ते निकल जाते और शर्मीले खरगोश भी उनका बाँसुरी-वादन सुनने के लिए अपने छोटे-छोटे बिलो से मुँह निकालते।

अपनी इस प्रिय पर्वतभूमि पर कृष्ण अपने मित्रों सहित, अथवा अकेले ही विचरण किया करते। पर्वत के शिखर पर पहुँचकर जब वह अपनी दृष्टि चारो ओर डालते तब मनुष्य, पशु, वृक्ष, कुसुम, बहते हुए झरने और सर्वाधिक, गोवर्धन पर्वत के साथ वह एक विचित्र आत्मीयता का अनुभव करते। बालकृष्ण में भय की वृत्ति का तो लवलेश भी नही था। एक बार वन के किसी निर्जन, अज्ञात प्रदेश मे, ढोरो को चराते हुए, वह जा पहुँचे। वहाँ अपने अडो को सेती हुए एक बगुली के पास जब उनके साथी जाकर खड़े हुए, तो भयभीत बगुली ने जोर-जोर से चिल्लाना शुरू किया। श्रीदाम को तो उसने काट ही खाया। सभी लड़के घबड़ा-कर भागे, परन्तु कृष्ण शान्त होकर वहीं खड़े रहे। उन्होंने बगुली की चोच को अपने हाथों में पकड़कर चीर डाला। करुण आर्तनाद करती और खून निगलती हुई बगुली ने भागने का प्रयत्न किया, परन्तु कुछ ही दूर जाकर वह निर्जीव होकर गिर पड़ी।

एक बार एक प्रचण्ड अजगर का सामना भी कृष्ण को करना पड़ा।

उन्हे भय तथा कौतूहल-निश्रित आदरभाव से देखने लगे थे। उन्हे अब इस बात मे कोई शंका नही रह गई थी कि ये दोनों भाई देवताओ के अवतार है और इनका जो भी विरोध करेगा, वह दैत्य है। फिर भी, उनकी सुरक्षा की चिन्ता उन्हे ज़रूर रहती थी, इसीलिए जब श्रीदाम यह समाचार लेकर गाँव मे आया, कि विषधर कालिय नाग का दमन करने के लिए कृष्ण ज़हरीले कुण्ड मे कूद पड़े है, तब तो उनकी घबड़ाहट और भय की मात्रा पराकाष्ठा पर पहुँच गई।

वृन्दावन से कुछ दूर एक निर्जन स्थान मे यह जहरीला कुण्ड था। मात्र वर्षाकाल मे नदी का जल उसमे भर जाता था; बाकी आठ महीने वह सूखा रहता। हरी घास तथा काई उसमें भर जाती थी, जिससे उसमे से भयकर दुर्गन्ध निकलती रहती। कालिय नाम का नाग अपने परिवार सहित उसमे रहता था। उसके डर के मारे मनुष्य अथवा पशु, कोई भी उस कुण्ड की ओर नही जाता था। उसका नीला जल जहरीला माना जाता था, क्योकि जिस किसी पशु ने उसे पिया वह वही मर गया।

श्रीकृष्ण के साथ की कई गाये इस जल को पीते ही निर्जीव होकर गिर पड़ी थी। यह देखकर दूसरे लड़के तो डर के मारे भाग गए, पर कृष्ण वही खड़े रहे और शान्ति से कुण्ड के भीतर तैरते हुए नाग पर दृष्टि जमाए कुछ देर विचार करते रहे। फिर एकाएक धोती का कछौटा मारकर, हाथ में एक रस्सी लिये, पास ही के एक वृक्ष की डाल पर वह चढ़ गए और पानी मे कूद पड़े। किनारे पर खड़े उनके सभी साथियों के मुँह से भय और विस्मय की चीख निकल पड़ी। यह समाचार नन्द और यशोदा तक पहुँचाने श्रीदाम और उद्धव वृन्दावन की ओर बेतहाशा भागे।

कुण्ड के पानी मे घास और काई बहुत थी, इसलिए कृष्ण को उस जगह तैरकर पहुँचने में कुछ विलम्ब हुआ और कठिनाई का सामना भी करना पड़ा, जहाँ कालिय नाग दिखाई पड़ा था। फिर भी उन्हे अपनी शक्ति तथा बुद्धि मे अचल श्रद्धा थी और वह स्वस्थ एवं प्रशान्त थे।

अपने प्रदेश मे किसी को अनधिकार प्रवेश करते देखकर कालिय अत्यन्त रोष से भर गया था और उसने अपने फन फैलाकर कृष्ण की ओर क्रुद्ध दृष्टि से देखा। पर, ज्यों ही वह उनकी ओर मुड़ा कि कृष्ण ने

फन्दा डालकर अपने हाथ की रस्सी कालिय पर फेंकी, और उसकी गर्दन फन्दे में फँस गई। नाग इस बन्धन में से छूटने का प्रबल प्रयत्न करने लगा, पर ज्यों-ज्यों वह अधिक उछल-पटक करता, त्यों-त्यों फन्दे की पकड़ और मज़बूत होती जाती। कालिय बुरी तरह छटपटा रहा था, शरीर को मोड रहा था, तथा अपनी विशाल पूँछ फटकार रहा था। परन्तु उसके सब प्रयास विफल रहे। कृष्ण ने रस्सी का दूसरा सिरा अपनी कमर से बाँध लिया और पूरा ज़ोर लगाकर वह जल्दी-जल्दी तैरते हुए किनारे की ओर बढ़ने लगे। नाग ने भी उन्हे अपनी ओर खीच लेने में पूरी ताकत लगा दी। यह सघर्ष देर तक चलता रहा। अन्त में नाग थक गया। भयभीत सर्प को घसीटते-घसीटते कृष्ण किनारे पर ले आए। नम्रता से शरणागत हुई नाग-पत्नियाँ पीछे-पीछे आ रही थी।

इस ज़हरीले कुण्ड मे कूदकर कृष्ण ने एक प्रकार से आत्महत्या ही को आमन्त्रित किया था। राधा को जब इसकी खबर लगी, तो वह भयभीत हरिणी की तरह सबसे आगे दौड़ती हुई वहाँ आ पहुँची। नाग को पूँछ फटकारते और अपने प्रिय कान्ह को डूबते-तैरते देखकर वह बेसुध हो गई। ललिता, विशाखा तथा अन्य गोपियों ने वहाँ पहुँचकर उसे सँभाला। इतने मे कृष्ण जल से बाहर चले आए। राधा दौड़कर उनके पास पहुँची और उनके चरणो में मस्तक रखकर सिसकियाँ भरती हुई, दयार्द्र स्वर मे कहने लगी, 'कान्ह, यह तूने क्या किया ? क्या किया तूने कान्ह ?' वह फिर बेहोश हो गई।

अपनी पत्नियों सहित वहाँ आए कुलीन गोपालों तथा बाबा नन्द और मैया यशोदा को भी, यह दृश्य देखकर आघात पहुँचा। बीस वर्ष की इस कुँआरी छोरी के स्वच्छन्द वर्तन से सभी को कष्ट होता था; पर आज तो हद ही हो गई ! उसके स्वेच्छाचार से सबसे अधिक दुःख उसकी ज्येष्ठ सौतेली माँ कपिला को होता था। इसके लिए वह अपने पति वृषभानु को सदा दोष देती कि उन्होंने ही लाड़-प्यार से उसे बिगाड़ रखा है। राधा का विवाह शीघ्र कर देने के लिए वह आग्रह करती। उसका कहना था कि लड़कों के साथ नाचना-कूदना-हँसना, और नन्द के

छोरे के पीछे दीवानी होकर घूमना किसी भली लड़की का काम नही है। फिर कंस अपनी सेना सहित अब मथुरा लौट आया था और अय्यन कुछ ही दिनो में अपने गाँव वापस आनेवाला था। इसलिए परिस्थिति और भी गम्भीर हो गई थी।

अर्द्धचेतन अवस्था में राधा को जब उसके भाई घर ले आए तो कपिला अपने क्रोध पर नियन्त्रण न रख सकी। राधा के पास जाकर उसने उसे जोर से एक तमाचा मारा। परन्तु राधा को तो जैसे कुछ होश ही नही था, वह जड़वत् उसकी ओर देखती रही और थोड़ी देर बाद मूर्छित हो फिर जमीन पर गिर गई। वृषभानु भी उस पर बेहद नाराज थे। उन्होंने निश्चय किया कि राधा को अब कठोर नियन्त्रण मे रखना होगा। थोड़े ही दिनों में अय्यन आ जाएगा और उत्तरायण होने पर जब देवो का निशाकाल व्यतीत हो जाएगा तब उसका विवाह भी कर देना होगा। राधा की उम्र भी अब कुछ कम नही थी। कृष्ण भी अब लगभग पन्द्रह का तो हो ही गया होगा। नन्द बाबा अपने लाडले को उसके जैसे गरीब आदमी की लड़की के साथ घूमता-फिरता देखेंगे तो ज़रूर गुस्सा होंगे। ना, अब राधा बाहर नहीं जा सकती; उसे घर मे ही बन्द रखना होगा! जब कपिला और वृषभानु दोनों अपना गुस्सा निकाल चुके तब राधा ने सिसकते-सिसकते, अपने घुटनों में मुँह छिपाकर कहा, 'नही! नही! ऐसा नही हो सकता!"

'नही, नही, क्या? तुझे अब घर मे ही बन्द रखना होगा और खाना भी नही दिया जाएगा तुझे! समझी! मेरे कुल का नाम डुबाने चली है?कुलांगार कहीं की!' वृषभानु लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ चला गया।

कुछ देर तो राधा हताश हो चुपचाप आँसू बहाती पड़ी रही; फिर जब कुछ मन का भार हल्का हुआ तो कान्ह की स्मृति फिर से उसके मन में उभर आई। उसकी आँखों के आगे अतीत के चित्र तैरने लगे। वृक्षयुग्म को गिराकर ऊखल से बँधे नन्हे कान्ह को उसने घुटनो के बल आगे खिसकते हुए पहले-पहल देखा था; फिर अपने वचन का पालन करते हुए वह वृन्दावन आ पहुँचा; दोनों किस प्रकार साथ-साथ खेलते, कूदते, नृत्य और गान करते तथा गोल-गोल चक्कर काटते हुए एक-दूसरे पर

गिर पडते थे; कृष्ण के होठो पर एक अर्थसूचक और मधुर मुस्कान केवल उसीको देखकर थिरक उठती थी; वह भी जब कभी उसकी याद करती तो हृदय एक अज्ञात आनन्द और मधुर स्वरो की गूँज से भर उठता—उसे मानो नशा-सा हो जाता ! और अब ? अब अय्यन आनेवाला था। उसे तो उसने देखा भी नही था। उसका नाम भी कुछ विचित्र लगता था। और वह आकर उसे अपनी पत्नी बनाकर ले जाएगा ! नही, नही, कदापि नही !

*कान्ह तो गोपो के सरदार का पुत्र है। समय आने पर वह भी शूरों का सरदार होगा। कटु सत्य यही है कि उसके साथ उसका विवाह नही हो सकता। उसके पिता एक साधारण ग्वाले मात्र है और वह स्वयं कृष्ण से उम्र मे बड़ी है। यशोदा मैया उस पर यही जानकर स्नेह रखती है कि कान्ह को इसके साथ खेलना भाता है; पर पुत्रवधू के रूप मे वह उसे कभी स्वीकार नही करेगी। अन्ततः कृष्ण से बिछुड़ना ही पड़ेगा उसे। पर यह कैसे हो सकता है ? उसके बिना वह जियेगी कैसे ? जीवन मे आनन्द ही क्या रह जाएगा फिर ? नही, नहीं, यह नही हो सकता।

उस रात वह सो नही सकी। दूसरे दिन भी उसे घर ही मे रहना पड़ा। उसकी सौतेली माँ ने उसे कुछ खाने को दिया। सारा दिन वह अपने प्रिय कान्ह के विचारों में ही निमग्न रही। उसने निश्चय किया कि वह किसी भी प्रकार उससे विलग नही रह सकती। फिर यह विचार उसके मन में बिजली की तरह कौंध गया और उससे उसे असह्य पीड़ा हुई कि आज पूर्णिमा की रात है। कान्ह अपने मित्रों सहित नदी के रेतीले तट पर आयेगा। अन्य गोप-बालाएँ भी वहाँ जायेंगी। सब मिल-कर गीत गायेंगे और रास रचायेंगे। और वह स्वयं, कान्ह की प्रिय सखी, वहाँ नही जा पाएगी ! उसे तो उस कोठरी में ही बन्द रहना होगा।

खिड़की की दरार मे से राधा ने नीचे की ओर देखा। पृथ्वी पर पूर्णिमा का उज्ज्वल प्रकाश फैल रहा था। सारा गाँव और आस-पास का वन्य प्रदेश रुपहली चाँदनी मे स्नान कर रहा था। पर यह सब सौन्दर्य, इतनी शोभा उसके किस काम की ? आज की रात तो वह अपने कान्ह से नही मिल पाएगी। हाय रे भाग्य !

मारा गाँव शान्त था। यमुना के बहते हुए जल की कर्णप्रिय ध्वनि उसे स्पष्ट सुनाई पड़ रही थी। उसके कानो के लिए कभी वह मधुर संगीत था, पर आज तो वही ध्वनि उसके हृदय मे व्यथा भर रही थी। अचानक, रात्रि की प्रगाढ निस्तब्धता को चीरती हुई बॉसुरी की मधुर ध्वनि हवा मे तैरती हुई सुनाई पडी और उसकी नसो मे खून तेजी से दौड़ने लगा। वह उद्वेलित हो उठी। उसके हृदय पर मानो हथौड़े पड़ रहे हों, इस प्रकार की आवाज उसके कानो में सुनाई पड़ी। उसकी आवाज़! नदी के तीर पर खडा हो प्रति पूर्णिमा को वह सभी मित्रों को आमन्त्रित करता था, पर सबसे अधिक उसीको। वह उसकी सबसे प्रिय सखी थी, और वह उनका प्राण, पति, प्रभु—सर्वस्व था। पर, आज तो उन दोनो को विलग ही रहना पड़ेगा।

दूर से आती हुई वह स्वरलहरी उसके हृदय मे एक टीस पैदा कर रही थी। क्या ही अच्छा हो यदि वह पंख लगाकर उड़ सके! खिडकी से कूदकर जाने का उसने विचार किया, परन्तु उसके पिता ने उसे बन्दी रखने का पूरा इन्तज़ाम कर रखा था। बगल के ही खण्ड में उसकी विमाता सोई थी और पास ही दूसरे कक्ष मे उसके भाई सो रहे थे। राधा का मन दीवारों से अपना सिर फोड लेने को हुआ। 'हे कान्ह! अब किस विधि तेरे पास पहुँचूं? न गये भी गति नही! तुझसे मिले बिना मैं जीवित ही कैसे रहूँगी?' राधा ने विलाप किया। उसका कण्ठ भर आया था और प्राण घायल पछी की तरह कृष्ण-दर्शन के लिए छट-पटा रहे थे।

बाँसुरी की ध्वनि एकाएक-रुक गई। ऐसा क्यो? क्या वह उसकी राह देख रहा है? रास शुरू हो गया क्या? वह तो सदा यही कहता था कि राधा रास का प्राण है। कान्ह, प्रिय कान्ह क्या उसे छोड़कर रास मे भाग लेगा? उसे लगा कि वह बहुत थक गई है। उसकी आँख लग गई। पता नही वह कब तक सोई रही। अचानक किसी के गर्म श्वास का स्पर्श उसे हुआ और वह जाग पड़ी। चौककर वह बैठ गई। ऐसा मालूम हुआ मानो कोई कमरे मे आया है। 'राधा, चुपचाप कपड़े पहनकर तैयार हो जा!' परिचित और प्रिय कण्ठ-स्वर उसे सुनाई पड़ा। तो क्या वही

है ? कहीं स्वप्न तो नहीं देख रही है वह ? नजर उठाकर देखा तो कोई छपरे पर से लटक रहा था ।

'ले, खड़ी हो जा ! चुपचाप कपडे पहनकर जल्दी से तैयारी कर। हम सब तेरी ही राह तक रहे हैं।' कान्ह ने कहा। राधा का हृदय बाँसों उछलने लगा। उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा; आनन्द से वह सरा-बोर हो गई और तन-मन मे एक अद्भुत स्फूर्ति, एक नशा-सा छा गया। अँधेरे मे ही उसने रास के कपड़े खूंटी पर से उतारकर पहन लिये।

'मैं तुझे अपने कन्धों पर बिठाता हूँ, फिर श्रीदाम तुझे ऊपर खीच लेगा।' छपरे पर से लटकते श्रीदाम की ओर इशारा कर कृष्ण ने कहा, 'छपरे पर बलराम श्रीदाम का हाथ थामे खड़े है। वह हम सबको ऊपर खीच लेंगे।'

एक शब्द भी बोले बिना राधा कृष्ण के कन्धो पर चढ़ गई।

'बीच में ही घबडाकर, तू नीचे तो नहीं गिर पड़ेगी न, राधा ?' कृष्ण ने अत्यन्त धीमी आवाज में कहा।

'तूँ मेरे साथ है तब काहे का भय ?' राधा ने उत्तर दिया। श्रीदाम ने उसे धीरे से ऊपर खीच लिया।

जब राधा छपरे पर पहुँच गई तो कृष्ण ने श्रीदाम के पैर पकड़ लिए और बलराम ने उन दोनों को ऊपर खींच लिया।

थोड़ी ही देर में चारो व्यक्ति छपरे पर थे। चोरों की तरह आहिस्ता-आहिस्ता कदम रखते हुए वे किनारे तक आ पहुँचे। सबसे पहले बलराम ज़मीन पर कूदे, उनके कन्धों का सहारा लेकर श्रीदाम नीचे आया और फिर राधा को साथ लेकर श्रीकृष्ण श्रीदाम के कन्धों पर उतरे। फिर सभी ज़मीन पर कूद पड़े और तेजी से नदी के तट की ओर बढ़े।

वहाँ पर प्रतीक्षारत गोप-गोपिकाओ ने उन्हे देखकर हर्षनाद किया। फिर, राधा को अपनी बगल में खड़ाकर कृष्ण ने बाँसुरी बजाना शुरू किया। तुरन्त ही बंसी की मीठी ध्वनि पर मदहोश हुए सभी गोप और गोपिकाएँ हाथ से ताल देते तथा पैरों के घुँघरू झनझनाते हुए थिरकने लगे। रास आरम्भ हो चुका था।

दूसरे दिन सबेरे कपिला ने यह देखने के लिए कि राधा क्या कर

रही है, किवाड खोले। राधा प्रगाढ निद्रा में लीन थी और उसके अधरो पर एक मधुर मुस्कान थिरक रही थी।

२३
राधा की मँगनी

'कृष्ण, अब तो कुछ करना ही पड़ेगा भाई ! राधा को उसके माता-पिता बहुत तंग कर रहे हैं।' बलराम ने रोषपूर्वक कृष्ण से कहा, 'उसका पिता बड़ा दुष्ट है, मैं अभी जाकर उसको मजा चखाता हूँ।'

'नही, नही ! ऐसा कुछ मत कर बैठना।' कृष्ण ने उत्तर दिया, 'तूँ यह भार मुझ पर छोड़ दे। मै सब देख लूँगा।' बात इतनी बढ़ चुकी थी कि अब मौन रहना सम्भव नही था।

यशोदा के पास जाकर कृष्ण ने थोड़ा-सा मुस्कराकर कहा, 'मैया, मेरा एक काम नही करोगी ? राधा की माँ को एक सन्देश भिजवा दो न ज़रा !'

'कौनसा सन्देश ?' यशोदा ने आश्चर्य से पूछा।

'राधा की मँगनी का,' कृष्ण ने शान्ति से कहा।

'राधा की मँगनी ? उसका सम्बन्ध तो अय्यन के साथ तय हो चुका है, और अब अय्यन युद्ध से लौट भी आया है।'

'उसका विवाह अय्यन के साथ हो, यह मुझे ज़रा भी पसन्द नहीं।' कृष्ण ने कहा।

यशोदा यह सोचकर कि यह भी शायद कृष्ण की कोई खिलवाड़ है, हँस पड़ीं। 'तो तूँने किसको पसन्द किया हैं उसके लिए ?'

'स्वयं अपने को ।'

'क्या ?' यशोदा कृष्ण का उत्तर सुनकर स्तब्ध रह गई । 'राधा के साथ तेरा विवाह हो ही कैसे सकता है !' उन्होंने कहा ।

'क्यो नही हो सकता ? मैं उससे विवाह करना जो चाहता हूँ,' दृढ निश्चय के साथ कृष्ण ने मुस्कराते हुए कहा ।

'मेरा लड़का वृषभान की छोरी से ब्याहे, यह तो कभी हो ही नही सकता ! और फिर तुझसे अवस्था मे भी तो वह बड़ी है !' यशोदा ने कहा ।

'तो क्या हुआ ? बहुत-से लोग अपनी अवस्था से बड़ी लड़कियों से शादी करते है,' कृष्ण ने कहा ।

'पर मैं अपने लड़के को ऐसा नही करने दूँगी । मैं तुझसे भी बड़ी, कोई बहू घर में नही लाऊँगी ।'

'लेकिन राधा तो तुझे अपनी माँ-जैसी ही समझती है ।'

'नादानी न कर ! मैं जानती हूँ कि तेरा स्वभाव कैसा ज़िद्दी है । पर, आज तक जो तेरी हर बात मैं मानती आई हूँ, इसका मतलब यह नही कि तेरी यह जिद भी मान लूँगी । राधा हल्के कुल की है जबकि तेरा घराना सरदारों का है । तेरे लिए तो किसी सरदार की ही लड़की हम लाएँगे । राधा से तेरा ब्याह नहीं हो सकता !' किंचित् रोषपूर्वक यशोदा ने कहा ।

'ऐसी सुन्दर बहू तुझे नही चाहिए माँ ?' यशोदा को चिढ़ाते हुए कृष्ण ने कहा ।

'सुन्दर बहू ! उँह ! बिलकुल बेशरम छोकरी है वह ! सारा गाँव उसकी बातें करता है ! ऐसी सुन्दर बहू गँवाने का ज़रा भी रंज नहीं होगा मुझे ।'

'तो फिर कहीं तुझे अपना लड़का न गँवाना पड़े,' कृष्ण ने कुछ विचित्र ढंग से कहा, परन्तु उसकी आवाज़ में धमकी का स्वर बहुत हल्का था ।

यशोदा असमंजस में पड़ गई । कृष्ण की ओर वह कुछ देर तो इस प्रकार देखती रहीं मानो उनकी समझ में कुछ नही आ रहा है, फिर चिढ़-

कर बोली, 'जा, यह बात अपने बापू से कह ! मैं तो तुझसे तंग आ गई। बडा ढीठ छोरा है, भई !'

'ऐसा क्यो कहती हो मैया ! तुम ही अगर मुझसे तंग आ गई तो कैसे काम चलेगा भला ? और फिर मेरी जो बहू आयेगी उससे भी तग मत होना। देखना, वृषभानु की पुत्री कैसे रात-दिन तेरे पैर पूजती है !'

'थोड़ी शरम कर !' यशोदा ने हँसते-हँसते कहा। वह जानती थी कि देर तक कृष्ण से चिढे रहना सम्भव नही, इसीलिए बोली, 'जा, अब अपने बापू के पास जा !'

कृष्ण ने पिता के पास जाकर सारी बात कही।' नन्द को लगा कि कृष्ण ठट्ठा कर रहा है, इसलिए वह खूब ज़ोर से हँस पड़े।

'बेटे, तुम लड़कियो के साथ इतना अधिक घूमते हो कि अब तुम्हे उनमे से किसी के साथ ब्याह रचाने का मन हुआ है।'

'तो आप राधा की मँगनी का सन्देश भेजेंगे न ?' कृष्ण ने पूछा।

'नहीं बेटा, नही। उस हल्के कुल की लड़की के साथ तेरा ब्याह कैसे हो सकता है ? तेरे लिए तो किसी राजकुमारी को ही लाना होगा।' हँसते-हँसते नन्द ने कहा।

'वृषभान की लड़की से अधिक सुन्दर क्या कोई राजकुमारी होगी ?'

'तूंने कितनी राजकुमारियों को देखा है ?'

'ये सब नन्ही-नन्ही गोपियाँ राजकुमारियाँ नही तो क्या है ? राज-कुमारियों से भी अधिक सुन्दर है ये !'

'तुझे क्या पता ?'

'हम सब गोपाल हैं, तो हमें किसी ग्वाले की कन्या क्यों नही स्वीकार करनी चाहिए ?'

'फिर, अय्यन का क्या होगा ? उसका विवाह किससे होगा ?' बात को दूसरी ओर मोड़ने की चेष्टा नन्द ने की।

'वह व्रज तथा मथुरा में जितनी लड़कियाँ हैं उनमे से चाहे जिससे ब्याह करे, मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी। बापू, क्या आप मेरी इतनी-सी बात नहीं मानेंगे ? माँ से राधा की मँगनी भेजने को कहिये न !'

'नही, यह नहीं हो सकता,' गम्भीर होकर नन्द ने कहा।

'क्यो नही बापू ?'

'तूँ बड़ा चतुर है। तेरी चतुराई को मैं नहीं पा सकता। और, यह भी तूँ जानता है कि तुझे किसी बात के लिए ना कहने का मेरा मन नही होता। पर, यह मैं नही देख सकता कि तूँ राधा या किसी और गोपी के साथ ब्याह करे। गर्गाचार्य आएँ तब उनसे ही पूछ लेना।'

'और उन्होने यदि हमारे ब्याह के लिए अनुमति दे दी तो ?'

'वह कभी हाँ कहेंगे ही नही।'

'समझो कि उन्होने हाँ कर दी, तो ?'

'तो मै विरोध नही करूँगा। पर, यह मैं खूब जानता हूँ कि उन्हे यह रिश्ता कभी मजूर नही हो सकता।'

'संवत्सरी के लिए आचार्य कल यहाँ वृन्दावन मे आएँगे, तब मैं उनसे पूछ लूँगा।'

सवत्सरी की विधि सम्पन्न कराने दूसरे दिन गर्गाचार्य अपने दो शिष्यो सहित आ पहुँचे। उनके साथ आचार्य सादीपनि भी अपने दो पुत्रो और दो शिष्यों के साथ पधारे थे। ऊँचे कद तथा माँसल देहवाले सान्दीपनि मध्यम वय के थे। उनकी आँखों में अपूर्व तेज था। लम्बी, श्याम दाढी उनके मुखश्री की शोभा बढ़ा रही थी। बाबा नन्द ने अपने सभी कुटुम्बीजनों सहित विधिपूर्वक अतिथियों का स्वागत किया। फिर वह उन्हें नदी पर स्नान कराने ले गये। स्नानान्तर सर्वविधि सम्पन्न की गई तथा संवत्सर के निमित्त भोजन समारम्भ हुआ जो रात तक चलता रहा।

इसके दूसरे दिन जब नन्दबाबा, गर्ग तथा सान्दीपनि के पास बैठे थे तब उन्होंने कृष्ण को बुला भेजा। कृष्ण ने साष्टांग प्रणाम कर उनकी चरण-रज ली।

'कृष्ण, आचार्य सान्दीपनि अपने साथ यहाँ रहेगे। तुम्हें यह लिखना-पढ़ना सिखायेगे।'

'जैसी आज्ञा, पिताजी !' कृष्ण ने हाथ जोड़कर कहा।

'आचार्य शस्त्रविद्या में भी पारंगत हैं। तुम्हें सीखनी है शस्त्रविद्या ?'

'मुझे क्या आवश्यकता है शस्त्रविद्या की ? मुझे युद्ध मे थोड़े ही जाना है ?'

'यह कौन कह सकता है ?' गर्गाचार्य की ओर आँख से इशारा करते हुए नन्दबाबा ने कहा, 'हो सकता है, किसी दिन तूँ राजा भी बने ।'

'पिताजी, मुझे तो आपके साथ, मैया के साथ और अपनी गाय-बछड़ों के साथ ही रहना पसन्द है । वृन्दावन की इस शोभा और शान्ति को छोड़कर भला और कही जाने का मेरा मन क्यों होगा ?'

'नन्दपुत्र, मुनिश्रेष्ठ की इच्छा है कि तुम जहाँ भी जाओ वहाँ सौन्दर्य और शान्ति की वर्षा करो ।'

'ये मुनिश्रेष्ठ कौन है ?'

'नही जानते ? भगवान् वेदव्यास का नाम नहीं सुना तुमने ?' सान्दीपनि ने पूछा ।

'भगवान् गर्गाचार्य से मैने उनके विषय में काफी सुना है । एक बार कुरुक्षेत्र जाकर उनके दर्शन करने की कामना भी मै करता हूँ ।'

'अब जो बात तुझे आचार्य से करनी है वह कर ले,' नन्द ने कहा, 'ये बैठे है गर्गाचार्य ! तुम दोनों मिलकर फ़ैसला कर लो । मुझे तो तुम्हारी विचित्र बात मे पड़ना नहीं है ।' नन्द को कृष्ण की कोई बात अस्वीकार करना अच्छा नही लगता था ।

'क्या बात है कृष्ण ?' गर्गाचार्य ने प्रश्न किया ।

'इसे वृषभानु की पुत्री राधा के साथ विवाह करना है । आप तो वृषभानु को अच्छी तरह जानते है । उसका कुल हल्का है, लड़की भी कृष्ण से पाँच साल बड़ी है और कंस के सैनिक अय्यन के साथ उसकी सगाई भी हो चुकी है । आचार्य, आप तो जानते ही है कि कृष्ण के साथ राधा का विवाह नही हो सकता ।'

'क्यों नहीं हो सकता, गुरुवर ?'

'क्योंकि यह असम्भव है ।'

'पिताजी भी ऐसा ही कहते हैं । मुझे क्षमा करें, परन्तु बात कुछ ऐसी है कि मैं उससे ब्याह करना चाहता हूँ और वह भी मुझसे ब्याह करना चाहती है ।'

'वत्स, विवाह एक अत्यन्त गम्भीर वस्तु है । इसमें केवल इच्छा को ही नही देखा जाता । केवल इच्छा के अनुसार ही विवाह करना तो पापा-

चार कहा जाएगा,' गर्गाचार्य ने कहा, 'धर्म के नियमो से जो अनभिज्ञ है वे ही ऐसी बात करेंगे। विवाह के विषय मे तो रूप और स्वभाव, वय तथा कुल, संस्कार एव भविष्य, इन सभी बातों का विचार करना पड़ता है। विवाह एक पवित्र संस्कार है, इससे स्त्री-पुरुप एक होकर धर्माचरण करने को बद्ध होते है।'

'कई लोग तो धर्म का विचार किए बिना ही विवाह कर लेते है। पर, वृषभानु की पुत्री के साथ मेरे विवाह करने मे अधर्म कहाँ हुआ ? हम गोप लोगो में तो ऐसा होता ही है,' कृष्ण ने कहा।

गर्गाचार्य ने एक अर्थसूचक दृष्टि नन्द पर डालकर, दृढतापूर्वक, शान्ति से कहा, 'कृष्ण, सर्वश्रेष्ठ धर्म ही तेरा धर्म है। इसके सिवा तेरा और कोई धर्म नही।'

कृष्ण आश्चर्य से वृद्ध आचार्य की ओर देखता रहा।

'वत्स, तेरे जन्मकाल से ही मैं तेरी सँभाल रखता आया हूँ। तेरा जन्म धर्म की रक्षा करने के लिए हुआ है—मुनिश्रेष्ठ का यही वचन है।' गर्गाचार्य ने कहा और सम्मति के लिए सान्दीपनि की ओर देखकर फिर बोले, 'देवों का विधान भी यही है।'

सान्दीपनि ने सहमति में सिर हिलाते हुए कहा, 'इसीलिए तो मैं यहाँ आया हूँ।'

कृष्ण गम्भीरतापूर्वक सान्दीपनि की ओर देखता रहा। 'तो मुझे आप क्या करने को कहते हैं ?' उसने पूछा। उसे यह आशा नहीं थी कि ऐसे महात्मा उसके भविष्य के प्रति इतनी चिन्ता रखते है।

'हमारी यही इच्छा है कि जिस महान् कार्य के लिए तुम्हारा जन्म हुआ है, उसके लिए तुम प्रस्तुत हो जाओ।'

कृष्ण ने पिता की ओर देखा तो उन्हे फिर आचार्य की ओर आँख से इशारा करते पाया।

'वत्स, सुनो! कंस युद्ध से लौट आया है और अब उसकी मति पहले से भी अधिक निकृष्ट हो गई है। तुमने जो अद्भुत पराक्रम कर दिखाए हैं, उनकी खबर देर-सबेर उसे लगेगी ही। हम लोग तुम्हें अपना उद्धारक समझते हैं,' गर्गाचार्य ने बहुत आहिस्ता से, मानो कान में कुछ

कह रहे हों इस प्रकार कहा, 'और सुनो ! तुम नन्द के पुत्र नहीं हो वल्कि राजा वसुदेव तथा देवक की पुत्री रानी देवकी के पुत्र हो । हमने तुम्हे नन्द के यहाँ इतने दिनों से इसलिए छिपा रखा है कि निश्चित घड़ी आने तक, तुम यहीं रहकर सत्य और विवेक को समझो । कंस की मृत्यु तुम्हारे हाथ लिखी है, ऐसी भविष्यवाणी महर्षि नारद ने की थी । भगवान् वेदव्यास का वचन भी यही है । इसी आशा पर हम टिके है । तुम्हारे लिए अब जो नवीन जीवन-पथ निर्मित हुआ है, उसके लिए तुम्हे आचार्य सांदीपनि प्रस्तुत करेंगे ।'

कुछ देर तक कृष्ण द्वार से आ रही सूर्य-किरणो की ओर देखता रहा । गर्गाचार्य ने जिस रहस्य को प्रकट किया था उसका मर्म समझने की चेष्टा वह कर रहा था । फिर जैसे अन्तर की बात कह रहा हो, इस प्रकार बोला, 'भगवन्, मेरी प्रार्थना है कि अब तक जिस प्रकार मैं यहाँ रहता आया हूँ उसी प्रकार मुझे रहने दे । मै तो मात्र एक ग्वाले का पुत्र हूँ । मुझे मेरे माता-पिता अत्यन्त प्रिय हैं । अपनी गाये और यह व्रजभूमि, जहाँ मैं विचरण करता रहा हूँ, मेरे लिए बहुत प्रिय है । गोवर्धन पर्वत की तो मैं पूजा ही करता हूँ, और उद्धारक के रूप में यहाँ से चले जाने का जब तक समय न आए तब तक इसी तरह जीना चाहता हूँ ।'

'और बेटे, जब तुम यहाँ से दूर चले जाओगे, तब भी मेरे प्रति क्या यही भाव रखोगे ?' नन्द ने पूछा ।

'अवश्य पिताजी ! चाहे कुछ भी हो, आपको मै कभी नही भूल सकता । आपके जैसे पिता कितनों को नसीब होते है ? आपके चरणो के समक्ष तो मैं सदा-सर्वदा आपका पुत्र बनकर ही रहूँगा ।'

'थोड़े ही समय में शायद तुम्हे मथुरा जाना पड़े,' गर्गाचार्य ने कहा, 'कस के बन्धन से हम सबको तुम्हें ही मुक्त करना है । पिछले पच्चीस वर्षों से यादवगण इसी मुक्ति की प्रतीक्षा कर रहे हैं ।'

गर्गाचार्य ने पिछले पच्चीस वर्षों का वर्णन कृष्ण को कह सुनाया । कृष्ण एकचित्त हो उसे सुन रहा था । उसकी आँखों में एक अपूर्व तेज चमक उठा ।

'पूज्य वसुदेव और माता देवकी से कहिएगा कि मैं उन्हे अथवा भगवान् आचार्य को निराश नहीं करूँगा,' कृष्ण ने कहा। फिर सांदीपनि की ओर देखकर बोले, 'मुझे सदा आपके आशीर्वाद की आवश्यकता पडेगी। परन्तु मै यहाँ रहूँ तब तक वृन्दावन के लोगो को यह नही मालूम होना चाहिए कि मै उनसे अलग हूँ। यदि वे यह बात जान गए तो उन्हे और मुझे भी हार्दिक कष्ट होगा।'

सादीपनि ने मुस्कराकर अपनी सहमति प्रकट की।

'बेटा, अब तो तू जान गया न, कि वृषभानु की पुत्री के साथ तेरा ब्याह क्यो नही हो सकता,' नन्द ने कहा।

कृष्ण विचारमग्न हो गया। फिर जैसे मन का समाधान हो गया हो, इस प्रकार गर्गाचार्य की ओर देखकर बोला, 'भगवन्, आपकी यही इच्छा है न, कि अधर्म का नाश कर मैं यादवो का उद्धार करूँ ?'

'हाँ, वत्स !'

'तो क्या मै अभी से इस कार्य का प्रारम्भ धर्म को त्यागकर करूँ ?'

'ऐसा तो हममें से कोई भी नही कहता।'

'आप ऐसा ही कुछ कह रहे हैं,' कृष्ण ने मुस्कराकर कहा, 'आज से आठ वर्ष पूर्व ऊखल से बँधा जब मैं वन में असहाय पड़ा था और वृषभानु की पुत्री मेरे पास आई, तब से लेकर आज तक एक क्षण भी ऐसा नहीं बीता जब उसने मेरी प्रतीक्षा न की हो, मन मे मेरा विचार न किया हो। ये आठ वर्ष उसने सम्पूर्णतः मेरी बनकर ही बिताए हैं। वह मुस्कराई है तो मेरे लिए, जी है तो मेरे लिए। मुझे सुनाने के लिए ही उसने गीत गाए है। उसे मात्र मेरी बात कहने मे ही आनन्द आता है। मेरी बाँसुरी के स्वर सुनकर वह रस-समाधि में डूब जाती है।'

'क्या तुम्हारी इन बातों में अतिशयोक्ति नहीं है ?' गर्गाचार्य ने पूछा।

'नही, जरा भी नही,' कृष्ण ने उत्तर दिया, 'कालिय के साथ जब मैं सघर्ष कर रहा था तब अन्य लोग तो आर्तनाद करते रहे, पर वह मृतप्राय हो गई। यदि कही मेरी मृत्यु हो जाती तो दूसरे लोगो का हृदय अवश्य विदीर्ण होता, परन्तु उसका तो जीवित रहना ही असम्भव हो जाता।'

कृष्ण के इन हृदयोद्‌गारों को सुनकर दोनो आचार्य उसके वाक्प्रभाव से स्तब्ध रह गए। कृष्ण ने फिर कहा, 'और आप यह चाहते है कि मैं उस वृषभानु-कुमारी का त्याग कर, जिसने मुझे अपना सर्वस्व दान किया है, उसकी हत्या कर, धर्म का संरक्षक बनूँ ? यदि मै उसका त्याग करूँगा तो वह नि सन्देह प्राण-त्याग कर देगी।'

गर्गाचार्य एकटक उसकी ओर देख रहे थे। नन्द की आँखो मे स्नेहाश्रु छलक आए।

सांदीपनि ने कहा, 'वसुदेवपुत्र, सुनो ! यहाँ से जाकर जब तुम सत्ता, शक्ति तथा वैभव के शिखर पर आसीन होगे, तब भी क्या यह ग्रामबाला तुम्हें याद रहेगी ? उस समय भी क्या वह तुम्हें इतनी ही प्रिय लगेगी ? अपने अन्त करण को टटोलकर पूछो।'

'पूज्य आचार्य, मेरे अन्तःकरण टटोलने की आवश्यकता नहीं,' क्षण-भर भी रुके बिना कृष्ण ने कहा, 'मै तो केवल उन्ही के लिए जीता हूँ जो मेरे प्रति प्रेम रखते है—अपने माता-पिता, गोप-गोपियों, गायो तथा वृषभों के लिए, और सबसे अधिक वृषभानु-कुमारी के लिए। हम दोनों के जीवन एकाकार हो गए है। मैं जहाँ भी कही रहूँ उसके प्रति मेरे प्रेम मे जरा भी अन्तर नही आ सकता। उसके बिना मेरी बाँसुरी मौन हो जाती है। वह मेरा आनन्द, मेरी प्रेरणामूर्ति है, और सदा रहेगी।'

इस अद्‌भुत वाक्प्रभाव से गर्गाचार्य आश्चर्यचकित रह गए। उन्हे लगा कि धर्म के रक्षक के रूप में इस बालक को तैयार करने की योजना बनाना कितना विचित्र है। मुनि ने जो चेतावनी उन्हें दी थी, वह उन्हे स्मरण हो आई।

'वसुदेवनन्दन, हमें इस बात पर ज़रा विचार कर लेने दे। तेरे लिए ही पन्द्रह वर्ष से जीवन धारण करनेवाले वसुदेव-देवकी को भी पूछना होगा।'

'पूज्य आचार्य, कृपा करके ऐसा न करे !' हाथ जोड़कर कृष्ण ने कहा, 'ये बैठे मेरे पिता ! भीतर के खड में मेरी माता दही बिलो रही है। मुझे तो गुरुदेव, इनका और आपका आशीर्वाद ही चाहिए। मैं तो मात्र ग्वाले का पुत्र हूँ, इससे अधिक कुछ नहीं।'

'परन्तु वे लोग क्या कहेगे ?'

'उनसे जाकर कहिएगा, यदि आप चाहते है कि आपका पुत्र जगत् मे धर्म का सरक्षक बने, तो उसे उस धर्म का भी पालन करने दे जो उसके समक्ष इस समय उपस्थित है, अन्यथा वह सरक्षण-भार नही उठा पाएगा। इस समय तो एक ऐसी निराधार गोपकन्या को स्वीकार करने का धर्म ही उसके सम्मुख है, जिसने अपना सर्वस्व उसे अर्पण कर दिया है।'

सभी मौन थे। कृष्ण ने नन्द को साष्टाग प्रणाम करके नम्रतापूर्वक कहा, 'पिताजी मुझे आशीर्वाद दे। वृषभानु की पुत्री के साथ मुझे विवाह करने की अनुमति दे।'

वृद्ध नन्दबाबा अपनी अवस्था और पद को भूलकर, नन्हे बालक की तरह सिसकियाँ भरते हुए, कृष्ण से लिपट गए।

२४

अय्यन का आगमन

वृन्दावन में इन्द्रोत्सव की तैयारियाँ चल रही थी। यह उत्सव प्रतिवर्ष वर्षा के अधिष्ठाता देव इन्द्र की पूजा के निमित्त मनाया जाता था। इसके लिए गर्गाचार्य अपने तीस शिष्य तथा अन्य विद्वान ब्राह्मणों की सहायता से १०८ यज्ञवेदियाँ तैयार करवा रहे थे। कितने ही मन मक्खन, घी तथा अन्न की आहुति दी जानेवाली थी।

प्रत्येक वर्ष, वर्षारम्भ से कुछ पूर्व, इस उत्सव को मनाने का रिवाज व्रज के शूर यादवों में पूर्वकाल से चला आ रहा था। वर्षा के अधिष्ठाता

देवाधिदेव इन्द्र समृद्धि के भी दाता थे। जैसा कि वेदो मे वर्णन है, यह देव वर्षा को रोककर लोगों को भूखों मार सकते थे, मूसलाधार वर्षा से नदियों मे बाढ़ लाकर गाँवों मे प्रलय मचा सकते थे। इसीलिए प्रतिवर्ष यज्ञ द्वारा उन्हे प्रसन्न किया जाता था और इस बात का सदैव ध्यान रखा जाता था कि उनके सम्मान मे कही कोई कसर न रह जाए।

जिस दिन गर्गाचार्य और सान्दीपनि का प्रेम-पात्र बनने का सौभाग्य कृष्ण को प्राप्त हुआ, उसी दिन से उसके हृदय मे एक नवीन आत्मश्रद्धा का संचार हो उठा था। ग्वालो के साथ वह उनकी सेवा करने की एक-मात्र इच्छा से फिरता था। पहले की ही तरह वह पशुओं की भी सँभाल रखता। परन्तु अब वह सबके साथ सम्पूर्णत घुल-मिल गया था। फिर भी, कभी-कभी मित्रो से दूर, एकान्त जगल मे वह पहुँच जाता और वहाँ प्रत्येक वृक्ष तथा वनस्पति के साथ एक आत्मीय भाव का अनुभव करता तथा विशाल हो रहे अपने व्यक्तित्व का साक्षात्कार करता।

यज्ञ में यजमान किसे बनाया जाए, इस विषय पर विद्वान ब्राह्मणो मे मन्त्रणा चल रही थी। यजमान बनने के लिए जिसे पसन्द किया जाता, उसे देह-शुद्धि के लिए पहले तो तीन दिन उपवास करना पड़ता, फिर सात दिन तक आवश्यक विधियाँ सम्पन्न करनी पड़ती। पिछले साल बलराम यजमान बना था। कृष्ण भी अब वयस्क हो रहा था, इसलिए इस साल उसे यजमान बनाने की बात सभी सोच रहे थे। अतः सर्व-सम्मति से गर्गाचार्य ने कृष्ण को ही इस कार्य के लिए नियुक्त किया। परन्तु कृष्ण ने कभी इस इन्द्रोत्सव में रुचि नही ली थी। सब उत्सवो में श्रेष्ठ इस उत्सव को मनाने की धूम जब सारे गाँव में मची रहती, तब अपनी बाँसुरी और कुछ मनभाती गायों को लेकर वह गोवर्धन पर्वत की छाया में जा बैठता। फिर भी उत्सव के क्रियाकाण्ड के प्रति यथेष्ठ आदर-भाव प्रदर्शित करने के कारण कोई उसे उत्सव मे भाग न लेने पर दोषी नही ठहराता।

विद्वान और पवित्र ब्राह्मणों के बीच जब मन्त्रणा शेष हो चुकी और पशुओं को चराकर कृष्ण लौटा तथा सदा की भाँति गर्गाचार्य को प्रणाम करने गया, तब यह खबर उन्होंने उसे दी।

'वत्स, इस वर्ष यजमान बनने के लिए हमने तुमको नियुक्त किया है। सब तैयारियाँ हो चुके, तब तुम्हे देह-शुद्धि के लिए उपवास करना है।'

'यज्ञ मे यजमान का कार्य करने के लिए यदि आप बलराम से कहे तो अधिक अच्छा रहेगा, आचार्य !' हाथ जोड़कर कृष्ण ने कहा।

'गत वर्ष यह कार्य बलराम ने किया था; इस साल तुम्हारी बारी है,' गर्गाचार्य ने कहा।

'तो फिर श्रीदाम को नियुक्त करे। वह अधिक उपयुक्त होगा,' कृष्ण ने कहा।

'और तुम क्यों नही यजमान बनना चाहते ?'

'किसी दूसरे को यह सम्मान मिले तो मैं अधिक प्रसन्न होऊँगा,' कृष्ण ने कहा।

गर्गाचार्य ने मुस्कराकर कहा, 'कृष्ण, तूँ चाहता क्या है ? इस साल तूँ ही यजमान बने, यह सारे वृन्दावन की इच्छा है। इस सम्मान को स्वीकार करने मे तुम्हें आपत्ति क्या है ?'

'मैं इस सम्मान के योग्य नही,' कृष्ण ने कहा।

'योग्य नही, तूँ ? यदि कोई इस कार्य के लिए सबसे अधिक योग्य है तो वह तूँ ही है। फिर भी, तेरे ऐसा कहने का कोई कारण अवश्य होना चाहिए—जो भी बात हो, स्पष्ट कहो,' गर्गाचार्य ने कहा। अपने अनुभव से वह यह अच्छी तरह जानते थे कि कृष्ण जो भी कहता या करता है उसके पीछे कोई प्रबल कारण या दीर्घदृष्टि अवश्य रहती है।

'सच-सच बताने से आप बुरा तो नही मानेंगे ? मुझे क्षमा कर देंगे ?' कृष्ण ने पूछा।

'कृष्ण, मैं तुम पर कभी अप्रसन्न या क्रोधित नही होता। क्या तुम स्वय नही जानते कि तुम्हारे कथन का मैं कितना आदर करता हूँ।'

'इन्द्रोत्सव मुझे पसन्द नही।'

'क्यो, किसलिए ? इसमें तुम्हे क्या आपत्ति है ? यह तो प्राचीन परम्परा से चला आ रहा है।' गर्गाचार्य ने कहा।

'इतने सारे घी, दूध, मधु और अन्न की आहुति हमे क्यों देनी चाहिए ? इसीलिए तो, कि हमे इन्द्र से भय लगता है, कि यदि वह

अप्रसन्न होगा तो क्रोधित होकर हमारा विनाश कर देगा ?'

'हां ! पर, बड़े-बड़े महर्षि भी उसकी आराधना करते है।'

'परन्तु महर्षिश्रेष्ठ च्यवन ने ऐसा कोई यज्ञ नही किया और फिर भी उन्हे विजय मिली। भय के कारण उत्सव मनाना मुझे अच्छा नही लगता। इसमे मुझे लेशमात्र भी आनन्द नही मिलता। मैं तो ऐसे उत्सव ही पसन्द करता हूँ जिनके प्रति प्रेम उत्पन्न हो।'

'यह तो अपने अधर्म की वाणी कही जाएगी, वत्स !'

'जरा भी नही। हम पर प्रेम रखकर आशीर्वाद दे, ऐसे देवताओं का उत्सव मनाने मे मैं अवश्य रुचि लूँगा।' आँखो मे स्नेह की चमक लाकर कृष्ण ने कहा, 'अपने गोप और गोपियो के सम्मान मे यदि उत्सव मनाया जाए—दूध, मक्खन तथा घी और जलाने के लिए उपले देनेवाली गाये; शीतल छाया, फल-फूल और ईधन तथा घर बाँधने के लिए लकडी देनेवाले वृक्षो के सम्मान मे यदि उत्सव मनाया जाए तो मुझे वास्तव मे अधिक आनन्द होगा।'

गर्गाचार्य उसकी बात का रहस्य समझकर मुस्कराए।

'और हरी-हरी घास तथा शीतल छायावाले वृक्षो से हरे-भरे, तथा सुन्दर पखोंवाले पक्षियो और रमणीय झरनो से सुशोभित गोवर्धन पर्वत की भी मैं आनन्दपूर्वक पूजा कर सकता हूँ।'

'तुम्हारे इन नये देवताओं की पूजा किस प्रकार होगी ?'

'प्रत्येक वर्ष—और सम्भव हो तो प्रतिदिन—इन सबके सम्मान मे मैं उत्सव मनाना चाहता हूँ। ये हमारे नहीं, हम इनके हैं। इन्हीके कारण तो हम देवताओं के समान निर्भय बने है। यदि ये न रहें तो हमारा कोई मूल्य ही न रहे।'

'बात तो कन्हैया ठीक कहता है,' एक बुजुर्ग ने कहा, 'इन सबके बिना हम कहीं के न रहें।'

'गाये ही तो हमारा धन हैं,' नब्बे वर्ष के एक बुजुर्ग ने कहा।

'पूज्य महानुभाव, गायें हमारी देवता हैं—माता हैं। उन्हीके कारण तो हम यह जान पाते है कि माया-ममता, उदारता तथा महानता किसे कहते हैं,' कृष्ण ने कहा।

'परन्तु इन्द्र क्रोधित हो जाएगा—उसे बुरा मानते देर नही लगती,' एक वृद्ध ने कहा।

'इस प्रकार जरा-जरा-से मे क्रोधित होनेवाले का सामना करना क्या हमारा धर्म नही ?' कृष्ण ने कहा, 'और फिर जब उसका भय जाता रहे तब उसे क्षमा करना भी हमारा धर्म है।'

वृद्ध नन्दबाबा तो आनन्द-समाधि मे डूब गए। अपने पुत्र के किसी भी निर्णय को वह तुरन्त स्वीकार कर लेते थे, क्योंकि कृष्ण के दृष्टिबिन्दु मे उन्हे प्रत्येक बार किसी-न-किसी सत्य के दर्शन होते थे।

'बेटा, तू जो कह रहा है वह बिलकुल सही है। ये गाये, ये वृक्ष, यह गोवर्धन पर्वत, यही तो हमारा सर्वस्व है। हमे जो कुछ भी प्राप्त होता है वह इन्ही की बदौलत तो !' उन्होने कहा।

'और हम उनको क्या देते है ? अपना प्रेम भी नही। यही कृष्ण के कहने का अभिप्राय है न ?' सान्दीपनि ने कहा, 'आप सब लोग राजी हों तो गोपोत्सव मनाकर हम गोवर्धन की पूजा करे। यज्ञ की क्रियाएँ तो इसमे निमित्त मात्र होगी और आहुति भी प्रतीकात्मक ही दी जाएगी।'

'ऐसा हो तो यजमान बनने के लिए मै राजी हूँ। और इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ की वेदी मे जिस दूध, मक्खन, मट्ठे की आहुति हम देनेवाले थे, उसका कितने ही दिनो तक हम यथेच्छ उपभोग भी कर सकेंगे।' कृष्ण ने कहा।

'ठीक है। वेद में भी कहा गया है कि तक्र शक्ति है, घृत आयुष्य है।' विद्वान गर्गाचार्य ने कहा।

गोपोत्सव मनाने की बात सुनकर वृन्दावन के लोगों को भारी आश्चर्य हुआ। कुछ लोगों को तो इससे आघात भी पहुँचा; उन्हे इस प्रकार प्राचीन परम्परा का भग होना खला। दूसरों को यह नवीन प्रथा सराहनीय लगी। सात दिन तक यज्ञ का क्रियाकाण्ड चलने से पूर्व, प्रथम तीन दिन तक लोग एकत्रित हों और सुन्दर वस्त्राभूषणों से सज्जित होकर सामूहिक नृत्य-गान मे सम्मिलित हो, इसकी भी व्यवस्था की गई। अधिकांश लोगों का स्नेह कृष्ण के प्रति था और वे कृष्ण के यजमान बनने पर उसका अनुसरण करने के लिए उत्सुक थे। वृन्दावन के युवक-युवतियों

ने तो इस समाचार का आनन्दपूर्वक स्वागत किया ।

संयोगवश, दूसरे ही दिन अय्यन दस वर्षो के बाद अपने माता-पिता के पास घर लौट आया । कस के श्वशुर मगध के महाराज जरासध ने अश्वमेध यज्ञ किया था । अश्वमेध यज्ञ करनेवाला राजा जगत् का सम्राट माना जाता था । अपने श्रेष्ठ योद्धाओ को लेकर कस इस यज्ञ मे भाग लेने गया था । इन्ही योद्धाओं में वीस वर्ष का कुमार अय्यन भी था ।

स्वयं राजगृह में रहकर जरासन्ध ने, यथेच्छ परिभ्रमण करते अश्वमेध के अश्व के पीछे-पीछे अपनी सेनासहित पृथ्वी-विजेता बनने का महत् सम्मान अपने जामाता कस को दिया था । यदि कोई राजा अश्व को रोके तो युद्ध मे उसे परास्त कर उससे जरासन्ध को सम्राट मनवाना कस का काम था । उसकी अनुपस्थिति मे मथुरा की शासन-व्यवस्था राजमहल के मुख्य सरक्षक और पूतना के पति प्रद्योत तथा वृद्ध मन्त्री प्रलव को सौपी गई थी । कभी-कभी जब अश्व मथुरा के आसपास के प्रदेश मे पहुँचता तब कंस अपनी राजधानी की खबर भी ले लेता था ।

जब सभी प्राचीन विधियॉ अच्छी तरह सम्पन्न हो गई, तब अश्व राजगृह मे लौट आया । कस भी तव अपनी राजधानी मे वापस आ गया, और युद्ध में जो सैनिक बच गए थे, वे भी उसके साथ लौट आए । युद्ध-क्लान्त होने पर भी ये सैनिक विजय के मद मे चूर थे । वीर अय्यन भी इन्ही में से एक था ।

अपने गॉव लौटने पर जो समाचार उसे मिले उनसे वह किंकर्तव्य-विमूढ-सा बन गया । उसकी सगाई टूट चुकी थी और उसकी मगेतर, कुछ वर्ष पूर्व वृन्दावन में आ बसे नन्दवाबा के पुत्र के साथ ब्याही जानेवाली थी । उसे यह अपने कुल पर एक कलंक-सा लगा । उसकी शूर-वीरता पर यह एक काला दाग था । अपनी मगेतर को उसने देखा भी नही था और राजदरबार मे उसकी जो प्रतिष्ठा थी उसको देखते हुए राधा से भी अधिक सुन्दर और अच्छी लड़कियॉ उसे ब्याहने को मिल सकती थी, फिर भी यह उसका घोर अपमान था, और इसका वदला उसे लेना ही होगा, ऐसा उसने संकल्प किया । उसके क्रोध का पारावार न था । यह कृष्ण कौन जाने कहॉ से आ टपका ! भले ही वह गॉव के मुखिया का पुत्र

हो ! इससे क्या ? उसे तो मज़ा चखाना ही पड़ेगा । वृषभानु की पुत्री की सगाई फिर से उसीके साथ होनी चाहिए । वह कोई सामान्य प्राणी नही था । कस की सेना मे उच्च पद का अधिकारी था, कई रणक्षेत्रों मे वह अपनी वीरता सिद्ध कर चुका था ।

और फिर मानो यह अपमान कम हो, वृन्दावन पहुँचने पर उसे यह खबर भी मिली कि इसी कृष्ण के कहने पर गाँव के अधिकाश लोगों ने इन्द्रोत्सव मनाने का विचार छोड़ दिया है । इन्द्र क्या कोई सामान्य देवता है ? वर्षा, तूफान तथा युद्ध के अधिष्ठाता इन्द्रदेव की पूजा तो वह सेना मे था तभी से सदा करता आया है ।

अय्यन ने निश्चय किया कि कृष्ण चाहे अपनी पूरी ताकत लगा ले, फिर भी इन्द्रोत्सव मनाया जाएगा ही ।

२५

गोवर्द्धन-धारण

वृन्दावन में दो दल हो गए थे । एक दल ने गोवर्द्धनोत्सव की तैयारियाँ शुरू की, तो दूसरे ने इन्द्रोत्सव मनाने की । गर्गाचार्य, सान्दीपनि, नन्द तथा अधिकांश गोप कृष्ण के पक्ष में थे । दूसरे पक्ष का नेता था स्तोक कृष्ण, अय्यन का पिता । इस पक्ष में लोग सख्या मे तो कम थे, परन्तु थे वे सभी उग्र तथा आक्रमणशील वृत्ति के । उन्हें जब अपनी यज्ञ-विधि सम्पन्न कराने के लिए कोई आचार्य नही मिला, तब उन्होंने मथुरा से एक विद्वान् ब्राह्मण को बुला लिया ।

नन्द के अनुयायी गोप-गोपियों ने प्रतिद्वंद्वी पक्ष की ओर केवल उपेक्षा

ही दिखाई। फिर उत्सव का दिन आ पहुँचा। जुलूस बनाकर गोवर्द्धन पर्वत के सामने जाने के लिए बहुत-से लोग गाँव के बाहर एकत्र हुए। पशुओं को नहला-धुलाकर स्वच्छ किया गया और उन्हें पेट भर चारा दिया गया। उनके गले मे घण्टियाँ बाँधी गई और बहुत-से पशुओ के पैरों में झनझनाती हुई झाँझरें पहनायी गई। कई गायों को रग-बिरंगे रगों से सजाया गया। मदमस्त वृषभों के सीगों पर रुपहले बर्क चिपकाये गए। सुन्दर वस्त्र और अलंकार धारण कर प्रौढ़ स्त्रियाँ बैलगाड़ियो में बैठकर आनन्द-मगल के गीत गाती हुई पर्वतराज की ओर चली। गाड़ियों मे जुते हुए बैल विविध रगों के वस्त्राच्छादन से सजाये गए थे।

कई साहसी किशोर, मदमस्त वृषभों पर सवारी कर उन्हे खूब जोर-ज़ोर से दौड़ा रहे थे। अधिकाश पुरुषों ने सुन्दर-सुन्दर साफे बाँध रखे थे और रंग-बिरगे दुपट्टे धारण कर रखे थे। बहुत-से बालक-बालिकाएँ नाचते-कूदते, शरारत करते हुए दौड़ रहे थे। सगाई के दिन यशोदा माता की ओर से भेंट में मिले हुए नवीन वस्त्र तथा सुन्दर अलकारों से सज्जित, अपूर्व कान्तिमयी राधा अन्य गोप-बालाओं के साथ चल रही थी।

सभी के आगे-आगे चल रहे थे कृष्ण और बलराम। अन्य सभी से कद मे कुछ ऊँचे बलराम ने अपने कन्धे पर एक छोटा-सा हल उठा रखा था। उनके साथ ही कृष्ण चल रहे थे। उन्होने पीताम्बर धारण कर रखा था और गले में माला, हाथ मे फूल का गुच्छा और माथे पर मोर-पंख का मुकुट सुशोभित था। कमरबन्द में जीवन-सगिनी के समान बाँसुरी खुसी हुई थी। रास्ते में मित्रो के साथ बातचीत करते हुए और बालाओं के साथ हँसी-मजाक करते हुए वह चल रहे थे। रास्ते मे जो भी बड़े लोग मिलते, उनका वह हँसकर अभिवादन करते तथा गायो की पीठ थपथपाते। सारे समुदाय के वह प्राण थे।

गर्गाचार्य और सांदीपनि ने अपनी दीर्घ दृष्टि से इस उत्सव के कारण कृष्ण मे हुए परिवर्तन को देखा और भविष्य मे बननेवाले महान् प्रसगों की आशा से उनके हृदय उभर आए। मध्याह्न में यह जुलूस गोवर्द्धन-गिरि के समीप जा पहुँचा। पुराने वृक्षों की छाया तले अपने-अपने कुटुम्बों के साथ सभी गोपजन अपने साथ लाये हुए खाद्य-पदार्थों का

सेवन करने लगे। सध्या होते ही नृत्य-गीतों से वातावरण गूँज उठा। नकलचियों ने घोड़े की हिनहिनाहट, वाद्यों की झंकार, गाय-बैलों के रँभाने तथा कुत्तो के भौकने की आवाज़ की नकल करके बताई।

सवेरा होने पर पक्षी कलरव करने लगे। गायों के दुहने का काम शुरू हुआ। पशुओ को फिर से नहला-धुलाकर परिष्कृत किया गया और उनका शृङ्गार किया गया। जब गायों को दुहा जा रहा था, तब बालक तथा वयस्क भी ताजा दूध लेने के लिए अपनी-अपनी मटकी लेकर उपस्थित हो गए थे। फिर सभी ने स्नानादि से निवृत्त होकर पुष्प तथा कुकुम ले गोवर्द्धन पर्वत पर चढना शुरू किया। गर्गाचार्य तथा सादीपनि ने गिरिराज की पूजा की तैयारियाँ जब शुरू की, तब सभी के उरों में एक अपूर्व आनन्द छा गया था। उन्हे लगा कि अब गोवर्द्धन मात्र गिरिराज ही नही, देवता भी बन चुका है।

जब आरती की तैयारी हो रही थी, तब पिछले रास्ते से पर्वत पर चढ़ते हुए अय्यन तथा मथुरा से साथ आये हुए उसके दो मित्रों की ओर कृष्ण की नजर पड़ी। कृष्ण की तीक्ष्ण दृष्टि ने उनके मुख-भाव को परखा तथा राधा जहाँ खडी थी, वहाँ बालाओ की टोली की ओर वे लोग किस प्रकार चुपचाप खिसक रहे थे, यह भी देखा। कृष्ण के सुन्दर होंठों पर एक मधुर मुस्कान थिरक उठी। उनकी आँखों में सदा की भाँति मैत्री का भाव था। वहाँ एकत्रित स्त्रियों तथा पुरुषो ने भी अय्यन और उसके मित्रों को आते हुए देखा और कइयों के दिलों में उनके प्रति शंका प्रकट हुई तथा कुछ लोगो को गुस्सा भी आया।

'श्रीदाम, अय्यन और उसके मित्र हमारे उत्सव में भाग लेने आये है, उन्हे यहाँ बुलाओ।' कृष्ण ने सब लोग सुन सकें, इस प्रकार की ऊँची आवाज़ में कहा। 'अय्यन, आओ भाई, मेरे साथ पूजा में भाग लेने आओ।'

अय्यन अपने साथियों के साथ जहाँ खड़ा था, उस ओर जाने के लिए जब श्रीदाम ने पैर बढ़ाए, तो अय्यन और उसके दोस्त जिस रास्ते से आये थे, उसी रास्ते से जल्दी-जल्दी वापस उतर गए। गर्गाचार्य ने गोवर्द्धन की, गायों की तथा वृक्षों की ही नहीं, पर स्वयं कृष्ण की भी

पूजा-विधि कर पूर्णाहुति की। प्रत्येक के मुँह मे से जय-नाद का उद्गार फूट पड़ा।

उत्सव का अन्तिम दिन खूब आनन्द-प्रमोद मे वीता। शाम को गोप-गोपिकाओ ने भरपेट भोजन किया। फिर गीतों का रंग जमा। अधिकाश गीत कृष्ण के बाल्यकाल के पराक्रमों-सम्बन्वी थे। आकाश में तारे छिटक रहे थे और उत्साहप्रेरक मन्द-मन्द पवन चल रहा था। अँधेरा होने पर सभी गोप अपने-अपने परिवारो को लेकर उन स्थानो पर सोने गये, जहाँ उनके गाय-बैल तथा गाड़ियाँ रखी हुई थी। सर्वत्र शान्ति छा रही थी। मध्यरात्रि के वाद आकाश में एक काला बादल दिखाई पड़ा। उसके बाद एक और बादल आया। ठण्डी बयार चलने लगी और नीद मे भी लोग अस्वस्थता का अनुभव करने लगे। एकाएक बिजली चमकी। गाये तथा बैल अस्वस्थ हो गए। ग्वाले चमककर जाग उठे। आकाश में घनघोर घटा छा गई।

प्रत्येक मनुष्य भयभीत हो उठा। सभी को लगा कि वर्षा और तूफान के अधिष्ठाता देव इन्द्र कुपित होकर उन्हें दण्ड देना चाहते है। बाल-बुद्धि कृष्ण की बात मानकर गाय, वृक्ष तथा गोवर्द्धन पर्वत की पूजा करके उन्होंने महेन्द्र को रुष्ट कर दिया। जैसे-जसे प्रभातकाल समीप होने लगा, वैसे-वैसे आकाश अधिकाधिक घनघोर बादलों से आच्छादित होने लगा। एक शब्द भी बोले बिना प्रत्येक ग्वाला अपनी गाड़ी में बैल जोतने लगा। प्रत्येक यही चाहता था कि इससे पहले कि भयंकर वर्षा शुरू हो, वह अपने-अपने घर पहुँच जाए। उसी समय बिजलियाँ चमकने लगीं और भयकर मेघगर्जना सुनाई पड़ी। सूर्योदय हो चुका था। फिर भी पृथ्वी पर अन्धकार छा रहा था। और, तब मूसलाधार वर्षा शुरू हो गई। चारों ओर पानी-ही-पानी दिखाई देने लगगा। स्त्री और पुरुषों ने किसी प्रकार अपनी-अपनी गाड़ियाँ खड़ी कर उनके नीचे आश्रय पान की चेष्टा की। इन्द्रदेव वास्तव में कुपित हो गए थे। जल-मग्न जंगल के मार्ग से उस मूसलाधार बरसात में वृन्दावन वापस जाना तो असम्भव ही था। स्त्री-पुरुषों ने महेन्द्र की प्रार्थना करनी शुरू की। अपने द्वारा

जो परम्परागत नियम भंग हो गया था, उसके लिए उन्होंने क्षमा माँगी और यह प्रतिज्ञा की कि यदि इन्द्रदेव उन्हे इस बार उस भयंकर आँधी-वर्षा से बचा ले, तो वे इन्द्रोत्सव मनाना कभी नहीं भूलेंगे।

क्षितिज में जब प्रथम मेघ दिखाई पड़ा और शीत पवन चलने लगा था, तभी कृष्ण तुरन्त उठ खड़े हुए थे। गरुड के समान तीक्ष्ण चक्षुओं से उन्होंने आकाश का निरीक्षण किया और अपने मित्रों को पास बुलाया। इन्द्र के साथ लडने का समय आ पहुँचा था। प्रकाश की प्रथम धुंधली रेखा जब दिखाई पडी, तब गोवर्द्धन पर्वत के बीच मे वर्षा और पवन के कारण जो कई दरारे पड़ गई थी, वहाँ पर कृष्ण अपने मित्रों को ले गए। इन दरारो के बारे मे इन्हें पहले से ही ज्ञात था, क्योंकि जव भी वह इस पर्वत पर आते थे, तब इन दरारो में से मनुष्यो की आवाजे तथा पशुओं की पग-ध्वनि सुनाई पडती थी।

'बलराम, इन्द्र ने हम पर चढाई की है, अब हमें भी उसका सामना करना चाहिए,' एक बडी गुफा के मुख पर से शिला-खण्ड हटाते हुए कृष्ण ने कहा। सभी लोग गुफा के अन्दर चले गए। फिर बलराम ने अन्य गोपों की सहायता से वहाँ पर पड़े बड़े-बड़े पाषाणों को हटाया। उत्साह मे आकर युवक-वर्ग ने जय-घोष किया। बालाओं ने इस आवाज़ को सुना और वे अपनी दयनीय दशा भूलकर जिस ओर से आवाज़ आई थी, उसी ओर दौड़ पडी। कृष्ण में सभी को अपार श्रद्धा थी और उनका विश्वास था कि जब किशोरो ने विजय-घोष किया है, तो कृष्ण ने अवश्य ही कोई चमत्कार दिखाया होगा। सभी को विश्वास हो गया कि मुकाबला जबरदस्त होने वाला है। महेन्द्र के विरुद्ध सभी अपने प्रिय कृष्ण के लिए लड़ रहे थे। अत्यन्त उत्साह और शीघ्रता से उन्होंने गुफाओ तथा दरारों मे से शिलाओं, पत्थरों, ककड़ो तथा रेत को हटाया।

'अब सब बालको को यहाँ ले आओ,' अविकारसूचक स्वर मे कृष्ण ने कहा और वयस्क बालाएँ इस रक्षण-स्थान में बालकों को ले आने के लिए अपने कुटम्बीजनो के पास दौड़ी गई। नन्द और कुछ गोपाल यह जानने की इच्छा से कि वहाँ क्या हो रहा है, उस स्थान पर आ पहुँचे। उनके पीछे-पीछे और भी बहुत-से लोग आ गए। पर्वत के मध्य

मे एक विशाल गुफा थी; परन्तु वहाँ तक जाने का रास्ता एक विशाल शिला से अवरुद्ध था। इस शिला को हटाने के लिए कृष्ण ने भगीरथ प्रयास शुरू किया और सभी लोग उनकी मदद करने मे जुट गए।

एकाएक तूफान का वेग बढ़ गया। भयकर गर्जना हुई और समस्त पर्वत प्रदेश हिल उठा। गुफाओ तथा दरारो मे से भयकर ध्वनियाँ गूँज उठी। बिजली चमक उठी और कही गिरी भी। ऐसा लगता था मानो आकाश फट पड़ेगा। धरती हिल उठी। सभी को आशंका होने लगी कि स्वय गोवर्द्धन पर्वत ही हिल उठा है। जिस शिला को हटाने के लिए कृष्ण प्रयत्नशील थे, वह एकाएक छिटक गई और दूसरे अनेक ग्वालो की सहायता से कृष्ण यदि उसे समय पर न रोक लेते, तो वह सबके सिर पर गिर पडती। फिर से एक प्रचण्ड घन-गर्जना ठीक उनके मस्तक पर हुई। धरती-कम्प से पृथ्वी हिल उठी। सभी लोग अपना सन्तुलन खो बैठे। तभी एक चमत्कार हुआ। पर्वतो मे देव-तुल्य गोवर्द्धन पर्वत दो बालिश्त ऊँचा उठ गया। शिला-खण्ड लुढककर नीचे गिर पड़ा और एक विशाल गुफा दृष्टिगोचर हुई। पर्वत के ऊँचे उठने के कारण इस गुफा में लोग सीधे खड़े रह सके, इतनी जगह निकल आई।

हज़ारों कण्ठो से आनन्द-ध्वनि गूँज उठी। गोवर्द्धन को उठाकर कृष्ण ने जो आश्रय-स्थान ढूँढ निकाला था, वहाँ गोप-गोपिकाएँ अपने-अपने बालको तथा पशुओं को लेकर शीघ्रता से पहुँच गए। इस प्रकार पर्वत का रक्षण मिलने पर गोप-गोपियाँ निश्चिन्त हुए और फिर से उत्सव मनाने लगे। वे लोग इन्द्र का उपहास करने लगे, कि अब जो भी तुझसे हो, वह कर ले; हमारा प्यारा कृष्ण, हमारा देव हमारे पास है, फिर हमे किस बात की चिन्ता ?

सब लोगो के बीच मे खड़े कृष्ण ने गोप-गोपिकाओं की आँखो मे भक्ति-भाव देखा और वह प्रेम से मुस्करा उठे। सभी को लगा कि कृष्ण हमारे है, हम उनके है, उनके अंगभूत है। गोप-गोपिकाओं ने इन्द्र के कोप का बराबर सामना किया। अन्त मे इन्द्र का प्रकोप शिथिल पड़ गया। वर्षा थम गई। प्रखर ताप से तप्त सूर्य बाहर निकल आया।

वापस लौटते समय गोवर्द्धन को उठाने में कृष्ण को जो मदद उन्होंने

की, इसका गर्व अनुभव करती हुई गोपियाँ उनके पास आई। उस दिन कृष्ण का उन्होंने एक नया नाम रखा और इस नये नाम से सम्बोधित कर उन्होंने कहा, 'गोविन्द, गोविन्द, तुम अब हमारे देव बन गए हो। अपने रास में हम तुम्हें कभी नहीं बुलाएँगी।'

'क्यो नही बुलाओगी ? क्या मै तुम्हारा अपना नही ? अब तो आश्विन मास आ रहा है, तब शरद्चन्द्र की शोभा खूब बढेगी। उस समय हम रास-लीला करेगे। मैं तुम्हे वचन देता हूँ।' फिर उन्होने शान्ति से कहा, 'अब हमे इन्द्र का कोई भय नही रहा, हम लोग जाकर इन्द्रोत्सव मे भाग लेगे।'

२६

वह ईश्वर का ही अवतार है

अपने प्रबल पराक्रम से नये-नये प्रदेशों को जीतकर गर्वोन्मत्त कंस अपनी राजधानी मथुरा लौटा। उसके श्वशुर जरासंध ने जब अश्वमेध यज्ञ का प्रारम्भ किया, तब अश्वमेध के अश्व के साथ-साथ फिरनेवाली सेनाओं का सेनापतित्व कस को सौपा था। प्राचीन परम्परा के अनुसार इस अश्व की प्रतिदिन विधिवत् पूजा की जाती थी और उसे यथेच्छ फिरने दिया जाता था। जिस किसी प्रदेश में वह जाता उस प्रदेश के राजा को या तो जरासध की अधीनता स्वीकार कर लेनी पड़ती, अथवा अश्व की रक्षा करनेवाली सेना के साथ संग्राम करना पड़ता।

कस ने यह युद्ध-कार्य यशस्वी रूप से सम्पन्न किया। अश्वमेध का अश्व बारह वर्षों की दीर्घ अवधि तक यथेच्छ परिभ्रमण कर अन्ततः राज-

गृह वापस फिरा। अनेक प्रदेशो से निमन्त्रित अधीन राजाओं तथा आस-पास के प्रदेशों से आमन्त्रित ब्राह्मणो के समक्ष उस अश्व को राजोचित रीति से यज्ञ मे बलि दिया गया। इस प्रसग पर वीर एव समर्थ नरेश के रूप मे कस का सम्मान कर जरासंध ने उसे अनेक जीते हुए प्रदेश भेट मे दिए।

इन बारह वर्षो से भी कुछ अधिक अवधि में कस कभी-कभी ही, कुछ समय के लिए, मथुरा आ पाया था। जब अश्वमेध का अश्व मथुरा के किसी निकटवर्ती प्रदेश मे विचरण करता, तभी कस को इसकी सुविधा मिलती थी। अपने राज्य का सचालन-भार इसीलिए उसने अपने मुख्य मन्त्री प्रलम्ब तथा सेनापति प्रद्योत को सौंप रखा था। मथुरा लौटने पर उसे पता चला कि शूर, अधक, वृष्णि तथा भोजवश के यादवो सहित इकत्तीस वशों के यादव लगभग स्वतन्त्र हो चले है। इससे उसको गहरा आघात लगा। गौरवशाली तथा स्वतन्त्र स्वभाव के यादवकुलों को अपने समक्ष झुकाने का उसने खूब प्रयत्न किया था और कपट तथा जोर-जुल्म से उसे इसमे सफलता भी मिली थी। परन्तु अब उसके किये-कराए पर पानी फिरने जा रहा था ; उसके राजधानी लौटने पर किसी को खुशी नही हुई, बल्कि मालूम तो ऐसा ही देता था कि सब खिन्न और उदासीन हो गए है।

युद्ध से लौटने के बाद कुछ दिन तो कस काफी उद्विग्न रहा। योद्धा के रूप मे पराक्रम दिखाने का तो अवसर अब रह नही गया था, और प्रजा के आदर-सत्कार का पात्र भी वह बन नही सका। उग्रसेन अपने महल में अब भी नजरबन्द ही थे, फिर भी पहले की तरह अब वह उतने लाचार और निराधार नहीं दिखाई पड़ते थे। लौटने पर अपने प्रति जो उसने अपने पिता का बर्ताव देखा, उसमे तिरस्कार की भावना ही उसे स्पष्ट दिखाई पड़ी। किसी प्रकार उसने समझ लिया कि युद्ध में जाने से पहले यादवों पर जो उसका निर्विवाद प्रभुत्व था, वह अब नहीं रहा है।

कंस के गर्वीले स्वभाव के लिए यह परिस्थिति कष्टकर और असह्य थी। परन्तु वह जितना महत्त्वाकांक्षी था, उतना ही युक्तिवान भी। इसलिए सत्ता फिर से हथियाने में उसने जल्दबाजी नहीं की। मन्त्री

प्रलम्ब पक्षाघात के कारण रुग्णशैया पर पड़े थे और उठ-बैठ नही सकते थे। परन्तु कस ने अपने प्रिय सेनापति से सारा हाल मालूम कर लिया कि उसकी अनुपस्थिति मे क्या-कुछ हुआ है। प्रलम्ब ने उसे बताया कि अच्छे-अच्छे सैनिको के उसके साथ युद्ध में चले जाने पर मन्त्री प्रलम्ब ने प्रत्येक के साथ कम-से-कम विरोध की नीति अपनाई थी। यादवकुल के सरदार फिर से स्वतन्त्र वर्तन करने लगे थे। महाराज उग्रसेन को ही वे अपना प्रिय राजा मानकर उनके प्रति आदर तथा प्रेम का प्रदर्शन करते थे। उग्रसेन ने मन्त्री प्रलम्ब के राजकार्य मे कभी हस्तक्षेप नही किया, फिर भी नज़रबन्द किये जाने के पूर्व जो प्रतिष्ठा और मान उनका था, उसीका अधिकारी उन्हे लोग मानते थे।

इस परिस्थिति को सम्हालने और उसे पूर्ववत् अपने पक्ष में करने के लिए क्या उपाय करने चाहिए, इसी चिन्ता मे कंस घुला जा रहा था। अपने साथ लौटे सैनिकों को उसने अपने शहर के विभिन्न भागो मे तैनात किया। धनुर्यज्ञ करके विजयोत्सव मनाया जाएगा, यह खबर भी उसने चारों ओर फैला दी। इस प्रसग पर अपने पराक्रम का प्रदर्शन कर विभिन्न यादव-कुलो से कर वसूल करने और उन्हे अपने अधीन करने का उसका इरादा था।

एक दिन एक बड़ा विचित्र समाचार लेकर प्रद्योत कस के पास आया। अय्यन नाम का उसका अपना आदमी ही यह समाचार लेकर आया था। अय्यन ने युद्ध में प्रशसनीय कार्य किया था, इसकी खबर कस को थी। समाचार सुनकर कस का चेहरा उतर गया और गुस्से से उसका बदन कॉपने लगा। उसने प्रद्योत को खण्ड से बाहर निकाल दिया और स्वय महल की छत पर जाकर मुट्ठियॉ बन्द कर, भयग्रस्त नयनों से इधर-उधर चक्कर काटने लगा। युद्ध मे लगा रहने के कारण पिछले कुछ वर्षों से वह नारदमुनि की भविष्यवाणी को भूल ही गया था। देवकी की आठवी सन्तान पुत्र नही, पुत्री है, यह जानकर भी वह कुछ आश्वस्त हो गया था; इसीलिए भविष्यवाणी की उसने उपेक्षा की। परन्तु अब जिस लड़के की खबर उसने सुनी, उसी की उम्र का देवकी का आठवॉ पुत्र होना चाहिए। प्राप्त सूचना के अनुसार इस लड़के में अद्भुत शक्ति थी।

कस पचास वर्ष से अधिक का हो गया था, फिर भी मृत्यु का भय अब उसे पहले से भी अधिक सताने लगा था। देवकी का आठवाँ पुत्र उसकी हत्या करेगा, यह सुनकर जो भय उसने पहले-पहल अनुभव किया था, उससे दुगुना भय वह अब महसूस करने लगा। उसे भयकर गुस्सा भी आया। लड़ते-लड़ते यदि उसे मृत्यु प्राप्त हो, तो यह उसे स्वीकार था; परन्तु अपने ही एक यादव-सम्बन्धी लड़के के हाथों उसकी मौत हो, यह विचार मात्र ही उसे असह्य था। अभी तो कितनी ही महत्त्वाकाक्षाओं की पूर्ति उसे करनी थी। जिन यादव सरदारो ने उसके सामने मस्तक उठाया, उन्हे धूलिधूसरित करना था और अन्ततः चक्रवर्ती पद प्राप्त करना था। अघ्यन जो समाचार लाया था, उसकी पुष्टि उसे किसी तरह प्राप्त करनी चाहिए और यदि वह बालक देवकी का ही पुत्र हुआ, तो उसका नाश करना भी आवश्यक था।

सारी रात वह सो न सका। दूसरे दिन सबेरे ही वह प्रद्योत को लेकर मृत्युशैया पर पड़े अपने मन्त्री प्रलम्ब से मिलने गया। पक्षाघात से पीड़ित वृद्ध मन्त्री अर्धचेतन अवस्था मे पड़ा था। कस ने अपने आदमियो को कमरे से बाहर कर दिया और दरवाजे पर पहरा देने के लिए प्रद्योत को खड़ा कर दिया। दबाये हुए क्रोध के कारण राजा कस इतना क्षुब्ध हो गया था कि उसने सोये हुए मन्त्री को जगाने के लिए जोर से हिलाया। प्रलम्ब ने आँखे खोलकर अपने स्वामी का स्वागत करने के लिए एक हाथ ऊँचा किया। उस हाथ पर अभी पक्षाघात का असर नही हुआ था।

'प्रलम्ब, मैं जो कह रहा हूँ वह सुन रहा है न ? मेरी बात को समझ रहा है न ?' पलक झपकाकर तथा गले में से क्षीण स्वर निकालकर प्रलम्ब ने स्वीकारोक्ति की।

'वृन्दावन के ग्वाले, नन्द के पुत्र कृष्ण का नाम सुना है ? रोहिणी के पुत्र बलराम को जानता है तू ?'

मन्त्री ने इशारे से 'हाँ' कहा।

'उसको मारने के लिए मैंने पूतना तथा तृणावर्त को भेजा था, उनको कृष्ण ने मार डाला, यह तू जानता है ?'

'हाँ।'

'तुझे मालूम है कि वह अब सुन्दर और बलवान बन गया है ?'

'हाँ।'

'यह भी तू जानता है कि लोगों के अनुसार कृष्ण ने बचपन में वृत्रासुर तथा बकासुर का सहार किया था ?'

'हाँ।'

'जहरी कुण्ड मे रहनेवाले भयकर कालिय नाग का भी उसने मर्दन किया, यह भी तू जानता है ?'

'हाँ।'

'और तूने ही, तूने ही, मूर्खाधिराज, उसे इतना शक्तिशाली बनने दिया ! बोल, किसलिए ?' कस ने क्रोध मे अधीर होकर पूछा।

मन्त्री निराधार अवस्था में पलग पर पडा था, फिर भी उसे वही-का-वही खत्म कर देने का कस का मन हुआ। वृद्ध मन्त्री ने लाचारी से यह भाव प्रदर्शित करते हुए कि 'मैं क्या करूँ ?' अपना बायाँ हाथ ऊपर उठाया और फिर असह थकान अनुभव करते हुए अपनी आँखे मूँद ली।

कंस ने क्रूरतापूर्वक फिर से प्रलम्ब को हिलाया। मन्त्री ने आँख खोलकर अपने क्रोधित स्वामी को देखा और क्षमा-याचना के निमित्त हाथ की अजलि बनाने का प्रयास किया, किन्तु सफल नही हो सका।

'तू अस्वस्थ था, तब उस छोकरे के समाचार तुझे मिलते थे कि नहीं ?' प्रलम्ब ने, समाचार मिलते थे, यह कहने के लिए अपना हाथ ऊँचा किया।

'क्या यह सच है कि इस लड़के ने देवाधिदेव इन्द्र की पूजा न करने के लिए वृन्दावन के लोगों को समझाया और स्वयं देव बन बैठा ?'

मन्त्री ने इशारे से बताया कि यह बात सच नही है।

'तो क्या यह भी सच नही है कि उसने गायों, वृक्षों तथा गोवर्द्धन गिरि की पूजा लोगों से करवाई और इसके लिए महोत्सव मनाने को उन्हें प्रेरित किया ?' भारी कण्ठ से कंस ने पूछा।

'हाँ।'

'तो इन सब बातों की सूचना तूने मुझे क्यों नही दी ?'

प्रद्योत जिस ओर खड़ा था, उस ओर दरवाज़े की तरफ वृद्ध मन्त्री

ने इशारा किया ।

'तू यही कहना चाहता है न कि प्रद्योत भी यह सब जानता था ?'

'हाँ ।' मन्त्री ने इशारे से उत्तर दिया ।

'और इस प्रसंग पर कृष्ण की भी पूजा की गई थी—ठीक है न ?'

वृद्ध मन्त्री मौन रहा ।

'प्रद्योत ने वृन्दावन मे जिस उन्मत्त वृषभ अरिष्ठ को खुला छोडा था, उसका तथा भयकर अश्वकेशी का भी, उसने सहार किया, यह भी तू जानता है ?'

मन्त्री ने इशारे से बताया कि उसे इसकी कुछ भी खबर नही ।

'देख प्रलम्ब, पैंतीस साल तक यदि मेरी एकनिष्ठ सेवा तूने नही की होती, तो मैं तुझे यही-का-यही अभी खत्म कर देता । अपना राज्य मैं तुझे सौपकर गया और तूने मेरा सर्वनाश कर डाला ! जिन सगे-सम्बन्धियो को मैंने लगभग कुचल डाला था, उन्ही को तूने अपनी निर्बलता के कारण फिर से सिर उठाने का मौका दिया । इस कृष्ण को तो तूने इतना अधिक शक्तिशाली बनने दिया है कि अब तो स्वय मथुरा के बहुत-से लोग उसे उद्धारक मानने लगे है ।'

वृद्ध मन्त्री ने हाथ जोड़ने का प्रयत्न किया, परन्तु वह निष्फल रहा ।

'हाथ जोड़ने की आवश्यकता नही, कपटी मनुष्य ! पर, यदि तुझमे अब भी मेरे प्रति कुछ निष्ठा है, तो एक बात मुझे बता—यह प्रश्न मेरा अन्तिम होगा ।'

मन्त्री ने इशारे से पूछा, 'कौनसा प्रश्न ?'

भवे तानकर, अत्यन्त धीमी आवाज़ मे, मानो धमकी दे रहा हो इस प्रकार, कंस ने पूछा, 'यह लड़का देवकी का आठवाँ पुत्र तो नही है ?'

वृद्ध मन्त्री ने कुछ भी जवाब नही दिया ।

'चुप क्यों हो गया ? बोल-बोल, नही तो तू ब्राह्मण होने पर भी मेरे हाथ से नहीं बचेगा । मैं जो कहता हूँ वह सुन रहा है न ? वह देवकी का पुत्र है—है न ?'

वृद्ध मन्त्री ने होंठ खोलकर बड़ी मुश्किल से स्वीकारसूचक ध्वनि की ।

'अधम, पामर जीव ! ये सब बातें तूने मुझसे छिपाकर कैसे रखी ?' क्रुद्ध सर्प की भाँति फुफकारकर कस ने क्रोध व्यक्त किया और प्रलम्ब को कन्धे पकडकर फिर जोर से हिलाया ।

'नराधम, कृतघ्न, तूने मुझे सूचित क्यों नहीं किया ?'

वृद्ध मन्त्री ने अत्यन्त बलपूर्वक प्रयत्न किया । उसकी आँखें कोई विचित्र भाव प्रकट कर रही हो, इस प्रकार फैल गई ।

'बोल, तूने मुझे पहले क्यो नहीं बताया ?'

अचानक मानो शरीर मे शक्ति का सचार हो गया हो, इस प्रकार प्रलम्ब ने अपना सर ऊँचा उठाया । उसके होठ कापने लगे और वह अत्यन्त क्षीण आवाज मे बडबड़ाया, 'क्योंकि महर्षि वेदव्यास की बाणी सच थी । वह ईश्वर का ही अवतार है ।'

इतना कहते ही उसका मस्तक झुक आया । यह प्रयास मरणासन्न मन्त्री को बहुत भारी पडा । उसकी आँखे और भी विशाल बन गई और गले मे से मृत्युसूचक स्वर निकलने लगा । कस भयाकुल होकर कमरे से बाहर निकल गया ।

२७

कंस का बुलावा

कुछ समय के बाद होने वाली गोपनीय राजसभा में उपस्थित रहने के लिए कंस ने सभी यादव सरदारों को बुला भेजा ।

प्रलम्ब की मृत्यु के पश्चात् कंस तीन दिन लगातार गहन चिन्ता में डूबा रहा । अब इस प्रश्न का निराकरण क्या ? अन्त में उसने निश्चय

किया कि वसुदेव के इस पुत्र का, और आवश्यकता पड़े तो सभी यादव सरदारो का विनाश आवश्यक है।

चौथे दिन घोषणा कर दी गई—'पन्द्रह दिन पूर्व यादवों के सर्वसत्ताधीश महाराज कंस के अपनी विजय-यात्रा से लौटने के उपलक्ष्य मे धनुर्यज्ञ महोत्सव का आयोजन किया जाएगा।' सप्ताह-भर चलने वाले इस महोत्सव मे मल्लयुद्ध तथा अन्य विविध प्रकार की क्रीड़ाओ के प्रदर्शन का आयोजन किया गया था। भोजन समारम्भ तथा आनन्दोत्सव की तो बात ही क्या ?

कस का विश्वासपात्र सेनापति प्रद्योत यद्यपि स्वामी के आदेश को लेकर सर्वत्र उत्साह के साथ घूम रहा था, तथापि वह किसी अज्ञात गहन व्यथा का भी अनुभव कर रहा था। धनुर्यज्ञ के सचालन का सम्पूर्ण कार्यभार उसे सौंपा गया था। इससे बाहर से तो यही प्रतीत होता कि उसके गौरव मे वृद्धि हुई है; किन्तु वस्तुत उसे पदच्युत कर दिया गया था। राजमहल के सर्वसूत्र-संचालन को धीरे-धीरे उसके हाथ से छीनकर मगध के महाराज जरासध की पुत्री तथा कस की प्रिय पत्नी के सम्भ्राता वृत्रिघ्न को सौप दिया गया था। उसने राजमहल मे कार्यरत प्रद्योत के सभी आदमियो को निकालकर उनके स्थान पर मगध के लोगो को भर दिया। इसके पीछे क्या अर्थ है, यह भी प्रद्योत जानता था। उसे पूर्ण विश्वास हो गया था कि कस अपनी सुरक्षा के लिए अब उस पर भरोसा नही रखता। वह यह भी समझ चुका था कि भविष्य मे अब कस कदापि उस पर विश्वास न करेगा।

प्रद्योत बहुत दुखी हुआ। स्वयं जीवन-भर स्वामी की सेवा मे रत रहा, अपनी पत्नी तथा बच्चों की बलि दी, कंस के हित के लिए किसी भी प्रकार के पापाचरण से पीछे नही हटा; बदले मे कस ने निस्सकोच उसे पदच्युत कर दिया और वह सम्मान एक बाहरी आदमी को प्रदान कर दिया।

अमात्य प्रलम्ब की मृत्यु के समय जो वचन उसने सुने थे, वे अभी भी उसके हृदयपटल पर ज्यों-के-त्यों अकित थे। उस समय उसकी नियुक्ति द्वारपाल के रूप में द्वार पर ही की गई थी; किन्तु उसके कान तो कंस

तथा अमात्य के वार्तालाप की ओर ही थे। अमात्य के अन्तिम वचनों को सुनकर उसे आघात लगा था। कितने वर्ष गुजर गए, किन्तु प्रलम्ब ने नन्द के इस पुत्र के विनाश के लिए न तो स्वयं कोई उपाय रचा और न ही उसे इस दिशा मे आगे बढने दिया। यह रहस्य उसकी समझ मे अव आया। चतुर एव अनुभवी अमात्य जान गए थे कि नन्द का यह पुत्र और कोई नही, देवकी एव वसुदेव का आठवाँ पुत्र—सभी का तारणहार—है।

प्रद्योत अपनी पत्नी के सम्वन्ध मे सोचने लगा—'यदि कृष्ण वस्तुतः वसुदेव का पुत्र है तो शपथ खाते हुए पूतना ने यह क्यो कहा कि मेरी आँखों के सामने देवकी ने एक बालिका को जन्म दिया। और वह बालिका कंस के हाथो से निकलकर उसे सावधान करती हुई कैसे ऊपर चली गई! कृष्ण को विप देने की बात पूतना ने क्यों स्वीकार कर ली? सम्भवत' वह जानती थी, कृष्ण ईश्वर के अवतार है और उन्हे बचाने के लिए उसने ऐसा किया। ऐसा भी हो सकता था कि सभी के तारणहार का संहार करने के बदले अपने पति एवं सन्तानो की रक्षा के लिए उसने स्वय को बलिदान कर दिया। सभी कुछ रहस्यमय है, कुछ भी समझ मे नही आ रहा।

'कृष्ण ईश्वर के अवतार है, यह विश्वास तो प्रलम्ब को हो गया था और मृत्यु के समय उन्होंने यह स्वीकार भी किया था। पूतना भी यह जानती थी। और अब कृष्ण को मारकर सभी यादव सरदारों को समाप्त कर देने के लिए ही कस अपनी इस युक्ति को अमल में लाने के लिए कटिबद्ध हो गए है। इस समय मैं क्या करूँ? कंस के इस पाप-कर्म मे क्या मैं भी भागी बनूँ? क्या मैं अपने ही सगे-सम्बन्धी यादव सरदारों के संहार का निमित्त बनूँ? उनके विनाश के बाद मेरा क्या होगा?' वह स्वयं एक यादव सरदार था। कंस के हृदय में वह उच्च स्थान प्राप्त कर चुका था। उसकी स्वामिभक्ति तथा उसका उच्च स्थान इसके प्रमुख कारण थे। जब तक वह महाराज के पक्ष में था, तब तक 'मेरे वंशज यादवों का मुझे सहयोग प्राप्त है' यह दावा वे कभी भी कर सकने की स्थिति में थे।

किन्तु 'कस महाराज तुम्हे बुला रहे हैं', इस सूचना से उसकी विचार-

शृङ्खला टूट गई। ऐसी मनोदशा मे वह कस के पास नहीं जाना चाहता था। वह केवल दास है, इससे अधिक कुछ नही, ऐसा अनुभव कर वह अपने को अधमतम समझने लगा।

कस के पास जाते समय प्रद्योत को लगा कि गत कितने ही सप्ताहों से जिस मनोयातना को वह सहता आ रहा है, उसका अब अन्त आ चुका है। कस भी दयालु एव उदार हो गया है। प्रद्योत को पूर्ण विश्वास था कि जब कभी कस को कोई निकृष्ट कार्य कराना होता तो वह इसी प्रकार की छलनामयी उदारता का प्रदर्शन करता।

'मित्र तुम्हे मेरा एक कार्य करना है। वृष्णि के सरदार अक्रूर के पास मेरा यह सन्देश पहुँचाओ कि कल मध्याह्न को मै सभी यादव सरदारों से मिलना चाहता हूँ।'

'सभी सरदारो से ?'

'हॉ, सभी सरदारों से। उनके साथ वार्ता कर मै सुलह करना चाहता हूँ। अक्रूर से कहो, सभी सरदार आएँ, सभी ! समझ गए न ? मै परमपूज्य पिताजी को भी बुला रहा हूँ।'

'जैसी आज्ञा प्रभु !' प्रद्योत ने कहा। 'और मुझे भी आना है ?'

'अवश्य ! अवश्य !! अगर तुम उपस्थित न रहोगे तो मै उन सबसे मिलकर क्या करूँगा ?'

प्रद्योत अपने स्वामी की इस पाखण्ड-भरी उदारता से घृणा करने लगा।

'जैसी आपकी आज्ञा महाराज !' पुनः प्रद्योत ने कहा, 'उस समय राजमहल की सुरक्षा के लिए भी क्या आप मेरी सेवाएँ पसन्द करेंगे ?'

'तुम क्यो व्यर्थ में कष्ट उठाओगे ?' कस ने कहा, 'वृत्रघ्न को यह भार सौंप दिया गया है।'

'जैसी आपकी इच्छा महाराज !'

'और अक्रूर क्या उत्तर देते है, यह आकर मुझसे कहो,' कंस ने कहा।

प्रद्योत यह भली भाँति जानता था कि यादव सरदारों के प्रति कस द्वेष-भाव से भरा हुआ है। इस विचित्र परिवर्तन के पीछे क्या रहस्य है,

'तुम्हे कौन-सा कारण प्रतीत होता है ? तुम तो महाराज को अति निकट से जानते हो,' अक्रूर ने कहा। 'क्या वास्तव में वह हम सबसे मित्रता का भाव रखना चाहते हैं ? या हम सबको एक साथ समाप्त कर देने की कोई युक्ति उन्होंने सोची है ? उन्हे ऐसा करने में भी शायद कोई हिचकिचाहट न हो।'

सभी के आदरपात्र साधु पुरुष अक्रूर की ओर बड़ी विवशता से प्रद्योत ने निहारा। वह अधिक समय तक उनकी ओर न देख सका। प्रलम्ब के वचनो का विचार कर अक्रूर के समक्ष उपस्थित प्रद्योत असत्य बोलने का साहस न कर सका।

'महाराज को समझना कठिन है। सम्भव है उन्होने कोई युक्ति सोची भी हो,' प्रद्योत ने कहा।

'क्या तुम्हें शका है कि कोई दुष्ट कृत्य करने के लिए ही यह युक्ति सोची गई है ?'

प्रद्योत ने मौन रूप से अपनी स्वीकृति प्रदान की।

अचानक द्वार से एक विषाद-भरा मृदु स्वर सुनाई पड़ा।

'आर्य, आप पधारे है ?……गर्गाचार्य……'

प्रद्योत विस्फारित नेत्रों से उधर ही निहारता रहा। एक छोटी किन्तु अपूर्व सुन्दर स्त्री द्वार पर खड़ी थी। उसकी आयु तीस के ऊपर ही होगी, किन्तु उसके केश श्वेत हो चले थे। उसके मुख-मण्डल पर अवर्णनीय विषाद की रेखाएँ उभरी हुई थीं। वह और आगे बढ़ी। किन्तु प्रद्योत को देखते ही उसके मुख से निकला वाक्य अधूरा ही रह गया। उधर उस पर प्रद्योत की दृष्टि पड़ते ही वह भयभीत हो उठी।

'आओ देवकी,' अक्रूर ने कहा। 'अपने अन्धक सरदार प्रद्योत को तो तुम पहचानती हो न ?'

देवकी एकटक प्रद्योत को देखती रही। वह उसे तत्काल पहचान गई। देखते-देखते वह भय से पीली पड़ने लगी, उसके ओष्ठ कम्पित हो उठे। किसी प्रकार अपनी मौन स्वीकृति देते हुए उसने सहारे के लिए द्वारस्तम्भ को पकड़ लिया; लगा जैसे वह अभी मूर्च्छित हो जाएगी।

प्रद्योत को भी मूर्छा जैसी आने लगी। यह वही राजकुमारी है जिसे

उसके स्वामी कंस ने विवाहोत्सव के अवसर पर रथ से खींच लिया था और तब वह अपने स्वामी के बगल मे ही खड़ा था; इसी के नवजात पुत्रों की—एक के बाद एक की—कंस ने हत्या कर डाली और तब भी वह अपने स्वामी के बगल में ही खड़ा था, और आज देवकी के पुत्र की हत्या भी कंस उसी के सहयोग से करना चाहता है। असह्य लज्जा की वेदना से वह धरती में गडा जा रहा था। भयातुर नेत्रों से देवकी एकटक उसकी ओर इस प्रकार देखती रही, जैसे विषधर नागराज की ओर कोई एकटक देखता रह जाता है। इस दयनीयता का अनुभव कर प्रद्योत का कंठ अवरुद्ध हो गया, उसके नेत्र सजल हो गए।

प्रयत्नपूर्वक हाथ जोड़कर वह धरती पर नतमस्तक हो गया।

'देवकी, प्रद्योत के साथ वार्ता करके मैं शीघ्र ही तुम्हारे पास आऊँगा,' अक्रूर ने कहा।

'बहुत अच्छा', देवकी ने दबे स्वर से कहा और नेत्रों में आए आँसुओं को पोछती वह वहाँ से चली गई।

प्रद्योत न तो कुछ बोल सका और न ही अक्रूर की ओर पुनः उसे देखने का साहस हुआ। वह देवकी के विचित्र पागलपन के सम्बन्ध में सुन चुका था। एक नन्हे-से बालक की स्वर्णप्रतिमा बनाकर वह दिन-रात उसकी पूजा किया करती थी; उस बाल-प्रतिमा के समक्ष वह दुलार-भरे गीत गाती, उसे स्नान कराती, वस्त्र पहनाती। ये सभी बातें वह सुन चुका था। उसके मस्तिष्क में एक नया ही विचार उत्पन्न हुआ। वस्तुतः वह उस स्वर्ण-प्रतिमा के समक्ष गीत नही गाती थी—वह तो उस बालक के लिए गाती थी, जो सोलह साल पूर्व उससे छीन लिया गया था और जो अब नन्द के पुत्र के रूप मे रह रहा है—और जिसका वध करने के लिए वह स्वयं अधम कंस की सहायता कर रहा है। असह्य वेदना से उसका हृदय कराह उठा।

प्रद्योत की इस असहनीय वेदना को अक्रूर समझ गए।

'वसुदेव के पास जाना क्या तुम पसन्द करोगे? उन्हें स्वयं जाकर निमन्त्रित करो,' अक्रूर अपनी अतल अन्तर-सूझ से बोले।

'नही, नहीं, मैं ऐसा नहीं कर सकता। उनसे मिलने का साहस

मुझमें नही है,' प्रद्योत ने उत्तर दिया।

'देवकी दिन-रात जिसकी पूजा-अर्चना करती रहती है, उस देव-प्रतिमा का दर्शन तो करोगे न ?' अक्रूर रोगी की दवा करनेवाले एक अनुभवी वैद्य की भाँति मुस्कराते हुए बोले।

'नही, नही, नही; कदापि नहीं। मै पुनः उनके समक्ष उपस्थित होने की धृष्टता नही कर सकता।' विनम्र भाव से हाथ जोडते हुए प्रद्योत ने कहा, 'मैने उनका बहुत बड़ा अनिष्ट किया है।'

. 'वह तो अति उदार-हृदया है। वह तुझे तत्काल क्षमा कर देगी। कर देगी क्या, कर दिया होगा। अचानक तुझे यहाँ देखकर क्षण-भर के लिए भयभीत हो गई थी, बस !' प्यार से प्रद्योत की पीठ थपथपाते हुए अक्रूर ने कहा।

'आपकी अति कृपा है महाराज ! अब मुझे जाने की आज्ञा दीजिए,' प्रद्योत ने कहा।

'ठहरो, अपने मन को कुछ शान्त कर लो, तब जाना, अगर जाने की ही इच्छा है तो,' अक्रूर ने कहा,'मानव-मात्र पर ईश्वर की कृपा होती ही है। उसके लिए योग्य समय की प्रतीक्षा करनी चाहिए और तुम्हारे लिए वह समय अब आ चुका है।'

प्रद्योत उठ खड़ा हुआ और नतमस्तक हो द्वार की ओर बढ गया।

प्रद्योत के साथ द्वार की ओर जाते समय अक्रूर ने पुनः मधुर एवं मननीय स्वर मे कहा, 'जब ईश्वर के अनुग्रह का अवसर आए तो उसे ठुकराना नहीं चाहिए, उसका स्वागत करना चाहिए ! हम नश्वर लोगों के लिए ईश्वर को पहचानने का मार्ग भी यही है।'

प्रद्योत एक झटके के साथ रुका और अक्रूर की ओर मुड़कर कहने लगा, 'महाराज, भगवद्कृपा का पात्र सम्भवतः मैं कभी भी नही बन सकता। मैं इसके योग्य कदापि नही।' विचित्र रूप से पुनः अक्रूर की ओर मुड़ते हुए उसने बहुत ही धीरे से पूछा, 'वसुदेव का आठवाँ पुत्र जीवित है न ? और वह वृन्दावन मे है, यह भी सत्य है न ?'

भयातुर नेत्रों से अक्रूर ने प्रद्योत की ओर देखा। क्या रहस्य खुल गया ? 'किसने कहा तुमसे ?' पुनर्स्वस्थ होते हुए अक्रूर ने पूछा।

'मृत्यु के समय यह वात प्रलम्ब ने महाराज को बनाई थी ।'

'ओह !' अकस्मात अक्रूर के मुख से निकल पड़ा। उनका हृदय तीव्र गति से धडकने लगा।

भयातुर प्रद्योत चतुर्दिक् देखने लगा। जब उसे विश्वास हो गया कि उनकी बातें कोई नही सुन रहा है, तो धीरे से उसने कहा','चिन्ता न कीजिए महाराज ! उनका कोई वाल भी वॉका नही कर सकता। वह तो ईश्वर है और हम सवका उद्धार करने के लिए ही इस धरती पर अवतरित हुए है।'

और वह द्रुतगति से बाहर चला गया।

२८

कंस का आमन्त्रण

कंस के पिता उग्रसेन महत्त्वपूर्ण अवसरो पर यादव सरदारो को राजसभा मे बुलाना कभी नही भूलते थे; परन्तु पच्चीस वर्षो से भी कुछ अधिक समय से कंस ने एक बार भी उन्हे आमत्रित करना उचित नही समझा। इसलिए इस बार मथुरा से निमत्रण मिलने पर सभी आश्चर्य में पड़ गए। कुछ शंका भी उन्हे हुई, इसलिए अपने अग्रज वसुदेव और अक्रूर से उन्होने सलाह माँगी। कस की मथुरा से अनुपस्थिति के बीच उन्होंने अपनी खोई सत्ता पर्याप्त रूप से हस्तगत कर ली थी, पर वे यह भी जानते थे कि कस स्वभाववश उसे वापस छीन लेने मे कोई कसर न उठा रखेगा।

जिस धनुर्यज्ञ की योजना करने का कस ने निर्णय किया था, उसमे

रक्तपात अवश्यम्भावी था। यथेच्छ खानपान के बाद, विजयोन्मत्त सैनिक अथवा मल्ल स्वामी की आज्ञा के बिना भी ऐसे अवसर पर निरकुश हो जाते थे। इसके अतिरिक्त दुष्ट, पर यादव सरदार प्रद्योत को पदच्युत कर राजमहल के रक्षण का भार मगध के राजकुमार वृत्रघ्न जैसे एक अजाने परदेशी को सौपा जाना भी अमंगल का सूचक था। यादव सरदारो को लगा कि दाल मे कुछ काला जरूर है, इसीलिए गुप्त मत्रणा कर सभी ने निश्चय किया कि किसी भी प्रकार कस का मुकाबला तो करना ही होगा—केवल उसकी ओर से प्रथम आक्रमण की उन्हे अपेक्षा थी।

नियत समय पर सभी आ पहुँचे। सशस्त्र तथा आन्तरिक क्रोध से भरे हुए ये प्राय. पचास सरदार तथा अग्रज थे। मथुरा मे आकर उन्होने देखा कि वृत्रघ्न के मातहत सारे महल मे स्थान-स्थान पर मगध के योद्धाओ की नयुक्ति की गई है। इसीसे उन्होने अनुमान लगा लिया कि हमारे प्रति कंस की क्या भावना है।

राजसभा में लाए जाने पर महाराज उग्रसेन स्तब्ध रह गए। विशाल और वैभवशाली होने पर भी जिस महल में उन्हें नजरबन्द किया गया था, वह कारागार के समान ही था। वहाँ रहने पर उनका बाहर से तो सम्बन्ध ही टूट गया था। वह असमजस में पड़े, धीरे-धीरे शंकातुर भाव से चलकर अपने पुत्र कस के समीप ही राजगद्दी पर बैठ गए और काँपते हाथों से तकिये का सहारा ढूँढने लगे। महाराज उग्रसेन की बगल में सेनापति प्रद्योत के पितामह और उग्रसेन के चाचा, नब्बे वर्ष से भी अधिक वय के, अन्धकवश के आर्य बाहुक बैठे थे। राजसभा के कक्ष में जब उन्होने अचानक प्रवेश किया, तब सभी लोग आश्चर्यचकित रह गए। कई वर्षो से वे अपने महल मे एकान्तवास करते हुए भगवान् शंकर की आराधना कर रहे थे। सरदारो को लगा कि आज कुछ नवीन अवश्य होनेवाला है।

बाहुक की बगल में शूर यादवो के सरदार वसुदेव बैठे थे और वह किसी आन्तरिक पीड़ा से व्यथित-से नजर आ रहे थे। उनके जैसे सरल स्वभाव के मनुष्य अपने हृदय की पीड़ा को छिपा नहीं सकते। वह उनकी मुखमुद्रा, आँखों तथा शरीर के हाव-भाव से स्पष्ट प्रकट हो जाती

है। वहाँ उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति की निगाहों से यह छिपा न रह सका कि वह इस सभा के परिणाम के विषय मे चिन्तित हैं।

कस की दूसरी ओर कस का भाई देवक तथा साधुमना अक्रूर बैठे थे। नम्र तथा सरल स्वभाव के अक्रूर की ओर सभी सरदार सम्मान की दृष्टि से देखते थे। अक्रूर की बुद्धिमत्ता में सभी को विश्वास था। उनकी बगल में कठोर मुखमुद्रा धारण किए प्रद्योत बैठा था। वह अशान्त था और बार-बार भिन्न-भिन्न सरदारों की ओर देख रहा था। वह जानता था कि सभी का उसके प्रति द्वेष-भाव है, और अब तो वह अपने स्वामी का भी कृपापात्र नही रहा। उसके बगल मे उसके दो भाई बैठे थे और दूसरे दो भाई कंस के पीछे खड़े थे। कस जब बाहर जाता, तब परिचारको के रूप मे वही उसके साथ रहते।

इनके अतिरिक्त और भी कई लोग ढाल-तलवार से लैस होकर वहाँ आये थे। सभी को आशंका थी कि आज कुछ भयंकर काण्ड होनेवाला है, और इस सभा के परिणामस्वरूप विग्रह फटे बिना नही रहेगा। परन्तु कस ने तो सभी का खूब मिठास से, मुस्कराकर स्वागत किया; प्रत्येक के पास जा-जाकर उनके तथा उनके परिवार के कुशल-समाचार पूछे। फिर सभी को आश्चर्य में डालते हुए, दोनो हाथ जोड़कर वह अपने वृद्ध पिता तथा अन्धक की ओर मुड़कर बोला, 'पूज्य पिताजी, पूज्य दादाजी तथा बन्धुओ, मैने आप सबको धनुर्यज्ञ मे भाग लेने के लिए इसलिए आमंत्रित किया है कि मैंने अपने बाहुबल से यादव राज्य का विस्तार किया है और मथुरा अब शक्तिशाली राज्य बन गया है। अपनी प्राचीन परम्परा से तो आप सभी परिचित ही है। मेरी इच्छा है कि इस यज्ञोत्सव को सफल बनाने में आप सब मेरी सहायता करें।'

कोई कुछ नही बोला। किसी की समझ मे नही आया कि इतने विनम्र निवेदन के पीछे क्या रहस्य है।

'सात दिनों तक यह उत्सव चलेगा,' कस ने अपना भाषण जारी रखा, 'उत्सवकाल के मध्य दीपमालाएँ सजाई जाएँगी तथा नृत्य एव संगीत के जलसे होगे। मल्लयुद्ध तथा शारीरिक बल के अन्य प्रयोग भी किए जाएँगे। इनमें भाग लेने के लिए विदेशी पहलवान भी आये है।

योग्य, विधिवत् धनुष तैयार करने की आज्ञा मैंने दे दी है। उत्सव के अन्त मे जो कोई इससे अधिकतम दूरी तक वाण छोड सकेगा, उसे मैं यथाशक्ति पुरस्कार दूँगा।'

सरदारो ने मात्र मस्तक हिलाकर इसका उत्तर दिया।

'इस उत्सव के लिए जो धनुष मैने तैयार कराया है, उमे कुछ ही वीर उठा पाएँगे,' कस ने कहा, 'उत्सव का प्रारम्भ होने पर तरुण यादव अपने बल-कौशल का यथेष्ट परिचय दे, यही मेरी कामना है। मल्लयुद्ध की कला मे हम यादव प्रवीण है। चाणूर तथा मुष्टिक भी इस कला मे अत्यन्त पारगत माने जाते है। मै चाहता हूँ कि तरुण यादव उनके साथ दो-दो हाथ करे और दुनिया को बता दे कि जिस कला मे अपूर्व दक्षता हमारे पूर्वजों ने प्राप्त की थी, वह हमने गँवाई नही है।'

अब तक मौन वैठे हुए सरदारों की ओर पहली वार वोलते हुए अक्रूर ने कहा, 'महाराज, आपने हमे निमन्त्रित किया, इसके लिए मुझे वास्तव में अत्यन्त प्रसन्नता है। मै आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यादव सरदार अपने धर्म का पालन करने मे कभी पीछे नही हटेगे।'

'वृष्णिश्रेष्ठ, मै जानता हूँ कि आप अपने धर्म का पालन अच्छी तरह करते है। अपनी प्राचीन परम्परा से तो आप सुपरिचित है ही।' कस ने कहा।

'प्रभु, अपने पूर्वजों की परम्परा से आप स्वयं कम परिचित नही,' हाथ जोड़कर अक्रूर ने कहा, 'हमारे हृदय के भावों को व्यक्त करने की अनुमति यदि आप दे तो मै निवेदन करूँगा कि उदारचरित पूज्य महाराज उग्रसेन इस महल में आकर स्वय इस उत्सव का अध्यक्षपद ग्रहण करें। आप पधारेंगे न महाराज ?'

विवश भाव से महाराज उग्रसेन ने अपने पुत्र की ओर देखा। अक्रूर की इस प्रार्थना से उन पर कौनसी नई विपत्ति आ सकती है, यह समझने का उन्होने प्रयास किया।

'क्यो नही !' कंस ने कुछ हिचकिचाहट के साथ कहा, 'पूज्य पिताजी अवश्य पधारेंगे। यही तो हमारे स्वामी और कर्त्ता है।' सभी ने उसके वचनो में निहित कटाक्ष को अनुभव किया। तब कंस ने दरवाजे की

ओर देखा और वहाँ पर खड़ा मगध का राजकुमार खण्ड से बाहर चला गया। तुरन्त ही भिन्न-भिन्न द्वारो से लगभग पचास योद्धा धनुष-बाण तथा ढाल-तलवार से लैस सभाभवन में प्रवेश हुए। मगध का राजकुमार वापस आकर अपने स्थान पर, प्रद्योत के दोनो छोटे भाइयो की बगल मे, खड़ा हो गया।

'अपनी इस सभा मे परदेशियों को क्यो बुलाया गया है ?' रोष-पूर्वक बाहुक ने प्रश्न किया। उनकी मुखमुद्रा कठोर हो गई।

अभिमान से जरा हँसकर कंस ने कहा, 'विजय-प्राप्ति मे इन वीर योद्धाओ ने हमारी सहायता की है। यज्ञोत्सव मे हमारी मदद करने तथा उसमे भाग लेने के लिए ये यहाँ आये है।' फिर उनकी ओर देखकर कहा, 'आप सब लोग बैठे।' और सरदारो को लक्ष्य कर बोला, 'भाइयो, मेरी इच्छा है कि आप इनका परिचय प्राप्त करे। वृत्रघ्न अत्यन्त शक्ति-शाली पुरुष है, वीर योद्धा है। मेरे साथ वह बारह वर्ष रह चुका है, इसलिए अपने मे से ही एक है।'

'महाराज हमसे और क्या अपेक्षा रखते है ?' अक्रूर ने पूछा।

'विशेष तो कुछ नही,' कंस ने कहा, 'परन्तु हाँ, हृदय खोलकर एक बात आप सबसे ज़रूर कहनी है, और वह है सरदार वसुदेव के विषय में।'

'मेरे विषय मे ?' आश्चर्य से वसुदेव ने प्रश्न किया।

'हाँ, आपके विषय मे—शूरश्रेष्ठ !' तीव्र कटाक्ष करते हुए कंस ने कहा, 'देवकी की कोख से जो नया पुत्र हो, उसे सौंप देने का आपने मुझे वचन दिया था और आपको सत्यवादी मानकर देवकी को मैंने जीवित रहने दिया। परन्तु आपने अपने वचन का भग किया और देवकी के आठवे पुत्र का अपहरण करा दिया। मुझे मालूम है कि यह पुत्र इस समय वृन्दावन में है। ग्वालों के सरदार नन्द के पुत्र के रूप मे लोग उसे जानते हैं। क्या यही क्षत्रिय का धर्म है ?'

यादव सरदारों के हृदय मे कंस के ये वचन सुनकर एक अभिनव भाव का सचार हुआ। तो क्या देवकी का आठवाँ पुत्र जीवित है ? नारदमुनि की भविष्यवाणी सचमुच ही सिद्ध होगी ? सभी के मन मे ये प्रश्न एकाएक उठ आए।

वसुदेव की भृकुटी तन गई। क्रोधपूर्वक वह इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए प्रस्तुत हुए; परन्तु आर्य अन्धक ने हाथ उठाकर उन्हे रोका। 'वसुदेव, जरा ठहरो!' उस वयोवृद्ध पुरुष ने कठोरता से कहा, 'उग्रसेन के पुत्र, तुम क्षत्रिय के धर्म का उल्लेख करते हो, तुम!'

कस आश्चर्यचकित हो गया। उसने कभी सोचा ही नही था कि राजसभा मे वृद्ध अन्धक आयेंगे। वह जानता था कि उनकी बात काटना किसी तरुण के लिए अशोभनीय था। उसने पूछा, 'मै उल्लेख क्यो नही कर सकता?'

'क्यो नहीं कर सकते, जानना चाहते हो? तो सुनो उग्रसेन के पुत्र!' अन्धक ने कहा, 'अपने पिता को बन्दी बनाना क्या किसी उत्तम क्षत्रिय कुल के वंशज का काम है? देवकी तथा वसुदेव को उनके विवाह के तुरन्त बाद ही कारागार मे डालना क्या क्षत्रियोचित कर्म है? एक माता की, और वह भी अपने चाचा की लड़की की, आठ-आठ सन्तानों की हत्या करना क्या वीर क्षत्रिय का धर्म है? किशोर अवस्था मे ही बालक की हत्या करवाने का प्रयास करना, क्या धर्म का काम था?' वृद्ध अधक की वाणी समस्त सभागृह में गूँज उठी, 'मुझे अब बहुत जीना नहीं है। युवावस्था में साक्षात् यम से भी मैं डरता नही था। वर्षों से जो वात अपने दिल मे मै छिपाये था, वह आज तुम्हे साफ-साफ कह देता हूँ। जैसे-जैसे पाप कर्म तुमने किये है, उनका नाम भी किसी ने नही सुना होगा। यादवों के नाम पर तुमने कलक लगाया है।'

ज़रा-सा सुस्ताने के लिए कुछ देर रुककर अंधक ने फिर कहा, 'वसु-देव का पुत्र जो भी हो, जहाँ भी हो, तुम्हें उससे क्या? वसुदेव पर तुमने कम अत्याचार नही किये है, अब और अधिक जुल्म मै तुम्हें नही करने दूँगा।'

क्षण-भर के लिए तो कंस अपना आत्म-नियन्त्रण खो बैठा। अजाने ही उसका हाथ तलवार की मूठ पर चला गया। अपने पीछे खड़े प्रद्योत तथा वृत्रघ्न की ओर उसने दृष्टिपात किया। अक्रूर ने परिस्थिति को भाँपकर प्रद्योत की ओर देखा और फिर नम्रता तथा सरल भाव से कहा, 'महाराज, क्रोध के कारण विवेक-बुद्धि न खो बैठें! क्रोध तो

अन्धा होता ही है। वसुदेव की आठवीं सन्तान के बारे मे आप जानना चाहते हैं न ?'

'हाँ।''

'देवकी की आठवी सन्तान पुत्र ही था। आप जानना चाहते हैं कि वह वृन्दावन मे है या नहीं ? हाँ, वह वही है। पर, यह छल आपके साथ मैंने किया था। मैंने ही देवकी के पुत्र को ले जाकर उसके स्थान पर नन्द की पुत्री को रखने की योजना बनाई थी।'

'तो तुम्हारी थी यह योजना ? किस हेतु ?' अपने बढ़ते हुए क्रोध को किसी तरह दबाकर कंस ने पूछा।

'देवकी के सभी पुत्रों की हत्या करने के पाप से आपको बचाने के लिए,' अक्रूर ने हँसकर कहा, 'मैं आपको स्वय अपने से ही बचाना चाहता था।'

'तो नन्द का पुत्र कृष्ण देवकी की ही आठवी सन्तान है, यह बात सच है न ?' कस ने प्रश्न किया।

'हाँ।' अक्रूर ने जवाब दिया।

पल-भर के लिए कंस का शरीर क्रोध से काँप उठा। तो उसका हन्ता अन्ततः बच ही गया ! फिर भी स्वयं नियन्त्रण रखते हुए उसने मुस्कराकर कहा, 'क्या मैं इतना दुष्ट हूँ, अक्रूर ? ये तो सब बीती बाते है। मैं तो इन्हें भूल ही गया था और तुमसे भी अनुरोध करता हूँ कि इनको भूल जाओ। देवकी का पुत्र जीवित है, तो उसे यहाँ अवश्य बुलाना चाहिए।'

'उसे आप यहाँ क्यों बुलाना चाहते हैं ?' अक्रूर ने पूछा।

'मेरी इच्छा है कि वह भी धनुर्यज्ञ मे भाग ले। उसके पराक्रमों के बारे में मैंने काफ़ी सुन रखा है। क्या ही अच्छा हो, यदि वह यज्ञ के धनुष को उठा सके और उस पर प्रत्यंचा तानकर बाण छोड़े ! जैसी प्रशसा लोग उसकी करते हैं यदि वह वैसा ही है, तो फिर धनुर्यज्ञ की प्रतिद्वन्द्विता में वह अवश्य ही सफल होगा और मल्लयुद्ध में भी विजयी हो सकेगा।'

'यह कोई नई युक्ति है क्या, तरुण कुमार ?' आर्य बाहुक ने पूछा।

'इसमें युक्ति कैसी ?' कंस बोला।

'मुझे तो वास्तव में प्रसन्नता हुई है यह समाचार सुनकर ! आप क्या प्रसन्न नही हुए पूज्य पिताजी ?' उग्रसेन की ओर मुडकर कस ने कहा ।

सरदार उसकी मीठी वातो को अत्यन्त आशंकित हो सुन रहे थे । परन्तु यह भी उन्हे विश्वास था कि किसी भी परिस्थिति को सँभाल लेने की योग्यता अक्रूर मे है ।

'भगवान् शकर जो करते है, अच्छा ही करते है,' वृद्ध महाराज ने कहा ।

'अक्रूर, तुम्हे अब मेरा एक काम करना पड़ेगा,' कंस ने कहा, 'कृष्ण को यहाँ ले आओ, रोहिणी के पुत्र को भी ! मै समझता हूँ कि दोनो साथ-साथ ही रहते है । इन दोनो की देखरेख ठीक ढंग से हो रही है, यह जानकर मुझे परम सन्तोष हुआ । मेरी बड़ी इच्छा है कि धनुर्यज्ञ मे ये दोनों भाग ले । उनके साथ नन्द को भी वार्षिक कर लेकर आने के लिए कहना । तुम्हारी क्या राय है, वसुदेव ?'

इससे पहले कि वसुदेव उत्तर दे, अक्रूर ने तुरन्त ही कहा, 'महाराज, मैं वृन्दावन जाकर दोनों बालको को यहाँ ले आऊँगा ।'

२९

आनन्द और सौन्दर्य की देवी

वृन्दावन के लोगों की आँखों में आज नीद नहीं थी । रात्रि का प्रथम पहर कभी का व्यतीत हो चुका था, फिर भी सभी स्त्री-पुरुष अपने-अपने चबूतरे पर बैठे अथवा चौक में एकत्र होकर बातें कर रहे थे । सभी की ज़बान पर एक ही विषय की चर्चा थी—उनके प्रिय कन्हैया और

दाऊ (बलराम) को कंस ने मथुरा बुलाया था; साथ ही बाबा नन्द को भी अपने सगे-सम्बन्धियों सहित आने का आमन्त्रण था। वार्षिक कर भी ले आने की ताकीद थी। युद्ध मे जो विजय कंस प्राप्त कर सका था, उसी के उपलक्ष्य में एक विराट उत्सव का आयोजन किया गया था जिसमे धनुर्यज्ञ भी होनेवाला था। अन्य लोगो को भी इस उत्सव मे भाग लेने के लिए बुलाया गया था।

वैसे मथुरा मे होनेवाले प्रत्येक उत्सव के प्रति गाँव के लोगो मे भारी आकर्षण स्वभावत: ही रहता, परन्तु इस बार बात कुछ न्यारी थी। कस सभी के द्वेष का पात्र बना हुआ था, सो उसका कृष्ण-बलराम को बुलाना सभी को अखरा, आश्चर्य भी कम नही हुआ। लोगो को लगा कि इसमे अवश्य ही कोई गूढ रहस्य होना चाहिए। शारीरिक बल तथा अन्य प्रकार की प्रतियोगिताओ में भाग लेने के लिए वैसे सभी तो आमन्त्रित थे, परन्तु यह बात किसी से छिपी नही रही कि वृन्दावन आते ही अक्रूर बाबा नन्द और कृष्ण-बलराम के साथ गुप्त मन्त्रणा करने बैठ गए थे और जब वे बाहर निकले तो नन्द के चेहरे पर चिन्ता के भाव स्पष्ट थे, तथा आँखो मे एक अज्ञात भय का चिह्न दिखाई पड़ता था। कस को कर के रूप मे अनाज-गाये इत्यादि जो कुछ देना था उन्हे तैयार रखने तथा सवेरा होते ही गाड़ियो को ले आने का आदेश उन्होंने अनमने मन से दिया। माता यशोदा की आँखो में आँसू थे। इसीसे सभी के चित्त खिन्न थे और सोने का समय कभी का हो जाने पर भी आज कोई सो नही पा रहा था। वातावरण में एक प्रकार की बोझिलता तथा चिन्ता के भाव स्पष्ट परिलक्षित किए जा सकते थे।

अचानक चाँदनी रात की स्तब्धता भग हुई और एक मधुर स्वरलहरी से सारा गाँव गूँज उठा। कन्हैया रास के लिए गोप-बालाओं को बुला रहा था और उसकी चिरपरिचित, जादू की बाँसुरी सभी का मन उद्वेलित कर रही थी। सभी स्त्रियाँ—मात्र युवतियाँ ही नही, प्रौढ़ एवं वृद्धाएँ भी—जमुना के तीर पर दौड़ी गईं। साज-शृंगार का समय नहीं था, अलंकार धारण करना या बिन्दी लगाना किसी को याद ही न रहा। उनका प्रिय कान्ह जो उन्हें बुला रहा था! कोई-कोई तो साड़ी पहनती-

पहनती ही बाहर निकल आई। हवा में उड़ते हुए बिखरे बाल और अस्त-व्यस्त अवस्था में वे सभी अधीर हो कन्हैया के पास हाँफती हुई पहुँचीं।

राधा ने भी सुन रखा था कि उसका प्रिय कान्ह दूसरे दिन सवेरे पौ फटने से पहले ही मथुरा के लिए रवाना हो जाएगा, सो सूनी शैया पर तडपती हुई वह चिन्तातुर लेटी थी। उसका हृदय किसी अकथ्य वेदना से छिदा जा रहा था। उसने भी बाँसुरी का सुर सुना और बेभान होकर वह उसी ओर दौड पड़ी जिधर उसका सर्वस्व उसे बुला रहा था।

सामान्यतः पुरुष-वर्ग को बाँसुरी से इतना लगाव नहीं था; परन्तु इस बार तो वे भी उसकी मोहिनी से खिंचे हुए स्त्रियों के पीछे-पीछे चले आए। कृष्ण को जब उन्होंने रास के लिए प्रस्तुत देखा तो सभी 'थै-थै' कहकर ताल देने लगे। पैरों की पायले झनझना उठी, पखावज बज उठे, युवा स्त्री-पुरुषों का एक बड़ा घेरा बना और उसके बीच में एक छोटा घेरा और बना। तब सभी तालियाँ देते हुए कृष्ण के चारों ओर नाचने लगे। राधा कृष्ण के निकट जाकर खड़ी हो गई। आनन्द और गर्व से उसकी छाती धड़क रही थी और होंठों पर एक मधुर मुस्कान प्रस्फुटित थी। अपनी दृष्टि कृष्ण के मुखारविन्द पर टिकाए वह सम्पूर्णतः रसविभोर थी। कृष्ण ने बाँसुरी अपने कमरबन्द में खोंस ली और राधा के साथ नृत्य करना शुरू किया।

चारों ओर गीत तथा नृत्य की धूम मच गई। रासलीला का अपूर्व आनन्द सभी पर छाया था। सभी मदहोश थे और अत्यन्त उत्साह के साथ 'थै-थै-थै' कहकर नाच रहे थे। प्रारम्भ में वे अपने हाथों तथा पैरों से ताल दे रहे थे; बाद में अपने-अपने कमरबन्द मे से छोटे-छोटे डण्डे निकालकर उन्हें दोनों हाथों में लिये, एक बार अपने ही हाथ के डण्डे से और दूसरी बार अपनी जोड़ के व्यक्ति के डण्डे से लड़ाकर ताल दे रहे थे। इस अनुपम नृत्य की छटा को देखकर आकाश और धरती भी मानो रास में भाग लेने के लिए गोल-गोल घूमने लगे। चन्द्रमा प्रणय-माधुरी बिखेरता हुआ आकाश में स्थिर हो गया। कलकल निनाद करती हुई यमुना भी मानो गीत गाने लगी।

स्वर्ग के देवताओं ने इस मधुर दृश्य को देखा और आनन्द से वे गद्गद हो उठे। चन्द्रकिरण के कुसुमो की वृष्टि उन्होंने की। एक अपूर्व आनन्द और उल्लास से सभी विभोर थे। कई गोपालवालाएँ तो मदहोश होकर गिर पडी; कितनी ही श्रमविह्वल तथा आनन्दातिरेक से चूर-चूर होकर एक ओर जा बैठी। अपने शरीर का बोझ भी सँभालना उनके लिए कठिन हो रहा था। बहुत-से गोप हँसने-हँसने और हाँफ-हाँफकर जमीन पर लोट-पोट होने लगे।

इतने मे बाँसुरी की मधुर ध्वनि फिर से सुनाई पडी; किन्तु इस बार वह कुछ दूर से आ रही थी। सभी ने देखा कि जहाँ सब लोग उपस्थित थे वहाँ से एक छाया-आकृति अकस्मात् उठ खडी हुई और जिधर से बाँसुरी के स्वर आ रहे थे उस ओर चल दी। पलक झपकते ही दोनो आकृतियाँ पास के वन मे अदृश्य हो गई। इस घटना को सभी ने समझ लिया। कुछ लोगो के हृदय मे तो ईर्ष्याग्नि भी भड़क उठी; परन्तु सभी लोग चित्र-लिखित-से इस प्रकार बैठे रहे मानो कुछ हुआ ही नहीं। किसी अद्भुत प्रणय के सौन्दर्य से प्रभावित हो वे ठगे-से मौन बैठ रहे थे।

'राधा, तूँ थक गई है, तुझसे चला नही जाएगा। ले, मैं तुझे उठा लेता हूँ।' कृष्ण ने कहा।

कृष्ण उसे गोद में उठा ले, इस सुखद कल्पना से राधा के गाल लाल हो उठे; परन्तु मर्यादा तो रखनी ही पड़ती है, इसलिए यह स्वीकार कैसे किया जाए ? उसने कहा, 'नहीं, मैं चल सकूँगी।'

'तुझसे नही चला जाएगा। मैं तुझे बहुत दूर ले जाना चाहता हूँ।' कृष्ण ने कहा और उसे अपने हाथो मे पकड़कर ऊपर उठा लिया। राधा के सारे शरीर मे एक आनन्द-सिहरन दौड गई; उसका हृदय धड़कने लगा। एक प्रकार के मीठे दर्द का एहसास उसे हुआ। एक अद्भुत आनन्द का अनुभव वह उस समय कर रही थी। कृष्ण के कन्धों पर माथा टेककर वह उसके बाहुपाश में बँध गई।

ऊँचे-ऊँचे वृक्षो के सघन पल्लवों के छाए रहने के कारण मार्ग पर झिलमिल प्रकाश की विविध आकृतियाँ बन गई थीं। उन पर होकर

दृढ़ता से डग भरते हुए कृष्ण ने वन मे प्रवेश किया। उस चंचल प्रकाश मे राधा ने प्रेम से प्रदीप्त कृष्ण की आँखो को निहारा और देखा कि वे आँखे उसकी आँखो मे मिल गई है। उसके अग-अग मे एक आनन्द-पुलकन और एक रोमाच हो उठा और उसे लगा कि जिन हाथो ने उसे थाम रखा है, वे भी उसी प्रकार पुलकित एव रोमाचित है।

'राधा !' कृष्ण ने कहा।

'कान्हा !' राधा ने उत्तर दिया।

'आज की रात सभी रातो मे अनोखी है,' कृष्ण ने कहा।

'कैसा अद्भुत था आज का रास !' राधा ने उत्तर दिया।

'और वैसी ही अद्भुत तूँ भी है राधे ! बल्कि उससे भी अधिक !' कृष्ण ने धीरे से कहा और अपना मुख झुकाकर राधा के होंठो का मधु स्पर्श किया। आनन्द-समाधि मे डूबकर राधा ने आँखे मूद ली। परम आनन्द से विभोर हो आत्मसमर्पण करती हुई वह उससे लिपट गई।

'कान्ह, क्या तू सदा ऐसा ही रहेगा ?' राधा ने प्रश्न किया।

'सदा ही ! जब तक सूर्य और चन्द्र प्रकाशित हैं, तब तक !' कृष्ण ने उत्तर दिया।

'मुझे भूल तो नही जाएगा ?' राधा ने पूछा।

'तुझे भुलाया कैसे जा सकता है ? तू तो मेरी हृदयेश्वरी है—आनन्द की देवी !' कृष्ण ने उत्तर दिया।

दोनों अब खुले मैदान में आ पहुँचे और मित्रों से काफ़ी दूर निकल गए थे। आकाश में उज्ज्वल चाँदनी फैल रही थी। उसके धवल प्रकाश में यमुना का निर्मल नीर चमक रहा था। पीपल के वृक्ष के नीचे सुकोमल तृण-भूमि पर उसने राधा को नीचे उतारा और स्वयं उसके पास बैठ गया। राधा तो अब भी, इस प्रकार उससे चिपटी हुई थी, मानो उससे विलग होना उसे बर्दाश्त ही नही। उसके हृदय मे, शरीर में, अग-प्रत्यग में किसी अकथ्य वेदना का संचार हो रहा था।

अदम्य भावावेग से कृष्ण ने राधा की ओर झुककर उसके ओठो का मृदु स्पर्श अपने ओठों से किया। एक की आत्मा दूसरे की आत्मा में विलीन हो गई। दोनों एकाकार हो गए। जब तक उन दोनों के ओठ एक-

दूसरे से विलग न हुए, कृष्ण ने राधा के गालों को सहलाया। उसके हाथ राधा के स्तन-मण्डल पर बड़ी चचलता से फिर रहे थे और वहाँ से फिर बड़ी सुकुमारता के साथ धीरे-धीरे सरकते-सरकते वे राधा की सुडौल और सुललित देह के प्रत्येक सुन्दर उभार को टटोलते हुए भावार्द्रतापूर्वक उसके अग-प्रत्यग पर थिरक रहे थे। आनन्द की एक मदभरी ऊर्मि उठकर उन्हे अवर्णनीय रस-समाधि मे डुबाए अभेद भाव का अनुभव करा रही थी।

कुछ देर बाद अपनी बिखरी हुई लटों को समेटती हुई राधा उठ बैठी।

'कान्ह, अब हमारा विवाह कब होगा ? तेरे बिना तो मैं रह ही नही सकती।' उसने कहा।

उसकी आँखो की ओर एकटक निरखते हुए कृष्ण मुस्कराया। 'हम सदा एक-दूसरे के साथ ही रहेंगे, राधा ! और फिर, गाधर्व विधि से आज हमारा विवाह भी हो गया—परस्पर देह और आत्मा—शरीर तथा प्राण एकरूप हो गए।'

'झूठे कही के ! गाधर्व रीति से हमारा विवाह कैसे हो सकता है ?' राधा ने पूछा।

'कुछ क्षण पहले हमारा विवाह हो गया कि नही ?' कृष्ण ने प्रति-प्रश्न किया।

'पर तुम कोई राजकुमार तो नहीं हो !' राधा ने कहा।

कृष्ण ने हँसकर उसकी पलकें चूम ली। 'राधा, यदि मैं सचमुच राज-कुमार होऊँ तो ?' कृष्ण ने इस प्रकार पूछा मानो मज़ाक कर रहा हो।

'मेरा तो तूँ राजकुमार ही है, मेरे कान्ह ! तूँ मेरा गोविन्द है—गोपालों का राजा ! और तूँ सदा ऐसा ही रहे, यही मेरी कामना है।'

'राधा, सुन ! मै गोपाल नहीं हूँ। राजकुमार ही हूँ और तूँ राज-कुमारी है।' कृष्ण न गम्भीरतापूर्वक कहा।

राधा आश्चर्य से अवाक् रह गई। कृष्ण कह रहा है वह सच है या नही, यह सोचती हुई वह उसके मुख की ओर निहारती रही।

'इस तरह मेरी ओर क्या ताक रही है, राधा ? तूँ जानती है कि कल मैं मथुरा जा रहा हूँ और वहाँ से शायद वापस न भी आऊँ कुछ दिनों तक।' कृष्ण ने कहा।

'नही, नही, तूँ वापस ज़रूर आएगा—मेरे पास जरूर लौटेगा,' राधा ने कहा ।

'राधा, मै तुझे एक रहस्य की बात कहने के लिए यहाँ लाया हूँ । इसे अब तक तो बहुत थोड़े लोग जानते है, परन्तु कुछ दिन बाद सभी जानने लगेंगे । बरसो से यदुकुल की सन्ताने जिस पराधीनता के बन्धन से जकड़ी हुई है, वह बन्धन मेरे हाथों टूटेगा—नारदमुनि ने यह भविष्य-वाणी की थी ।' उसकी आवाज धीमी और गम्भीर हो गई थी ।

सभीत नयनों से राधा उसकी ओर देख रही थी । फिर वह बोली, 'कान्ह, तूँ क्या कहता है ? क्या कहना चाहता है ?'

'तो सुन ! महर्षि नारद ने यह भविष्यवाणी की थी कि देवकीरानी तथा वसुदेव का आठवाँ पुत्र यादव वश का उद्धार करेगा और उसी के हाथों नराधम कस का विनाश होगा ।'

'हाँ, मैने भी ऐसा ही कुछ सुना था ।'

'देवकी का वह आठवाँ पुत्र मैं ही हूँ ।' कृष्ण ने कहा ।

'तूँ······तूँ······,' राधा इस प्रकार उससे दूर हट गई मानो घबड़ा गई हो ।

'हाँ, जिस दिन मेरा जन्म हुआ उसी दिन पिता वसुदेव मुझे नन्द बाबा के यहाँ पहुँचा गए । बलराम भी शूरोत्तम और देवकी का पुत्र है, रोहिणी का पुत्र नही ।'

'वासुदेव—हमारे महानुभाव महाराज !' विस्मय से आँखे फाड़कर राधा बोली, 'तुम······'

'हाँ, मैं उनका पुत्र हूँ और बलराम भी उन्ही का पुत्र है । कस के कोप से बचाने के लिए हम दोनों को यहाँ लाया गया था ।'

आश्चर्य से स्तब्ध होकर राधा देख रही थी । अभी तक इस बात का पूरा मर्म उसकी समझ मे नही आया था ।

'और यह···' कृष्ण ने कहा ।

'कौन—कंस ?' राधा ने पूछा ।

'हाँ—उसने धनुर्यज्ञ की योजना की है और हम लोगो को वहाँ बुलाया है—शायद वहाँ बुलाकर वह हमारा वध करवाना चाहता है,'

कृष्ण ने शान्तिपूर्वक कहा ।

'वह तो नराधम है—जरूर तुम्हारा वध कराएगा,' राधा बोली ।

'इस विषय मे मुझे कुछ भी शंका नही है—परन्तु मुझे कुछ नहीं होगा इस बारे में भी मै निश्चिन्त हूँ ।'

'ओह, पर वह यदि तुम्हारा वध करवाना चाहे तो तुम क्या करोगे ?'

'मेरा वध वह नही कर सकेगा । धर्म की रक्षा करने के लिए मेरा जन्म हुआ है । सभी लोगो का यही कहना है और मेरा अन्तर भी मुझे यही कहता है । धर्म का उद्धार कर यादवकुल को मै इस अधम बन्धन से मुक्त करूँगा ।'

राधा ने कुछ कहने के लिए मुख खोला, परन्तु तुरन्त ही फिर बन्द कर एक हृदय-विदारक सिसकी लेती हुई धीमे स्वर मे बोली, 'क्या किसी प्रकार तुझे वहाँ जाने से रोका नहीं जा सकता ?'

क्षण-भर तो कृष्ण मौन रहा, फिर बोला, 'नही, किसी प्रकार भी नही ! मथुरा मुझे जाना ही पड़ेगा । यह मेरा धर्म है । कई बार मुझे लगता है कि इस अधमता, इस अत्याचार और भयविह्वलता का निवारण मैं क्यो नही कर सकता ? परन्तु अब तक इस भावना को मैने दबा रखा था । अब मुझे विश्वास हो गया है कि ऐसा किये बिना मेरा निस्तार नही ।'

'फिर मेरा क्या होगा ?' छलकते आँसुओ से भीगे मुख को अपनी छाती पर निढाल कर सिसकियाँ लेते हुए राधा ने कहा, 'तूँ चला जाएगा तो मै क्या करूँगी ? नही कान्ह ! तूँ मत जा ! तुझे जरूर कुछ होगा—कस तो खून का प्यासा है ।'

'राधा, तूँ मेरी जरा भी चिन्ता मत कर । कस का विनाश होगा । धर्म का उद्धार होगा और अपने लोग स्वतन्त्रता के साथ फिर हिल-डुल सकेंगे । तुझे कभी अकेले नही रहना होगा । मेरा कार्य पूरा होते ही मै वापस चला आऊँगा—या तुझे मथुरा बुला लूँगा । फिर तूँ मेरे जीवन का परम आनन्द बन जाएगी, जैसी कि तूँ अब भी है और सदा रही है,' कृष्ण ने कहा और राधा को अपनी छाती से लगा लिया ।

थोड़ी देर तक तो दोनों मौन रहे । फिर राधा ने, इस प्रकार ऊपर

देखते हुए मानो स्वयं से कुछ कह रही हो, कहा, 'कान्ह ! तूँ मथुरा जाकर विजयी होगा, यह मैं जानती हूँ। मैं तो सदा यही मानती आई हूँ कि तूँ देव है। फिर ये लोग तुझे राजा बनाएँगे—तूँ अत्यन्त पराक्रमी बनेगा। लोग तेरे पैर पड़कर तेरी पूजा करेंगे। सभी राजाओं का उद्धारक बनकर तूँ उनके बीच विचरण करेगा !' राधा ने कहा।

'और तूँ बनेगी मेरी रानी ! मेरी जीवन-सहचरी !'

कुछ विचार करती हुई-सी राधा क्षण-भर तो नीची नजरो से जमीन की ओर देखती रही; फिर सिर हिलाकर उसने कहा, 'नही, कान्ह ! मै तो गरीब ग्वाले की पुत्री हूँ। राजकुमारी मै कहाँ से बन सकती हूँ ! तेरी पूजा करने को आतुर और तेरे लिए प्राण भी देने को तत्पर अनेक राजकुमारियो के बीच मैं गाँव की गँवार बाला ही कहलाऊँगी।'

'नही, नहीं, तूँ सबकी शिरोमणि बनकर रहेगी !' कृष्ण ने कहा।

'नही,' राधा ने फिर सिर हिलाकर कहा और इस तरह नदी की ओर देखने लगी मानो किसी विचार में पड़ गई हो, 'फिर तूँ मेरा कान्ह नहीं रह जाएगा। तूँ मुकुटमणि धारण करेगा, शस्त्रसज्जित हो रणक्षेत्र मे जायेगा। बड़े-बड़े वीर योद्धाओ—क्रूर, कठोर, रक्तपिपासु योद्धाओं के बीच विचरण करेगा······नहीं, नही, मै तब केवल भारस्वरूप बन जाऊँगी। उस समय मैं तुम्हारी आनन्दमूर्ति नही बन सकूँगी—तुम्हारी ही देह के एक अंग के समान नही रह सकूँगी—रास मे तेरी जुगल जोड़ी भी नहीं बन सकूँगी······'

कृष्ण कुछ कह न सका।

'कान्ह ! ऐसा कहकर यदि मैं तेरे मन को दुखी करती होऊँ तो मुझे क्षमा करना !' राधा ने कहा। उसकी आवाज़ अब दृढ़ तथा शान्त हो गई थी। 'तेरे साथ मैं मथुरा नही जा सकती। मेरे नयनो में बसे कान्ह के कान में वनफूल तथा हाथ मे बाँस की लकुटी शोभायमान है। मै उसे गायें चराते हुए देखती हूँ। वह बाँसुरी बजा रहा है। वह आनन्दप्रिय है, शूरवीर है। उसके होंठो पर सदा मुस्कान थिरकती रहती है। तूँ राजा बनकर आए तो मुझसे देखा भी नहीं जाएगा······मथुरा जाना तो मेरे लिए असम्भव ही है।'

सिसकियाँ लेती हुई, मानो चक्कर खाकर न गिर पड़े, इस प्रकार वह कृष्ण से लिपट गई। 'कान्ह ! जरा मेरी बात सुन !' राधा ने आगे इस प्रकार कहा मानो वह किसी सत्य का उद्गार कर रही हो, 'मैं जानती हूँ कि अब तूँ वापस वृन्दावन कभी नही आयेगा। और यदि आया भी, तो पहले की भाँति मेरा मनमोहन और जीवन-आधार कान्ह नहीं रहेगा। मुझे यही रहने दे। यहाँ रहकर मैं अपने माता-पिता की सेवा-टहल करूँगी।' अपने हृदय का आवेश दबाकर मानो स्वप्न मे कुछ कह रही है, इस प्रकार फिर बोली, 'अपनी प्रिय यमुना नदी के तीर पर, हृदय की व्यथा को दबाकर, तेरी राह देखती हुई मैं नित्यप्रति घूमा करूँगी, जैसा कि अभी घूमती हूँ। जिस-जिस निकुञ्ज में हमने आनन्द से समय बिताया है उसके आगे से गुजरूँगी। वहाँ के वृक्ष मुझे तेरी बाते कहेगे और तेरे शृंगार के लिए मुझे फूल देगे।'

कुछ देर ठहरकर राधा ने फिर कहा, 'यदि मै मथुरा आ भी जाऊँ तो मुझे मात्र यादवराज के दर्शन होगे—मेरा कान्ह मुझे नही मिलेगा। मैं तो तेरे दर्शन करूँगी इन वृक्षो में, इन लताओ मे, तेरी आवाज सुनूँगी पक्षियो के कलरव मे। तूँ जिस मार्ग से चला जाएगा उसी मार्ग की रज मुझे तेरी पगध्वनि सुनायेगी, और वृक्षों के बीच से, बाँसुरी की स्वर-लहरी के साथ बहती हुई मादक हवा मुझे तेरा सन्देश सुनायेगी। तूँ अभी जैसा है तेरे उसी स्वरूप के गीत गाकर भी शायद वह मुझे सुनायेगी, कान्ह !'

थोड़ी देर दोनों मौन रहे। फिर कृष्ण ने, मानो आँखे खोलकर अत्यन्त दूर की वस्तु का अवलोकन कर रहा हो इस प्रकार, आकाश की ओर देखा। उसके लिए अब किस प्रकार का जीवन अपेक्षित है, यह उसने समझ लिया। गला साफ करते हुए कृष्ण ने कहा, 'राधा, तूँ जो कहती है वह सच है। तूँ यदि मथुरा आ सके तो मुझे बहुत अच्छा लगेगा। यह तो मै देख सकता हूँ कि जैसा मै अभी हूँ वैसा आगे नहीं रहूँगा, और तूँ भी इस समय जो मेरे जीवन की आनन्दमूर्ति है वैसी मनोहर कुसुमकलिका नहीं रह सकेगी। बालरवि के चुम्बन का अर्घ्य स्वीकार करने तथा आनन्द का सौरभ सर्वत्र फैलाने के लिए ही तेरा जन्म हुआ है।'

कुछ देर रुककर कृष्ण ने फिर कहा, 'और देख राधा, तूँ भी यदि मथुरा आकर रहे तो फिर वृन्दावन वृन्दावन नही रहेगा। जब तक तूँ यहाँ रहेगी तब तक यह देवमन्दिर के समान रहेगा और तूँ इस मन्दिर मे आनन्द और सौन्दर्य की देवी बनकर प्रतिष्ठित होगी। तेरा स्मरण करते-करते मैं सदैव नवजीवन प्राप्त करता रहूँगा और सृष्टि के प्रलयकाल पर्यन्त सभी स्त्री-पुरुष तेरा स्मरण करते हुए नवजीवन प्राप्त करेगे।'

राधा को फिर से कृष्ण ने अपने बाहुपाश मे जकड़ लिया, और राधा सिसकियाँ भरती हुई बालक के समान उससे लिपट गई।

'मेरे कान्ह! अपना सर्वस्व मैने तुझे न्यौछावर कर दिया है। केवल एक ही चीज़ मै तुझसे माँगना चाहती हूँ। जब तूँ यहाँ से जाए तब अपनी बाँसुरी मुझे देते जाना। तूँ तो राजकुमार है, और मै एक गरीब ग्वाले की पुत्री हूँ। कोई मुझ पर अँगुली उठाये और मुझे नीचा देखना पड़े, यह मुझसे सहा नहीं जाएगा...' राधा ने कहा।

'समझा! चल, अपने सादीपनि गुरु के पास चले। पवित्र अग्नि की साक्षी देकर हमारा विवाह होगा,' कृष्ण ने कहा, 'और बाँसुरी तथा तूँ तो एक ही है—बाँसुरी तेरे पास ही रहेगी।'

३०

कृष्ण का मथुरा के लिए प्रयाण

प्रात.काल होने से पूर्व ही नन्द और उनके साथी मथुरा की ओर चल पड़े। कस को कर देने के लिए जो सामान एकत्र किया गया था वह पहले ही गाड़ियों पर लाद दिया गया था। अक्रूर ने घोड़ों को नहला-धुला

कर रथ मे जोत दिया था और वे वृन्दावन की सीमा पर कृष्ण-बलराम की राह देख रहे थे। दोनों भाई उस समय गाँव के लोगों से विदा ले रहे थे। आबाल-वृद्ध सभी ग्रामवासी और स्त्रियाँ सहज स्नेह से प्रेरित हो अपने-अपने घर से निकल आए थे। कृष्ण की प्रिय गाये तथा बछड़े भी वे अपने साथ ले आए। रथ के पास खड़े हुए अक्रूर ने देखा कि ग्रामवासियो से घिरे दो बालक उन्ही की ओर चले आ रहे है। अपनी पगड़ी मे खोसे हुए मोरपख से कृष्ण सहज ही पहचाना जा सकता था, और बलराम का परिचय तो उसकी सुन्दर, सुदृढ देह ही दे रही थी।

दोनो भाइयों ने आकर अक्रूर को प्रणिपात किया। अक्रूर ने उन्हें आशीर्वाद दिया। कृष्ण की दृष्टि तब गोपवृन्द के आगे खड़ी माँ यशोदा पर गई। यशोदा बड़ी कठिनाई से अपने आँसुओं को रोकने का प्रयास कर रही थी। कृष्ण माता के पैरों पडा और उनकी चरणरज लेकर अपनी आँखों पर लगाई। उसे उठाकर, यशोदा ने विरह-व्याकुल हो, इस तरह अपनी छाती से लगा लिया मानो उसके प्राण ही कृष्ण मे बसे हों। इसके बाद उन्होंने बलराम को गले लगाया।

पास ही राधा नववधू के परिधान धारण किये और लज्जाशील नवोढा के उपयुक्त घूँघट निकाले खड़ी थी। घनघटा मे से जिस प्रकार सूर्यकिरण चमक उठती है, उसी प्रकार उसकी प्रेमपगी दृष्टि कृष्ण के मुखारविन्द पर बार-बार पड़ रही थी। प्रत्येक दृष्टिपात में अनन्त भक्ति तथा सम्पूर्ण आनन्द-समाधि का भाव था। बदले मे त्वरित दृष्टि तथा मृदु मुस्कान के साथ कृष्ण उससे विदा माँग रहा था। यह सन्देश इन दोनो के अतिरिक्त और किसी की समझ में आए, वैसा न था। बड़ों के सामने उससे कुछ अधिक सम्भव भी नही था।

हाथ जोड़कर कृष्ण ने सबसे विदा ली। बलराम के साथ जब वह रथ मे बैठा तो सबकी आँखे द्रवित थी, सभी के हृदय अधीर थे। अक्रूर के चाबुक फटकारते ही रथ के घोड़े वेग से दौड़ने लगे। कृष्ण-बलराम ने फिर सभी ग्रामवासियो का नमस्कार स्वीकार किया और क्षण-भर तो वे भी विरहपीर से व्याकुल हो गए। तेजी से अदृश्य होते रथ को राधा टकटकी लगाए देख रही थी। जब दृष्टि से वह ओझल हो गया तब

यशोदा माता का हाथ पकड़ने का प्रयास किया और एक अत्यन्त गहरे दुख से भरी चीख के साथ वह बेहोश हो गई।

विदा का दृश्य देखकर अक्रूर की श्रद्धा डगमगा गई। घुँघराले बाल और अप्रतिम लावण्य वाला यह सुकोमल बालक ही क्या वह तारणहार था जिसकी प्रतीक्षा इतने दीर्घ काल से वह करते आ रहे थे ? कृष्ण के अद्‌भुत पराक्रमों की चर्चा जब बारम्बार उन्हे सुनने को मिलती तब वह अवश्य कुछ आश्वस्त हो जाते कि उनका जीवन-ध्येय एक-न-एक दिन अवश्य पूर्ण होगा; परन्तु उन्हें शंका भी होती कि इतने अद्‌भुत पराक्रम क्या इस बालक ने किये होगे ? विशाल स्कन्ध और सुपुष्ट देह वाले उसके भाई ने तो ये पराक्रम नही दिखाये ? अथवा, सम्भव है कि ये मात्र दन्त-कथाएँ हों। लोगो का यह भी कहना था कि वृन्दावन की बालाएँ कृष्ण के पीछे दीवानी हो रही है और कृष्ण बाँसुरी बजा-बजाकर उनका मन मोहता है तथा उनके साथ रासलीला रचता है। मध्यरात्रि मे अचानक एक गोपबाला के साथ विवाह करने का जो वह हठ कर बैठा था इससे तो यही प्रमाणित होता था कि वह शौर्यसम्पन्न विजयी वीर के बदले एक रसिक ही अधिक था। गर्गाचार्य उसे सातवें आसमान पर सदा चढ़ाते रहते थे, पर निश्चय ही अपने शिष्य को समझने में वह भारी भूल भी कर सकते है। क्या वह ईश्वर का अवतार हो सकता है जो नारद की भविष्यवाणी को सिद्ध करेगा ?

कृष्ण अक्रूर की ओर देखकर किंचित् मुस्कराया। अक्रूर को लगा कि इस बालक की मुस्कान सचमुच ही हृदयहारी है। अक्रूर से भी बिना मुस्कराये नही रहा गया।

'चाचा, नन्दबाबा मथुरा कब पहुँचेगे ? हमसे पहले या बाद मे ?' कृष्ण ने पूछा।

'वे लोग दोपहर मे पहुँचेगे। हम आठ घड़ी के भीतर ही पहुँच जायेगे, क्योकि अपने घोड़े बहुत ऊँची जाति के है,' अक्रूर ने उत्तर दिया।

'मुझे तो तभी अच्छा लगता है जब घोड़े खूब जोर से दौड़े,' बलराम ने कहा, 'यदि उन्हे जरा अधिक तेज़ी से दौड़ाया जाए तो हम लोग चार घड़ी में ही मथुरा पहुँच जाएँगे। चाचा, आप घोड़ों को पूरी तेज़ी से नही

दौड़ा रहे है।'

वडो को शोभा दे, ऐसी उदारता से अक्रूर मुस्कराये। दोनो भाइयो में कितना अन्तर था ! बड़ा भाई अवस्था के प्रमाण में शरीर से खूब सुपुष्ट हो गया था। रथ मे प्रथम वार प्रवास करने का आनन्द वह ले रहा था। और यह छोटा भाई कितना आकर्षक और आत्मनिष्ठ था ! उसका बर्ताव इस प्रकार था, मानो यह उसके लिए नया अनुभव न होकर नित्यप्रति की वात हो।

'परन्तु चाचाजी, पिताजी और उनके साथियो से यदि हम पहले पहुँच जाएँ, तो क्या यह ठीक कहा जाएगा ?' कृष्ण ने पूछा, 'आपने मुझसे कहा, इसलिए मै आपके साथ चला आया, नही तो मेरी इच्छा तो उनके साथ ही गाड़ियो मे अथवा पैदल चलने की थी।'

अक्रूर बड़े स्नेही प्रकृति के व्यक्ति थे। नन्द के विपय में कृष्ण ने जो कहा उससे उनका हृदय भर आया।

'समस्त मथुरा अधीर होकर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है, कृष्ण !' अक्रूर ने कहा, 'वसुदेव और देवकी तो तुमसे मिलने के लिए तडप रहे है।'

'सोलह वर्ष तक जब उन्होंने राह देखी तो कुछ घड़ी और सही,' कृष्ण ने कहा, 'परन्तु पिताजी पैदल चले और मैं रथ मे वैठकर मथुरा जाऊँ, यह कभी नही हो सकता।'

'वत्स, वृन्दावन को भूल जाओ। तुम अब वासुदेव—राजा वसुदेव के पुत्र वासुदेव बन गए हो, यह मत भूलो।'

एक हृदयहारी लज्जाभाव धारण कर कृष्ण ने हँसते-हँसते कहा, 'नही चाचाजी, मै तो वृन्दावन का ग्वाला मात्र हूँ। यह बात मै कभी नही भूल सकता।'

अक्रूर के मन में फिर से शका का आरोपण हुआ। यह बालक, कृष्ण उदार यादव जाति का उद्धार करने में क्या सचमुच समर्थ होगा ?

'हम लोग जरा यहाँ रुके और फिर पिताजी जब नगर के समीप आ पहुँचें, तब उनके साथ हो लें,' कृष्ण ने कहा।

बलराम ने मुँह बिचकाकर कहा, 'कृष्ण, तू तो बस वैसा ही रहा !

सीधे शहर मे पहुँच जाएँ तो कितना आनन्द आए ! मुझे नगर देखना है और वहाँ के महलो तथा बाजारो को भी देखना है ।' मथुरा पहुँचने की इच्छा बलराम ने व्यक्त तो की, परन्तु जिस श्रद्धा से उसने कृष्ण की ओर देखा, वह अत्यन्त अर्थपूर्ण थी । अपना छोटा भाई जो भी कहता, उसे मानने की सूचना इसमे थी ।

'यदि तुम्हे वैसा ठीक लगे, तो वैसा ही किया जाए, 'अक्रूर ने कहा, 'परन्तु वहाँ हमारी क्या दशा होनेवाली है, यह जानते हो ? कस के प्रपच-जाल में फँसने के लिए ही मैने यादवों को बुलाया है और तुम्हे भी अव वही ले जा रहा हूँ ।'

'कंस मामा को यह प्रपच-जाल आपने फैलाने ही क्यो दिया ?' बलराम ने पूछा ।

'वर्पो से ऐसी मूर्खता हम लोग करते आ रहे है,' अक्रूर ने कहा, 'कंस पहले से ही कपटी था, उसका मन्त्री प्रलम्ब हमसे अधिक दीर्घ दृष्टि वाला था और अधिकाश अधकों ने उसका साथ दिया । इन्हीं अन्धको का एक समर्थ सरदार प्रद्योत कस का श्रद्धालु सेवक था । यह तो तुम जानते ही हो ।'

'अत्याचारी मनुष्य की शक्ति को बढने देना ही भारी भूल है। आज क्या होगा, इसका अनुमान आप लगा सकते है ?' कृष्ण ने पूछा ।

'आज और कल धनुष की पूजा होगी और उस समय कस अपना अन्तिम प्रहार करेगा । हममे से अधिकाश यादवों की हत्या करने का वह प्रयास करेगा,' अक्रूर ने कहा ।

'तो फिर हमे उसने बुलाया किसलिए ?' बलराम ने पूछा, 'मरवा डालने के लिए ?' थोड़ी देर तो अक्रूर मौन रहे; फिर एक-एक शब्द को तौलते हुए बोले, 'सबसे पहले वह कृष्ण की हत्या करना चाहता है; उसे भय है कि यदि कृष्ण जीवित रहा, तो भविष्यवाणी जरूर सत्य होगी ।'

कृष्ण मुस्करा उठा । उसकी मुस्कान एक ऐसे देवता की मुस्कान के समान थी, जो यह जानता हो कि मानव-कुल का भविष्य उसकी मुट्ठी मे है । अक्रूर ने प्रथम बार उसके नयनों में एक अडिग आत्म-विश्वास देखा और कृष्ण के प्रति एक अलौकिक श्रद्धा से वह ओतप्रोत हो उठे ।

आश्वासन के स्वर मे कृष्ण ने कहा, 'मुझे मारने से पहले तो वह स्वयं ही मृत्यु की शरण चला जाएगा।'

'यह तुम किस प्रकार कह सकते हो ?' अक्रूर ने पूछा।

'मैं जानता हूँ। पूज्य गर्गाचार्य और सान्दीपनि ने मुझसे कहा था,' कृष्ण ने उत्तर दिया।

'हम लोगों ने किन-किन सकटों का सामना किया है, वर्षो से कैसी-कैसी यातनाएँ सही हैं, इसकी भी चर्चा उन्होने की ?' अक्रूर ने पूछा।

'कंस मामा की दुष्टता की सभी बाते उन्होंने मुझे बताई है,' कृष्ण ने उत्तर दिया।

'वत्स, इतने वर्षो तक हमें किस प्रकार की यातनाएँ भोगनी पड़ी है, इसका तुम्हें अनुमान भी नही हो सकता,' अक्रूर ने कहा, 'कई बार तो मुझे लगता है कि इतना कष्ट सहकर मैं जीवित किस प्रकार रहा ? पूज्य उग्रसेन कारागार मे है, तुम्हारे माता-पिता को रौरव नर्क मे ही निवास करना पडता है, तुम्हारे भाइयो की जन्म के तुरन्त बाद ही हत्या होते मैंने अपनी इन्ही आँखों से देखी है। नारद की चेतावनी और पूज्य वेद-व्यास के वचन में मुझे श्रद्धा थी। इसीलिए तो मैंने बलराम और तुमको गोकुल मे ले जाकर अज्ञातवास में रखा।' कहते-कहते अक्रूर की आँखों मे अश्रु-बिन्दु छलक आए।

'चाचा, गई बातों को भूल जाओ,' कृष्ण ने इस प्रकार कहा, मानो कोई वयोवृद्ध आश्वासन दे रहा हो, 'कस मामा ने वीर यादवों के स्वाभिमान और शक्ति को किस तरह कुचल डाला है, उन्हें किस प्रकार भूमि-विहीन बना दिया है, किस तरह उन्हें मथुरा से बाहर निकाल दिया है, किस प्रकार माताओं से उनके नवजात शिशुओं को छीना है और सरदारो की कन्याओं की लाज लूटी है, यह सब मै जानता हूँ।'

'सचमुच, कृष्ण !' अक्रूर ने कहा, 'हत्या, लूट और बलात्कार तो उसके लिए खेल हो गए है। इनके लिए उसे किसी को जवाब देना पड़ेगा, यह तो वह मानता ही नही। देवताओं का वह मजाक उड़ाता है; ज्ञान-मूर्ति ब्राह्मणों को उसने मूक बना रखा है; पूर्वजों के आचार-विचार को ताक पर रख दिया है उसने !'

'वह धर्मद्रोही है,' कृष्ण ने कहा।

इस सोलह वर्ष के किशोर को किसी प्राचीन ऋषि की तरह अधिकारपूर्ण वाणी में बोलते हुए देखकर अक्रूर की डगमगाई हुई श्रद्धा फिर से जाग उठी।

'तो तुम जानते हो कि तुम्हारे जीवन का ध्येय क्या है ?' अक्रूर ने पूछा।

'हाँ,' कृष्ण ने उत्तर दिया।

'इस जीवन-ध्येय का ज्ञान तुम्हें कब हुआ ?' अक्रूर ने पूछा।

'कई बार अन्तर की गहराई मे कोई भाव जाग्रत हो रहा है, इस प्रकार का भान मुझे होता है। परन्तु यह क्या भाव है, यह मेरी समझ में नहीं आता। मैं कौन हूँ, और कंस मामा ने कैसे-कैसे पराक्रम दिखाए है, इसका पता मुझे जब लगा तो उसके दूसरे दिन गोवर्द्धन पर्वत के सबसे ऊँचे शिखर पर जाकर उदयमान सूर्य की ओर मुँह करके मै खड़ा हो गया। सूर्योदय हुआ और सूर्य-किरणों से धरती जगमगा उठी, तब मुझे लगा कि···,' सकोचवश ज़रा रुककर कृष्ण ने पूछा, 'कह दूँ, मजाक तो नहीं करेंगे न !'

'वत्स, तुम्हें क्या अनुभव हुआ, यही जानने के लिए तो मै छटपटा रहा हूँ। तुम्हारे मुख से यह बात सुनने के लिए ही तो मैं अब तक जीवित रहा हूँ,' अक्रूर ने कहा।

'मुझे लगा कि पृथ्वी पर से दुष्टता दूर हटी जा रही है, देवताओं के समान स्वतत्रता का उपभोग करते, धर्माचरण मे रत मनुष्यों को मैने ऊँचा मस्तक किये घूमते देखा। मुझे लगा मानो आकाश, पृथ्वी और पाताल सभी जगह धर्म पुनः व्यापक हो रहा है,' कृष्ण ने कहा और फिर कुछ अटका।

'फिर ?' अक्रूर ने अधीरता से प्रश्न किया।

'धर्म, मात्र यम-नियम का विषय न रहा, वह जीवन में घुल-मिल गया और···' कृष्ण ने कहा।

'हाँ, और,' अक्रूर ने पूछा।

'मुझे लगा···, वास्तव मे मुझे ऐसा लगा कि मानो सभी वस्तुएँ मेरे

अन्दर समा रही है। मै मात्र वसुदेव-पुत्र वासुदेव न रहा, बल्कि वासुदेव-वासुदेव· सर्व बन गया,' कृष्ण ने कहा।

'उसके बाद ?' पूज्यभाव से अत्यन्त मधुर स्वर मे अक्रूर ने पूछा।

'मै वापस गॉव मे आया। मुझे लगा कि मैं मानो कुछ बदल गया हूँ। वे ग्रामवासी, मेरे न रहे। सभी मुझमे और मैं सभी मे—ऐसी स्थिति हो गई थी···, यह क्या हो रहा था, यह मेरी समझ में नही आया। मुझे लगा कि गर्गाचार्य ने जो कहा था कि मानव जाति का उद्धार तुझे करना है, वह क्या सच होगा ? इसकी प्रतीति करा सके, ऐसा कोई चिह्न मुझे मिलना चाहिए। मेरे ग्रामवासी इन्द्र के भय से कॉपते थे। उन्हे भय-मुक्त करने के लिए मैने कमर कसी और जिस प्रतीक की मुझे खोज थी, वह मुझे मिल गया। मेरे हाथ के स्पर्श से ही गोवर्द्धन पर्वत दो बालिश्त ऊँचा उठ गया,' कृष्ण ने कहा।

आदर और भय की एक मिश्रित भावना से अक्रूर कृष्ण की ओर देख रहे थे। इस अद्‌भुत बालक का स्वर मानो कोई सनातन स्वर हो, ऐसा लग रहा था। सूर्य-चन्द्र और सप्तर्षि उसके आसपास परिभ्रमण करते दिखाई पड़े। इतनी दीनता, इतनी आद्रता का अनुभव उन्हे कभी नही हुआ था। उस मुनि के हृदय मे भक्ति का प्रचण्ड स्रोत फूट पडा। उन्होंने देखा कि कृष्ण अब कृष्ण न रहा। सहस्र सूर्यो के प्रकाश से आच्छादित देवाधिदेव वासुदेव बन गया था।

अक्रूर की ऑखे मुँदने लगी। उनके आगे मानो अँधेरा-सा छा गया। सिर नवाकर वह कृष्ण के चरणों में उसे रखने जा रहे थे कि एकाएक निद्रा से जाग्रत होने का-सा भान उन्हे हुआ। अत्यन्त सुकुमारता के साथ अपने से बड़े को प्रणिपात करते रोकने के लिए कृष्ण के हस्त का स्पर्श उन्हें अनुभव हुआ।

दूर-दूर तक गूँजते हुए 'वासुदेवः सर्वम्' के शब्द उनके कानो मे पड़े। धीरे-धीरे ये स्वर दूर होते गए और उन्होंने अपने सामने बैठे हुए किशोर का आकर्षक हास्य सुना। इस हास्य मे स्नेह की भावना थी, साथ ही आदर-भाव को प्रेरित करने की शक्ति भी थी।

'वासुदेवः सर्वम्', क्या ये शब्द उन्होने स्वप्न में सुने थे ?

'चाचा, यहाँ यमुना के तीर पर शीतल छाया वाला स्थान है, क्या हम थोड़ी देर यहाँ रुके ? जाकर स्नान कर आएँ ?' कृष्ण ने पूछा ।

'तुम दोनों को नहाना हो, तो जाकर नहा लो,' अर्धनिद्रित अवस्था में बलराम ने कहा,' मैं तो जरा सो लेना चाहता हूँ, कस मामा और उसके सभी आदमियों से लड़ने के लिए मुझे तैयार जो होना है ।'

'कंस का सामना करने के लिए तो भाई, तुम्हे अपनी सभी शक्ति का उपयोग करना पड़ेगा,' कृष्ण ने कहा ।

यमुना के जल में अक्रूर ने डुबकी लगाई और तब अपने सम्मुख वासुदेव के स्वरूप मे परिवर्तित हुई अपने किशोर भतीजे की मूर्ति उन्हें दिखाई पड़ी ।

३१

अन्धक की चेतावनी

अत्यधिक चिन्ता-भार से कंस का मानसिक कष्ट बढता जा रहा था । वैसे तो एक प्रकार से वह अब अधिक शक्तिशाली बन गया था और आसपास के नरेश उससे भयभीत भी थे । एक अति विशाल भूमिखण्ड पर एकछत्र शासन करने वाला उसका श्वशुर जरासंध अब राजाधिराज बन गया था । स्वयं कंस के अधीन और उसके जरा-से इशारे पर कुछ भी करने को तैयार, तीन हजार मागधी सैनिक मथुरा में स्थायी रूप से रहने लगे थे । कुछ असन्तुष्ट सरदारों को छोड़कर समस्त अंधक वंश के पुरुष उसके प्रति वफादार थे । यद्यपि उसकी अनुपस्थिति में अंधक सरदार प्रद्योत ने कुछ मूर्खता अवश्य दिखाई थी, फिर भी वह पहले की ही

भाँति उसका आज्ञापालक अनुचर था ।

यादव उससे असन्तुष्ट अवश्य थे, परन्तु उनमे एकता का अभाव था और उनका नेतृत्व करनेवाला भी कोई नही था। ब्राह्मणों को उदार रूप से दान देकर अथवा सख्ती से उन्हे दबाकर उसने मूक बना दिया था। अब तो केवल एक ही काम उसे करना था, और वह था एक प्रबल प्रहार से सौ विरोधी यादवों को नतमस्तक करना। कस इन सब बातो को अच्छी तरह जानता था; अपनी दृढ स्थिति से भी सुपरिचित था; फिर भी वह बेचैन था, क्योकि देवकी का आठवाँ पुत्र अभी जीवित था। यहाँ तक तो नारद मुनि की भविष्यवाणी सच ही सिद्ध हुई। और अब कृष्ण मथुरा आनेवाला था।

कंस सोचता था कि कृष्ण मात्र एक ग्वाले का पुत्र है; उसके पराक्रम की जो चर्चा सर्वत्र फैल रही है, वह निश्चय ही अतिशयोक्तिपूर्ण होनी चाहिए। गाँव का कोई भी बहादुर जवान ऐसे साहस के कार्य कर सकता है। परन्तु वसुदेव, देवकी और बहुत-से यादव उसे भावी तारणहार मान रहे थे। लोगो मे भी उसके इस रूप के प्रति श्रद्धा दिखाई पड़ती थी। गर्गाचार्य वैसे अपनी वाणी या वर्तन से तो कुछ नही बताते मालूम पड़ते थे, परन्तु सभी यह मानते थे कि कृष्ण के उस रूप का परिचय उन्हे है। कस ने स्वय इस अफवाह को रोकने का प्रयास किया कि नन्द ग्वाले का लड़का ही देवकी का आठवाँ पुत्र है, परन्तु यादव सरदारों की सभा के समक्ष उसने स्वय जो-कुछ कहा उससे इस तथ्य को कानों-कान फैलने से रोकना बहुत मुश्किल हो गया।

कई बार तो कस को ऐसा लगता कि उसके आसपास कोई जाल रचा जा रहा है और वह उसमें अधिकाधिक फँसता जा रहा है। शान्त चित्त से विचार करने पर लगता कि यह मात्र उसकी मिथ्या कल्पना है, भ्रम है; फिर भी इससे स्वयं को मुक्त करना उसके लिए असम्भव हो गया।

आज रात कंस सदा से अधिक उद्विग्न था। वह विचार करने लगा कि अब तक अक्रूर वृन्दावन पहुँच गया होगा, छोकरे मथुरा आने की तैयारियाँ कर रहे होंगे, कल तक वे नगर मे पहुँच जाएँगे—कैसे होगे वे ?

उँह; इसकी क्या चिन्ता ? और बालकों की तरह ही ये होंगे, उनसे भय कैसा ?

फिर भी कंस को चैन नही पड़ा। मन को कचोटती इस अशान्ति को दूर करने के लिए उसे कुछ करना चाहिए। उसे वरदा याद आई। युद्ध शेष होने पर मथुरा लौटते समय वह इस तरुण वारागना को अपने साथ ले आया था। वह अतीव मनहर, सुन्दर और चित्ताकर्षक थी तथा स्वभाव से ही आनन्दमयी थी। अत्यधिक राजकार्य मे कंस उसे भूल-सा गया था। अब जब उसकी याद आई तो उसे लगा कि उसके पास जाने से वह शायद चिंतामुक्त होकर फिर से स्वय को स्वस्थ अनुभव कर सके।

महल के ही विशाल प्रागण में एक पृथक् निवास-स्थान मे वरदा रहती थी। उसके पास सन्देश भेजकर, फिर तुरन्त ही कस उसके पास चला गया। वरदा ने अति आनन्द और उत्साहपूर्वक उसका स्वागत किया। उसकी मद-भरी चितवन और चाँदी की घण्टी के समान सुप्रिय स्वर गुंजाती मधुर वाणी से कस का मनस्ताप कुछ शान्त हुआ। महाराज के सामने उपहार की वस्तुएँ रखकर वरदा स्वय पंखा झलने लगी। फिर उसने एक मधुर गीत गाया, कुछ देर नृत्य किया और फूल की गेंद के समान अपना सुकोमल शरीर कंस की बाहुओ मे उछालते हुए कस के आलिगनपाश में वह बँध गई। एक हाथ कस के गले मे डालकर और अपना सिर उसके कन्धों पर टिकाकर वह अपनी जादू-भरी चितवन से कंस की चिन्तातुर आँखो को देखकर मुस्कराई।

'सचमुच, तू अद्भुत है वरदा !' कंस ने कहा।

'और, आप क्या कम अद्भुत है, मेरे प्रभु !' कहकर वरदा ने अपने दोनों हाथ कंस के गले मे डाल दिए। 'प्रसन्न तो है न, मेरे रसिया, मेरे राजा ?' अत्यन्त मधुर और धीमे स्वर में उसने पूछा। पुरुष को गुलाम बनाने की कला में यह वारांगना सिद्धहस्त थी।

'जब तुम्हारे पास होता हूँ, वरदा, तब बड़ा आनन्द मिलता है मुझे !' कंस ने भावावेश से वरदा का चुम्बन लेकर कहा,'तुम्हारे साथ सदा सहवास मिले तो अपना राज्य भी दे दूं।' प्रणयोन्माद की मात्रा बढ रही थी और इस आवेग की आनन्दमय तृप्ति साधने के लिए वह तत्पर हुआ।

'तो मेरे एक प्रश्न का उत्तर देंगे ?' वरदा ने धीरे से कंस के कान में कहा।

'एक नही, प्रिये, सौ प्रश्न पूछो !' कंस ने कहा और वरदा को अपने बाहुपाश में जकड़ लिया।

'तो एक बात का जवाब मुझे दीजिए। मैं किसी से कहूँगी नहीं।'

'किस बात का ?'

'मेरे राजा, मेरे स्वामी ! मुझे यह बताइए कि कल यहाँ देवकी का आठवॉ पुत्र आनेवाला है, क्या यह बात सच है ?'

कंस का सारा शरीर तन गया। उसे ऐसा लगा मानो किसी साँप ने उसे डस लिया हो। उसका प्रणयावेग एकाएक मन्द हो गया और आँखें फाड़े वह वरदा की ओर भयभीत दृष्टि से देखने लगा।

'किसने कहा तुझे ?' वह गरज उठा।

अपने किये गए प्रश्न के पीछे क्या रहस्य है, इससे सर्वथा अज्ञात वरदा यह न समझ सकी कि कंस मे एकाएक यह परिवर्तन क्यो हो गया। हाव-भाव करती हुई उसके बाहुपाश मे स्वयं को भरकर मधुर स्वर मे उसने कहा, 'सारे महल में यही चर्चा हो रही है। मै उसे देखना चाहती हूँ। लोग कहते है कि वह अवतारी पुरुष है।'

'तू उसे देखना चाहती है !' कंस जोर से चीख उठा और पलंग से कूदते हुए चिल्लाया, 'देवकी के आठवे पुत्र को तू देखना चाहती है, वेश्या !' उसकी आँखे लाल हो गई, हाथ कॉपने लगे। जोर से पकड़-कर वरदा को उसने जमीन पर दे पटका और रुँधे हुए कण्ठ से 'वेश्या !' कहकर क्रोधपूर्वक बाहर चला गया।

'देवकी का आठवाँ पुत्र ! हाँ, वह आनेवाला है। प्रत्येक मनुष्य जानता है कि वह मेरा वध करेगा—मेरा ! सौ-सौ युद्धों के विजेता कंस का ! ठीक है, मैं भी दिखा दूँगा।'

सरदार प्रद्योत तथा मगध के राजकुमार वृतघ्न को उसने बुला भेजा, दोनों ने आकर देखा कि कस क्रोध से उन्मत्त हो रहा है और क्रूरता का भाव उसके चेहरे पर अंकित है।

'वृतघ्न, प्रद्योत, यह सब क्या है ? देवकी का आठवाँ पुत्र कल यहाँ

आनेवाला है, यह बात सब जगह फैल गई है !'

'प्रभु ! क्षमा चाहता हूँ; परन्तु अधिकाश सरदारों ने आपके मुख से ही यह सुना कि अक्रूर उन्हें बुलाने जा रहे है । फिर यह बात गुप्त कैसे रह सकती थी ?' विनम्र भाव से हाथ जोड़कर प्रद्योत ने कहा ।

'खैर, जो हुआ सो हुआ,' कंस ने कहा, 'परन्तु मैं तुम्हें एक काम सोंपता हूँ। उस छोकरे को तुम इस महल में प्रवेश न करने देना, न उसे मेरे समक्ष आने देना। मेरी उपस्थिति मे उत्सव प्रारम्भ हो तब, परसों ही, इसका कोई हल निकाल लेना चाहिए। पवित्र धनुष को उठाकर उस पर से बाण छोड़ा जाए, तब भी उसे वहाँ उपस्थित रहने का कोई अवसर न दिया जाए ! शायद वह तीर चलाने मे भी निपुण हो !'

'जैसी प्रभु की इच्छा !' प्रद्योत ने कहा ।

'प्रद्योत, तुम कुछ बदले हुए-से मालूम देते हो ! क्या हुआ है तुम्हें ?' कंस ने पूछा ।

'मुझे कुछ नही हुआ है प्रभु !' प्रद्योत ने उत्तर दिया। 'शायद काम का इतना अधिक बोझ मुझसे उठाया नही जाता और अब मै बुड्ढा भी तो हो चला !' एक फीकी हँसी हँसकर उसने कहा ।

'प्रत्येक सरदार के पीछे एक-एक जासूस लगा दो, और अपने जातिभाइयों की तरफ ज़रा ख़याल रखना कि वे वफादार रहे । वृतघ्न, तुम ऐसा प्रबन्ध करो कि तुम्हारे आदमी प्रत्येक सरदार पर नजर रखे । ये सरदार सब बेवफ़ा हैं—सभी यह चाहते है कि मैं मर जाऊँ। परन्तु मैं इन सबको ठिकाने लगाकर ही जाऊँगा।' कस ने रोषपूर्वक कहा। इतने में एक दूत ने आकर समाचार दिया कि प्रद्योत के पितामह के भाई, नब्बे वर्ष के बाहुक अन्धक किसी विशेष कार्य से कंस से मिलने आ रहे है ।

कस की भृकुटि तन गई। यह विवेकहीन बुड्ढा यहाँ क्यों टपक पड़ा ? परन्तु अपने ही वंश के वह एक गुरुजन थे, सरदार के रूप में सभी उनका सम्मान करते थे, इसलिए उन्हें ना कहना भी असम्भव था। भारी प्रयास कर कंस ने अपने मन को स्वस्थ किया और सिंहासन पर से उतरकर वृद्ध अन्धक का सत्कार करने सामने गया। अपने पुत्र के कन्धे का सहारा लेकर वृद्ध अन्धक ने भीतर प्रवेश किया। इस उम्र में भी वह काफ़ी बलिष्ठ थे।

'काकाजी, इतनी रात गए आपने यहाँ आने की तकलीफ क्यों की ?' कस ने पूछा।

हाथों से आँख पर आवरण करते हुए अन्धक ने पूछा, 'ये कौन है ? ओह, प्रद्योत और कुमार वृतघ्न !'

'आसन पर विराजिए,' कंस ने कहा। कस के सामने अन्धक बैठे।

'काकाजी, क्या आज्ञा है आपकी ?' यथासम्भव विनम्र होकर कस ने पूछा।

'मैं तुम्हे अन्तिम बार सलाह देने आया हूँ। सबसे अधिक वृद्ध यादव होने के कारण यह मेरा कर्तव्य है।' अन्धक ने कहा।

'हाँ, काकाजी !' कंस बोला।

'वसुदेव के पुत्रों को लाने के लिए अक्रूर गये है। कल सुबह वह आ पहुँचेंगे।'

'हाँ······।'

'मै तुम्हे जन्म से पहचानता हूँ। तुम उन्हें अपने रास्ते से दूर हटाना चाहते हो,' अन्धक ने कहा।

'मैं क्यों उन्हें दूर हटाऊँ ? ये दो छोकरे मेरा कर ही क्या लेंगे ?' कस ने प्रश्न किया।

'तुम यदि कहो कि नारद की भविष्यवाणी सच होने का भय तुम्हें नही है, तो मै नही मानूँगा। मुझे छलने का प्रयास मत करो। परन्तु मैं चाहता हूँ कि तुम इस भविष्यवाणी को मिथ्या सिद्ध करो।'

'इस मूर्खता-भरी बात को मैं मानता ही नही। और, जो भविष्यवाणी सच ही हो, तो उसे मिथ्या सिद्ध करने का उपाय क्या है ?'

'पश्चात्ताप ही मनुष्य का मरण है और नवजीवन भी वही बनता है। तुमने जो कुछ किया उसका यदि पश्चात्ताप करो तो तुम्हारा नया जन्म होगा और साथ ही भविष्यवाणी भी सच हो जाएगी।'

'इसका क्या भरोसा ? मैने कई लोगों को पश्चात्ताप करते हुए भी मरते देखा है।'

'शायद उन्होंने सच्चे हृदय से पश्चात्ताप नहीं किया। वसुदेव का पुत्र अवतार न हो तो भी पश्चात्ताप से तुम सबका प्रेम प्राप्त कर

सकोगे। और यदि, जैसा कि कई लोग मानते है, वह अवतार ही हुआ तो उसके अनुग्रह से तुम अधिक सुखी और शक्तिशाली बनोगे।'

'और यह पश्चात्ताप मुझे किस प्रकार करना होगा ?' कस ने उपहास के स्वर मे पूछा।

'मै जानता हूँ कि मेरी बात तुम्हें सच नहीं लगती; परन्तु तुम्हें सच्चे मार्ग का दर्शन कराने के लिए ही मै यहाँ आया हूँ। मुझे किसी का भय नही। वसुदेव और देवकी को तुमने सताया है, यादवों को गुलाम बना डाला है, विद्वान ब्राह्मणो को मथुरा आने से रोक दिया है। यह नगर नर्क के समान बन गया है।' अन्धक ने कहा।

'और कुछ ?' कंस ने पूछा।

मानो कोई भविष्यवाणी कर रहे हों, इस प्रकार ऊँची आवाज़ और प्रज्वलित नयनो से इस वृद्ध पुरुष ने कहा, 'कुमार, सबसे वृद्ध यादव के नाते मैं चाहता हूँ कि हमारा स्वातन्त्र्य और जमीन जो तुमने छीन ली है, वह हमें वापस कर दो। वसुदेव, देवकी और उनके पुत्रों को निर्भय जीने दो। मथुरा से जो यादव भाग गए है, उन्हे सम्मानपूर्वक वापस बुला लो। पहले की तरह ब्राह्मणों के घरों में वेद-ध्वनि फिर से गूँजने लगे। लोगों को सताने के लिए जिन परदेशियो को तुमने यहाँ बुला रखा है उन्हे वापस भेज दो। अपने पिता को मुक्त करो और तुम्हे साथ रखकर वे राज्य चलायें, ऐसा प्रबन्ध करो। सबसे अधिक अपनी प्रजा को निर्भय और मुक्त करो!' अन्धक ने कहा।

'इस प्रकार पश्चात्ताप कर मुझे निर्मल बनना चाहिए, यही आपकी इच्छा है न ?' कंस ने पूछा, 'आप समझते हैं कि मैं दुष्टता का अवतार हूँ और इस दुष्टता से अब आप मुझे बचाना चाहते है। अच्छा, तो मैं ऐसा ही करूँगा। फिर ?'

'फिर, देवताओं की तुम पर कृपा होगी और मथुरा, यादवों तथा स्वयं तुम्हारा उद्धार होगा। फिर कृष्ण, यदि वह अवतार हुआ तो, जो माँगोगे वही तुम्हें देगा। बोलो, ऐसा करने को तैयार हो तुम ?' अन्धक ने पूछा।

'काकाजी, मुझे विचार करने दो। आपकी सलाह मुझे लगती तो

उत्तम है, फिर भी मुझे कुछ सोच लेने दीजिए,' कंस ने कटाक्षपूर्वक कहा।

'तू मुझे एक मूर्ख बुड्ढा समझता है, यह मैं जानता हूँ,' अन्धक ने कहा। 'सच्ची सलाह मानना तेरे लिए मुश्किल है। मै तुझे अन्तिम चेतावनी देता हूँ।' क्षण-भर वह रुके, उनकी आँखों से अगारे बरस रहे थे। 'यादवों का तू शत्रु बन बैठा है और उनके उद्धारक का विनाश करना चाहता है। परन्तु अच्छी तरह सुन ले कि एक भी यादव के रहते कृष्ण का बाल भी बॉका नही हो सकता। कृष्ण तो यादवों के लिए अन्तिम आधार-स्थान है, और यदि तू समझ सके तो तेरे लिए भी!'

'काकाजी, मुझे डराने का प्रयत्न न करे,' कस ने कहा, 'मुझे जो ठीक लगेगा वही मै करूँगा।'

'तू यदि अपने आचार-विचार में परिवर्तन नहीं करेगा, तो भगवान् शकर का कोपभाजन बनेगा,' अन्धक ने कहा।

'मै भगवान् से नही डरता,' कंस बोला।

'अभिमान से मत्त होकर जो भगवान् का डर नही रखता है, उसका विनाश अवश्यम्भावी है और जिस प्रजा को ऐसा राजा मिलता है, उसकी भी अधोगति होती है,' अन्धक ने कहा।

'जरा ठहरिए काकाजी!' कस ने हँसकर कहा। वृतघ्न की ओर घूमकर उसने कुछ उसके कान में कहा। वृतघ्न ने सम्मति दर्शाई और खण्ड से बाहर चला गया।

'काकाजी, आप ठीक कहते है,' कंस ने कटाक्ष से कहा, 'मैं कृष्ण को कोई हानि नही पहुँचाऊँगा। प्रद्योत, तुम इसका खयाल रखना।'

'जैसी प्रभु की आज्ञा!' प्रद्योत ने कटुतापूर्वक कहा। कस की मुस्कान का अर्थ वह ठीक से लगा नहीं सका।

'वत्स, तू अपने वचन का खयाल रखता है या नही, मै इसका ध्यान रखूँगा,' कहकर अन्धक खण्ड से बाहर चले गए। उनके साथ प्रद्योत भी जाने को तैयार हुआ, परन्तु कंस ने उसे वापस बुला लिया।

'प्रद्योत, काकाजी को मैंने जो वचन दिया है वह भूलना मत। कृष्ण को मैं हानि नहीं पहुँचाऊँगा, परन्तु इसका अर्थ यह नही कि मैंने जो उसे मेरे सम्मुख न आने देने का आदेश दिया है, उसका पालन तुम्हें नहीं

करना है।' कंस ने मुस्कराकर कहा।

'प्रभु की जो आज्ञा !' क्रोध का घूँट पीकर प्रद्योत ने कहा।

कस को प्रणाम कर प्रद्योत खण्ड से बाहर निकला और गलियारे में से गुज़र रहा था कि उसे वहाँ किसी संघर्ष के चिह्न दिखाई दिए। जमीन पर तलवार पड़ी थी और खून के दाग लगा दुपट्टा दूर पड़ा था। इस अँधेरी जगह से कोई पीछे मुड़कर जा रहा है, ऐसा उसे लगा। और जब पैरो की ध्वनि का प्रद्योत ने पीछा किया तो मागधी सैनिको को दो मानव-देह उठाकर ले जाते देखा।

प्रद्योत की आँखों के आगे अँधेरा छा गया। खम्भे का सहारा लेकर वह खड़ा हुआ। कुछ देर बाद जब स्वस्थ हुआ तो उसने अपने दाँत होठों पर इतने ज़ोर से भीचे कि खून निकल आया। फिर वह वहाँ से चला गया।

३२

त्रिवक्रा

त्रिवक्रा कंस के राजमहल में परिचारिका का कार्य करती थी। राजा तथा सभी राजवधुओ के लिए सुगन्धित द्रव्य जुटाना उसका नित्य-प्रति का कार्य था। अपने अनेक कर्मचारियो की मदद से वह विविध प्रकार की वनस्पतियाँ उगाती और उनसे उत्तम तेल तथा इत्र तैयार करवाती। वनस्पतियों के औषधीय गुणो की जानकारी भी उसे थी। उसकी माता भी अपने जीवन-काल में यही कार्य करती थी और मरने से पहले, राजमहल से सम्बन्धित सभी विषयों में सर्वसत्ताधीश, सरदार

ऐसा कर जिससे दूसरे भी देख सकें कि मैं कितनी सर्वांग-सुन्दर हूँ !

दिन-रात यही प्रार्थना करते-करते उसे विश्वास हो गया था कि भगवान् महादेव की कृपा से वह दिन अब जल्दी ही आनेवाला है, जब उसकी मनोकामना पूर्ण होगी। तीन दिन पहले उसे खबर लगी कि देवकी का आठवाँ पुत्र जीवित है और इस आशा में वह पागल हो उठी कि तारणहार शायद मथुरा आएगा और दूसरों को यह दिखाएगा कि वह कितनी सुन्दर है। सजल नयनों तथा अत्यन्त गम्भीरता और श्रद्धा से नतमस्तक हो उसने प्रार्थना की, 'हे देवाधिदेव महादेव, देवकी के पुत्र को शीघ्र मथुरा भेज। वही इन अंधों की आँखे खोलेगा और सबको बताएगा कि मैं त्रिवक्रा नही, बल्कि वास्तव में अतीव सुन्दर हूँ।'

इसके बाद उसने रानियों से सुना कि नन्दलाल मथुरा आने वाला है और इस समाचार से वह आनन्दमग्न हो उठी। रानियों ने जब यह कहा कि कंस शीघ्र ही कृष्ण को ठिकाने लगा देगा, तो उसे बहुत बुरा लगा। कंस के अनुयायियों को भी यही आशा थी और वे मन-ही-मन खुश थे कि राज्य के इस सबसे बड़े शत्रु का खात्मा हो जाने पर शीघ्र ही उनका भाग्योदय होगा। इसके विपरीत, जो यादव तथा प्रजाजन कंस से भयभीत थे, वे भी इस सम्भावना से प्रसन्न थे कि कृष्ण शीघ्र ही उनका उद्धार कर देगा। कृष्ण के अद्भुत पराक्रमो की चर्चा उन्होने सुन रखी थी।

राजमहल मे भाँति-भाँति की अफ़वाहें फैल रही थी। देवकी का आठवाँ पुत्र यही नन्दलाल था, जिसने राक्षसों का संहार किया था, इन्द्र-देव की अवहेलना कर गोवर्धन पर्वत को अपनी उँगली पर उठा लिया था। नारद की भविष्यवाणी के अनुसार उसी के हाथों कंस का वध होने वाला था। त्रिवक्रा को लगा कि उसको सपने मे जिस देव के दर्शन हुए थे, वह यही नन्द का पुत्र होना चाहिए।

तीन दिन तक नींद न आने पर भी त्रिवक्रा की चाल में उत्साह और हास्य में आनन्द छलक रहा था। उसकी प्रार्थना को सफल करने के लिए प्रभु स्वयं पधार रहे थे। जीवन के इस परम उत्सव के प्रसंग की उसने अभिनव तैयारियाँ शुरू की। भले ही लोग मज़ाक करें, परन्तु

पहनने के लिए उसने पहले कभी न पहने ऐसे नवीन और बहुमूल्य वस्त्र बाहर निकाले, बढ़िया-से-बढ़िया इत्र तैयार किए और अपनी चाँदी की इत्रदानी को काँच की तरह चमकाया।

एक दिन उसे खबर मिली कि नन्द के दोनों पुत्र मथुरा आ गए है और वृष्णि सरदार अक्रूर के यहाँ ठहरे है। उस रात महल में खूब हलचल रही। अक्रूर, प्रद्योत और कंस के विश्वासपात्र वृत्रघ्न और अन्धक सभी ने एक-के-बाद-एक आकर कंस से गुप्त मन्त्रणा की। त्रिवक्रा को प्रद्योत के लिए सम्मान था, परन्तु अक्रूर उसे अच्छे नहीं लगते थे, क्योकि उन्होंने उसके पास से इत्र लेना अस्वीकार किया था। मगध के राजकुमार से भी उसे द्वेष था, क्योंकि वह हमेशा उसके इत्र इत्यादि की शिकायत करता रहता था।

उस रात उसने सुना कि शहर में कई लोगो को शस्त्र बाँटे गए है। रानियो के मन भी क्षुब्ध हो गए थे। यादव सरदार जहाँ रहते थे, वहाँ भी वातावरण गम्भीर हो गया था। लोगों के मन को अशान्त करती एक अफवाह चारो ओर फैल रही थी कि वृद्ध अन्धक और उसके पुत्र का पता नही चलता और वे राजमहल मे ही मार डाले गए। त्रिवक्रा को लगा कि इसका सम्बन्ध किसी-न-किसी तरह से कृष्ण के मथुरा आने से होना चाहिए।

दूसरे दिन वह सवेरे खूब जल्दी उठी। कस तथा रानियों को इत्र-सुगन्ध इत्यादि स्वयं देकर बाकी काम अपने अधीन कर्मचारियों पर उसने छोड़ दिया और महल से बाहर निकल गई। हाथ में इत्र की रुपहली पेटी लेकर वह अक्रूर के महल की ओर चली। रास्ते मे उसने लोगो के टोले-के-टोले शहर के मुख्य बाजार की ओर जाते देखे। तरुण यादव भी जल्दी-जल्दी उसी ओर बढ़ रहे थे। किसी को सदा की भाँति उसके साथ हँसी-मजाक करने की फुर्सत नही थी। उसे भी स्वभावतः कौतूहल हुआ और वह भी उसी ओर चल दी।

कस के रगरेज की दुकान के सामने लोगों की एक विशाल भीड़ एकत्र थी। त्रिवक्रा सभी को धक्का देती हुई और लोगों की गालियों की भी परवाह न कर दुकान के नजदीक पहुँच गई। वहाँ जाकर उसने देखा

कि दुकानदार के साथ दो लड़कों का कुछ झगड़ा हो रहा है। रंगरेज खूब गुस्सा होकर गालियाँ दे रहा है और घनश्याम वर्ण के नन्हे बालक की ओर हाथ उठाकर कह रहा है, 'गँवई गँवार !' जिसे मारने के लिए उसने हाथ उठाया था, उस बालक ने ज़रा पीछे खिसककर पहले तो वार चुकाया, पीछे उस मुस्तण्ड रँगरेज़ पर इतने जोर से प्रहार किया कि वह वेहोश होकर ज़मीन पर लुढ़क गया।

एक गुण्डे की यह पराजय देखकर वहाँ पर एकत्र सभी लोगो को खूब आनन्द हुआ। कई युवको ने तो बेहोश रँगरेज़ के शरीर पर लाते भी लगाई। सभी लोग उसे गालियाँ दे रहे थे, जिसमें त्रिवक्रा ने भी साथ दिया। लड़कों ने शान्ति से दुकान मे जाकर अपने मनपसन्द कपड़े पहन लिए।

'ये बालक है कौन ?' त्रिवक्रा ने पास ही खड़े एक आदमी से पूछा।

'मालूम नही तुझे ? ये वृन्दावन के सरदार नन्द के पुत्र हैं,' उसे उत्तर मिला।

त्रिवक्रा का हृदय पुलकित हो उठा। उसने पूछा, 'यह रँगरेज उन्हे गालियाँ क्यों दे रहा था ?'

'पहनने के लिए अच्छे कपड़े ये बालक माँग रहे थे; कह रहे थे कि धनुर्यज्ञ में भाग लेने के लिए कंस ने हमे बुलाया है, इसलिए वहाँ जाने के लिए हमें अच्छे कपड़े चाहिए।' दूसरे एक आदमी ने बताया।

'लड़के बड़े अच्छे दिखाई पड़ते है,' त्रिवक्रा ने कहा।

'बड़े अलमस्त है ये ! ये ग्वाले भी कैसा गौरवपूर्ण व्यवहार कर लेते हैं !' पहले आदमी ने कहा।

'इस गुण्डे को उसने खूब मज़ा चखाया ! वाह-वाह ! क्या प्रहार किया ! इसी लायक था यह रँगरेज ! अपने को कंस ही मान बैठा था !'

'राजा को मालूम होगा, तो बहुत गुस्सा होगे !' त्रिवक्रा ने कहा।

'भले ही हों। ये लड़के बहुत बहादुर है, किसी के गुस्से की परवाह नही करते !' दूसरे एक व्यक्ति ने कहा।

देवों के समान वस्त्र धारण कर लड़के बाहर आये। बड़े लड़के ने नील वस्त्र धारण किए थे, जबकि सुन्दर, घुंघराले बालो वाले उसके

अनुज ने पीले रंग के कपड़े पसन्द किए। ऐसा लगता था कि उसे कपड़ों का भारी शौक है। अपने पुराने फेंटे मे से मोरपंख निकालकर उसने अपने सुनहरी मुकुट मे लगाया। इन दोनो को दुकान से बाहर आते देखकर लोगों ने हर्षनाद किया। सामने की फूलों की दुकान वाले माली ने आकर उन्हे सुन्दर पुष्पहार अर्पित किए। छोटे लड़के ने प्रेम से उसकी पीठ थपथपाई।

छोटे कुँअर को देखकर त्रिवक्रा मुग्ध हो गई। वह सभी की ओर एक मैत्रीपूर्ण और आनन्द से चमकती दृष्टि डाल रहा था। उसके होठों पर थिरकती मधुर मुस्कान शायद मेरे लिए ही है, ऐसा त्रिवक्रा को लगा। पास खड़े व्यक्ति को धकेलकर अत्यन्त भावोद्रेक से धड़कते हुए कलेजे के साथ वह आगे बढी। क्या वर्षों से सँजोई उसकी आशा पूर्ण होगी ?

'नन्द के कुँअर, कृष्ण, मैं तुम्हारे पास ही आई हूँ, प्रभु ! वर्षों से मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रही थी।' भावावेश से रुद्ध कंठ से उसने कहा।

कृष्ण समक्ष प्रणिपात करने की चेष्टा करती हुई इस वक्रांगी की विचित्र अगभगी को देखकर लोग हँसने लगे।

'तू हमारी प्रतीक्षा कर रही थी ?' कृष्ण ने पूछा, 'वाह, क्या खूब ! पर तुझे यह कैसे मालूम हुआ कि हम लोग यहाँ आने वाले हैं ?'

'आप अवश्य आयेंगे ऐसा मेरा मन कहता था, प्रभु ! इसीलिए तो मै रोज प्रार्थना करती थी—आपके लिए इत्र और सुगन्धित द्रव्य भी लेती आई हूँ,' त्रिवक्रा ने उत्तर दिया।

'तू कौन है, बहन ?' कृष्ण ने पूछा।

'मेरा नाम त्रिवक्रा है, कुब्जा ! राजमहल के लिए इत्र और सुगन्धित द्रव्य तैयार करना मेरा काम है; परन्तु अपने सर्वोत्तम इत्र और सुगन्धित द्रव्य तो प्रभु, आप ही के लिए मैंने संचित रखे है,' उसने उत्तर दिया।

कृष्ण के सुन्दर होठो पर तब जो मुस्कान उभर आई, उसे देखकर त्रिवक्रा का हृदय आनन्द से नाच उठा। उसे लगा कि यह मुस्कान उसी के लिए है, और जिसके सपने वह वर्षों से सँजोती रही है, वह इष्टदेव भी यही है। पेटी में से इत्र निकालकर उसने कृष्ण के हाथ और गाल

पर लगाया—ललाट पर चन्दन लगाया। फिर बलराम के शरीर पर भी इसी प्रकार उसने इत्र और चन्दन लगाया। बाल-सुलभ कौतूहल से बलराम ने इस नवीन पदार्थ को सूँघा।

फिर त्रिवक्रा कृष्ण के पैरों में पड़कर और अपना शीश उसके चरणों मे नवाकर रो पड़ी। 'प्रभु, मै इतनी कुरूप हूँ!' बस ये ही शब्द उसके मुँह से निकल सके और इसके बाद तो वह फूट पड़ी। उसकी चिर-आशाएँ आँसुओं में परिणत होकर नेत्रों से बह चली।

'कौन कहता है तुम कुरूप हो?' कृष्ण ने उसे सान्त्वना देने के स्वर में कहा। त्रिवक्रा को उसने झुककर ज़मीन पर से उठा लिया। 'बहन, तुम्हें कौन सुन्दर नही कहेगा? निश्चय ही तुम सुन्दर हो!' उसने अधिकारपूर्ण स्वर में कहा।

त्रिवक्रा ज़मीन पर से उठ खड़ी हुई और जिस प्रकार सदा खडी रहती थी, वसे ही खड़े रहने का प्रयत्न किया। परन्तु तब उसे एक विचित्र अनुभव हुआ। उसे लगा कि किसी अज्ञात शक्ति का सचार उसकी देह में हो रहा है। उसने सीधी खड़े होने का प्रयास किया और वह उसमे सफल हो गई। उसने अपने पैर लम्बे किए और उसकी पूरी टाँग सीधी हो गई। यह सब क्या चमत्कार है, वह सोचती रही। सभ्य स्त्री की आचार-मर्यादा भी वह भूल गई और आनन्द से उछलने-कूदने लगी। आश्चर्य से अवाक् सभी उपस्थित व्यक्ति उसकी ओर टकटकी लगाये देख रहे थे।

'प्रभु, आपने तो मुझे सुन्दर और स्वस्थ बना दिया!' ऐसा कहकर वह फिर कृष्ण के पैरों में गिर पड़ी और हार्दिक आभार को व्यक्त करती हुई अपने दीर्घ केश-कलाप से कृष्ण के पैर सहलाने लगी।

३३

दैवी धनुष

रँगरेज की दुकान के सामने एकत्र जनसमुदाय त्रिवक्रा की विकृतियों के सौम्य रूपान्तर को परम आश्चर्य से देख रहा था। इतने में कुछ दूर पर भाँति-भाँति की ध्वनियाँ सुनाई पड़ने लगी। घोड़ो की टाप, लोगो पर पडते कोड़ों की मार और घायल व्यक्तियों के आर्तनाद से वातावरण गूँज उठा। कोई घुड़सवार बड़ी तेजी से आगे बढ रहा था और अपने मार्ग में आनेवाले सभी लोगो को कोड़े लगाकर हटा रहा था।

बलराम शीघ्र उत्तेजित नही होता था, परन्तु एक बार क्रोधाग्नि भड़कने पर यह अल्पभाषी बालक रौद्र रूप धारण कर लेता था। उसने लपककर घोड़े की लगाम पकड़ी और तेजी से आगे बढते हुए वेगवान घोड़े को अपने हाथों पर रोक लिया। घुडसवार ने क्रोधित होकर कोड़ा चलाया, परन्तु वह उसे वापस उठा सके, इससे पहले तो कोड़ा बलराम के हाथ मे था और घुड़सवार जमीन पर!

मथुरा की जनता ने सत्ताधीश का इस प्रकार प्रतिकार होते कभी देखा नही था। वे लोग इस पराक्रमी बालक को आश्चर्य-विमुग्ध हो निहारने लगे और बलराम की जयजयकार करने लगे। बलराम ऊँचे कद और डीलडौल का था, परन्तु उसमे इतनी प्रचंड शक्ति होगी, यह किसी को खयाल भी नही हो सकता था। उसने न केवल वेगवान अश्व को रोका, बल्कि उसे पीछे भी धकेल दिया। अश्व ने अपना सारा ज़ोर आगे के दो पैरों पर लगाकर आगे बढ़ने की कोशिश की, किन्तु वह व्यर्थ रही। बलराम उसे पीछे धकेलता-धकेलता पीछे से आ रहे रथ में जुते बैलों तक ले गया।

पिछले पैरों पर आ रहे अश्व को देखकर तथा लोगों के कोलाहल से रथ के बैल भड़क उठे। रथ में बैठी हुई दो स्त्रियाँ चीख पड़ी। उनमें से एक तो प्रायः पच्चीस वर्ष की सुन्दर स्त्री थी; दूसरी सोलह वर्ष की

लावण्यमयी बालिका। अश्वारूढ़ सवार कोई राजकुमार लगता था। अपने बदन पर लगी धूल झाड़कर वह उठ खड़ा हुआ और रथ के पीछे आ रहे दो सवारों को पुकारने लगा। परन्तु रथ के बीच में आ जाने से रास्ता बन्द हो गया था। अश्वारोही राजकुमार बलराम की ओर बढ़ा। इतने में कृष्ण ने उसका गला धर दबाया। राजकुमार गुस्से से लाल हो रहा था। पीछे मुड़कर वह चिल्लाया, 'मूर्ख ! जानता है, मै कौन हूँ ! विदर्भ का राजकुमार—रुक्मी—तेरे स्वामी कंस का मेहमान !'

'जब तूने अपना परिचय स्वयं ही दिया है, तो क्यों नही पहचानूँगा ?' कृष्ण ने अविचलित स्वर में कहा, 'पीछे जा ! तेरे साथ जो स्त्रियाँ हैं, उनको सँभाल और लोगों को हैरान करना बन्द कर !'

'दुष्ट !' रुक्मी ने म्यान मे से तलवार खीचते हुए कहा। परन्तु तलवार म्यान में से निकले इससे पहले ही कृष्ण ने उसे धराशायी कर दिया। रथ की दिशा मे धकेलते हुए, कृष्ण ने उसे उठाकर अनाज के बोरे की तरह रथ में फेंक दिया। अन्दर बैठी हुई दोनों स्त्रियाँ आवेश में आकर चिल्ला रही थी। उनमें से उस रमणीय कन्या ने कहा ! 'दुष्ट ! मेरे भाई को छोड़ !'

कृष्ण ने अपनी वही सुविख्यात हृदयहारी मुस्कान बिखेरते हुए कहा, 'यह आपका भाई है ? राजकुमारी, आपको चाहिए कि इसे राजाओं के योग्य व्यवहार करना सिखाएँ !'

'ओह, क्या दशा कर दी है तुमने मेरे भाई की !' राजकुमारी रो रही थी।

परन्तु कृष्ण की आँखों में एक अजीब मस्ती और मोहिनी थी। 'चिन्ता न करो, सुकन्ये !' उसने कहा, 'आपके भाई का केवल घमंड ही टूटा है, और सब सही-सलामत है। अब यह विवेक से काम लेना सीखेगा—आपके प्रति भी अधिक विनयशील होगा !'

यह कहकर कृष्ण हँस पड़ा। कृष्ण की जादू-भरी चितवन किसे प्रभावित नही करती ? विदर्भ की इस राजकन्या की आँखों में तो अश्रु थे, पर होंठों पर एक हल्की-सी मुस्कान आए बिना नही रही।

इसके बाद कृष्ण बैलों के पास गया। वे अब भी भड़के हुए थे और

भागने का प्रयत्न कर रहे थे। कृष्ण मानवों को वश मे करने के साथ-साथ पशुओ को वश मे करने की कला भी जानता था। वह निर्भय होकर आगे बढा और बड़े स्नेह से बैलों को पुचकारा। कुछ मीठे शब्द, कुछ हल्की-सी थपथपाहट—और बैल शान्त हो गए। कृष्ण बैलों के गले पर बड़े प्रेम से हाथ फेरने लगा। बैलों का भय दूर हुआ। थोडी देर बाद उन्हें रास्ते पर यथास्थिति खड़ा कर, रास रथ चलानेवाले की ओर फेंककर कहा, 'ध्यान रखना इनका—बड़ी सुन्दर जोड़ी है!' फिर उसने राजकुमारी की ओर देखकर अपनी मोहक मुस्कान बिखेरी। रथ रवाना हुआ तो उसके पीछे-पीछे रुक्मी भी नम्र होकर चला गया।

विराट जनमेदनी इन दो भाइयो का पराक्रम देखकर आश्चर्यचकित रह गई थी और अपूर्व आदर से उन्हें निहार रही थी। उन्होंने त्रिवक्रा की विकृतियाँ दूर की; वेगवान अश्व को खिलौने की तरह उठा लिया; कस के राजसी मेहमान को धराशायी किया और बोरे की तरह उठाकर फेक दिया; भड़के हुए बैलो को शान्त किया। त्रिवक्रा अब सीधी चल सकती थी। उसके हर्ष का पार नही था। उसके जीवन का स्वप्न आज परिपूर्ण था। उसके हृदय में उमड़ती आनन्द और आभार की भावना छिपी नही रही। अपने बगल में खड़े व्यक्ति के कान में उसने कहा, 'यही तो है देवकी का आठवाँ पुत्र! आखिर नारद की भविष्यवाणी सच ठहरी!'

जनसमुदाय के प्रेम और आदर-भरे अभिवादनों को स्वीकार करते हुए कृष्ण और बलराम आगे बढ़ रहे थे। कई लोगों ने उनके पीछे-पीछे चलना भी शुरू किया, जिनमें त्रिवक्रा प्रमुख थी। इन दो सुन्दर, सुकुमार बालकों के पीछे वह पागल-सी हुई जा रही थी—कृष्ण को तो वह प्रभु का अवतार ही मानती थी! दोनों भाइयों को वह शहर के दर्शनीय स्थान दिखाती हुई चल रही थी।

रगरेज़ और रुक्मी की जो दशा कृष्ण-बलराम के हाथों हुई, उसकी सूचना राजमहल तक पहुँची और सेनापति प्रद्योत अपने साथ कुछ सैनिकों को लेकर तत्काल घटना-स्थल पर पहुँचा। वहाँ पहुँचकर पूछ-ताछ करने के बाद कृष्ण-बलराम जिस ओर गये थे उसी ओर वह चला।

नगर में स्वच्छन्द घूमते हुए ये बालक जब उसको दूर से दिखाई पड़े तो प्रद्योत घोड़े पर से उतरा और पैदल ही उनके पास गया। उनके व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना वह भी नही रह सका—कृष्ण की मोहिनी ने उस पर भी अपना प्रभाव दिखाया।

'आप कौन है ?' बलराम ने पूछा।

'मैं प्रद्योत हूँ, अन्धको का सरदार, राजा कस का सेनापति !' प्रद्योत ने कहा।

'आपके शहर में कैसे-कैसे असभ्य लोग भरे है !' बलराम ने स्पष्ट कहा, 'हमने शहर मे प्रवेश किया कि एक आदमी ने कृष्ण को मारने का प्रयास किया और दूसरे ने मुझ पर कोड़ा चलाया !'

बलराम ने रुक्मी के कोड़े से अपने शरीर पर पड़ा दाग दिखाया।

'आपका यह अतिथि-सत्कार तो आदर्श लगता है !' उसने कहा और मुक्त रूप से खिलखिलाकर हँस पड़ा।

कृष्ण ने हाथ जोड़कर कहा, 'आपसे मिलकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई, अन्धक-श्रेष्ठ ! आपके बारे में हमने बहुत-कुछ सुना है।' कृष्ण की वाणी में गौरव और आदर दोनों थे, 'आप तो परम वीर है।'

'प्रद्योत काका, रगरेज़ का बर्ताव इन बालकों के साथ इतना असभ्य था।' त्रिवक्रा ने कहा, 'और विदर्भराज ने तो बलराम पर कोड़ा चलाया !'

प्रद्योत इस सुन्दर नारी को एकटक देख रहा था। उसकी आँखे आश्चर्य से फटी रह गई। 'तू कौन है ?' उसने पूछा।

'आप मुझे भूल गए, काका ?' त्रिवक्रा ने हँसकर कहा, 'आज सवेरे ही तो आपको इत्र और अनुलेप दे गई थी। मै देखती हूँ, आप भुलक्कड़ होते जा रहे हैं।' उसने सहज, परिचित सरलता से कहा।

प्रद्योत को अपनी आँखो पर विश्वास नही हुआ।

'त्रिवक्रा, तुझे क्या हुआ ? तेरी विकृतियाँ कहाँ चली गई ! तू तो बड़ी सुन्दर लग रही है !' उसने कहा।

'यह सब मेरे प्रभु की माया है !' उसने हाथ जोड़कर कृष्ण को प्रणाम करते हुए कहा।

प्रद्योत कृष्ण की ओर ताकने लगा। अब उसकी समझ में आया, यही तो देवकी का आठवाँ पुत्र है ! उसीकी हत्या करने की आज्ञा उसे मिली थी। यदि वह त्रिवक्रा की विकृतियाँ मिटा सकता है, तो निश्चय ही ईश्वर का अवतार है। फिर तो नारद की भविष्यवाणी सच सिद्ध होनी चाहिए। कंस के महल के अँधेरे गलियारे मे जो कुकृत्य हुआ उसने उस दिन देखा था, उसकी कड़वाहट अभी उसके मन से गई नही थी।

'मै तुमको नगर-दर्शन के लिए ले चलता हूँ,' प्रद्योत ने कहा, 'तुम लोगो को शहर देखना है न ?'

'हाँ, हमे सब-कुछ देखना है।' कृष्ण ने कहा।

'मुझे तो वह विराट धनुष देखना है,' बलराम ने कहा, 'हमने उसके बारे मे बहुत सुना है।'

'मेरे साथ चलो—मै तुम्हे मण्डप मे ले चलता हूँ—वहाँ धनुष की पूजा हो रही है।' प्रद्योत ने कहा।

वे सब मण्डप की ओर चल पड़े। त्रिवक्रा रास्ते में पड़े स्थलों का वर्णन कर रही थी। मण्डप के पास पहुँचकर प्रद्योत ने दोनों भाइयो से पूछा, 'तुममे से किसी ने ऐसे धनुष का उपयोग किया है ?'

'आपके समान धनुष हमारे पास कहाँ से आएगा ? हम तो बाँस या लकड़ी से धनुष बनाते है; जंगली जानवरो को मारने के लिए वह काफी है।'

यमुनातट पर, राजमहल के पास ही एक विराट मण्डप बनाया गया था। दैवी धनुष को देखने बहुत-से लोग आते थे, जिनमें महोत्सव के लिए आमन्त्रित विशिष्ट अतिथि भी थे। मंडप के बीच एक पीठिका पर यह धनुष रखा गया था। उसके तीनो ओर बैठे हुए ब्राह्मण मंत्रोच्चार द्वारा धनुप की पूजा कर रहे थे। बहुत-से मेहमान इस विचित्र धनुष को देखकर आश्चर्य व्यक्त करते थे, तो धनुष-प्रतियोगिता मे भाग लेने के इच्छुक उसका सूक्ष्मता से अवलोकन करते थे। इस धनुर्यज्ञ में अन्तिम दिन जो व्यक्ति इस धनुष को उठाकर उस पर से सबसे दूर तीर फेंक सकेगा, वही वीर घोषित किया जाएगा और योग्य पारितोषिक भी

पाएगा ।

धनुष के समीप पहुँचने पर प्रद्योत ने त्रिवक्रा के कान में कुछ कहा। त्रिवक्रा ने कृष्ण के सामने एक अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा। ऐसा लगा कि कृष्ण उसका मर्म समझ गया। इस धनुष से कोई बाण छोड़ सके या नही, यह इतना महत्त्वपूर्ण नही था। यह धनुष ही कंस की सभा का प्रतीक था, लोगों को भय में रखने का साधन था। कृष्ण धनुष को एकाग्रता से देख रहा था। एक अवर्णनीय स्फुरणा का अनुभव उसने अपनी समस्त देह मे किया।

तभी त्रिवक्रा ने कहा, 'प्रभु, आप यह धनुष उठाकर तो देखे ! प्रद्योत काका के कुशल आयुधविदों ने इसकी रचना की है।' त्रिवक्रा के इस कथन के पीछे चाहे कुछ अर्थ रहा हो या नही, यह धनुष भय का प्रतीक है और इसलिए इसे नष्ट करना ही चाहिए, ऐसा सोचकर कृष्ण ने कहा, 'मैं निष्णात धनुर्धर नही; मैं तो एक सामान्य ग्वाला हूँ। फिर भी अन्तिम दिन मेरा विचार स्पर्धा में भाग लेने का है। क्या मैं इसे उठाकर देख सकता हूँ कि यह कितना भारी है ?'

'हाँ, नन्दकिशोर !' प्रद्योत ने त्रिवक्रा की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि डालते हुए कहा, 'परन्तु तुम इसे उठा नही सकोगे। कुशल धनुर्धर भी इसे नही उठा पाते।'

प्रद्योत के मन में एक विचार का उदय हुआ। क्या यह बालक सच-मुच तारणहार है ? कंस के अत्याचारों से क्या वह प्रजा को बचा सकेगा ?

'फिर भी प्रयत्न करने में क्या जाता है ?' प्रद्योत ने कहा।

कृष्ण थोड़ी देर तक धनुष के सामने ताकता रहा, मानो उसके भार का अन्दाज़ लगा रहा हो। सभी लोग सशंक और कई तो उपहास-भरी दृष्टि से उसकी ओर देख रहे थे। एकाएक नीचे झुककर उसने धनुष उठा लिया। आसपास के लोग इस घटना से दंग रह गए।

'अन्तिम दिन इस धनुष का उपयोग होगा ?' कृष्ण ने पूछा।

'हाँ,' प्रद्योत ने कहा। अब उसकी वाणी मे एक नया आदर था।

'इस धनुष से तीर छोडने का काम अति विकट है ?' कृष्ण ने सरलता से पूछा। धनुष को वह बारीकी से देख रहा था; अचानक उसमें

एक जोड़ उसे दिखाई पड़ा। धनुष को वापस रखने के बजाय अपना एक पैर उसने धनुष के एक छोर पर रखा और दूसरे सिरे को ज़ोर से खींचा। सभी लोग आश्चर्य और भय से उसकी ओर देख रहे थे। एक आवाज़ कर धनुष टूट गया। कृष्ण ने धनुष के टुकड़े फेंक दिए और अट्टहास किया।

यह पराक्रम अपूर्व था—इसमें कंस का अपमान था, यज्ञ का भंग था। परन्तु सभी ने अत्यन्त विस्मय और भय की भावना से देखा कि दोनो भाई सम्पूर्ण उपेक्षा दिखाते हुए वहाँ से चल दिए। उस घड़ी प्रद्योत के हृदय में दो मिश्र भावनाएँ थीं—पश्चात्ताप की और प्रसन्नता की।

३४

गजपाल अंगारक

प्रद्योत ने अपने स्वामी कंस के पास जाकर कृष्ण द्वारा किये गए यज्ञभंग की सूचना दी। हृदय में अति हर्षित होते हुए भी उसके चेहरे पर घोर विषाद के चिह्न थे। कंस तो यह खबर सुनकर ठण्डा ही पड़ गया। दिन-भर से उसे आज अशुभ समाचार ही मिल रहे थे। सारी प्रजा गोकुल के इन दो छोरों पर मोहित हो रही थी। त्रिवक्रा की विकृतियाँ चमत्कारिक ढंग से दूर हो गईं। राजा भीम के पुत्र रुक्मी का भरे रास्ते पर मान भग हुआ। और, अब देवकी के आठवें पुत्र ने यज्ञ के विराट धनुष को भी तोड़ डाला! तो क्या उसकी मृत्यु समीप आ पहुँची? इस विचार मात्र से वह काँप उठा।

'कृष्ण ने इस धनुष को तोड़ कैसे डाला?' कंस ने पूछा, 'वह तो

काफी मजबूत था ।'

'तमाम आयुधविदों का भी यही अभिप्राय था । धनुष में कोई खामी नहीं थी । कृपानाथ ने भी उसे देखा था ।' प्रद्योत ने अति मधुर स्वर में कहा ।

'परन्तु तुमने उस छोकरे को यह धनुष उठाने ही क्यो दिया ?'

'मैं क्या करूँ, प्रभु ?' प्रद्योत ने हाथ जोड़कर कहा, 'धनुर्यज्ञ के नियम का उल्लंघन कैसे करता ? जो भी इस स्पर्धा में भाग लेना चाहे उसे धनुष के निरीक्षण का अधिकार है ।'

'अब महोत्सव का क्या होगा ?' कंस ने कहा, 'धनुष के बिना धनु-र्यज्ञ कैसे होगा ?'

'यह दुर्भाग्यपूर्ण घटना अवश्य है,' प्रद्योत ने कहा, 'परन्तु किया क्या जाए ? मैंने पण्डितों से पूछा है । उन्होंने कहा कि दूसरा धनुष तैयार हो सकता है और उसका शास्त्रोक्त पूजन भी हो सकता है ।'

'तो अब देर न करो,' कंस ने आज्ञा दी, 'यज्ञ की पूर्णाहुति कल नही परसों होगी । कल मल्लयुद्ध का कार्यक्रम होगा । प्रद्योत, नन्द के छोकरे तुम्हें कैसे लगे ?'

'बड़ा लड़का ऊँचे क़द का और शक्तिशाली युवा है,' प्रद्योत ने कहा, 'उसने राजकुमार रुक्मी के वेगवान अश्व को आसानी से रोक लिया, बल्कि पीछे भी हटा दिया । छोटा भाई कृष्ण कोमल और सुन्दर है । उसमें इतनी ताकत कहाँ से आई, यही विस्मय का विषय है ।'

'वे इस समय कहाँ है ?' कंस ने पूछा ।

'वे नगर के बाहर नन्द और ग्वालो के शिविर मे हैं ।'

कंस गम्भीर विचार में पड़ गया । अपनी आदत के अनुसार विचार करते समय वह मूँछों पर ताव देने लगा । दृष्टि जमीन पर गड़ाए था । अन्त मे उसने पूछा, 'प्रद्योत, क्या मैं तुम पर विश्वास कर सकता हूँ ?'

प्रद्योत ने प्रतिप्रश्न किया, 'कृपानाथ, पिछले बीस वर्षों से मैं आपकी सेवा कर रहा हूँ—मेरी निष्ठा में कही आपको शंका के लिए स्थान मिला ? यदि ऐसा है तो मुझे इसी क्षण हटा दे, मैं नगर छोड़कर चला जाऊँगा ।'

कंस ने कुछ जवाब नहीं दिया। उसके मन में विचारों का तूफान उठ रहा था। कही प्रद्योत दोहरी चाल तो नही चल रहा है ? जो भी हो, इस समय उसे खोना ठीक नहीं होगा। उसने कहा, 'प्रद्योत, मुझे तुममें पूर्ण विश्वास है। तुमने जिस निष्ठा से मेरी सेवा की है, उसे मैं नही भूल सकता। अच्छा, जाओ !'

तुरन्त ही कंस को याद आया। उसने प्रद्योत को वापस बुलाकर कहा, 'प्रद्योत, देखना, मेरी आज्ञा का अनादर न हो। कृष्ण को मेरे सम्मुख न आने दिया जाए !'

'प्रभु, कल के मल्लयुद्ध में तो सभी आयेंगे। नन्द भी अपने दल-बल के साथ आएगा। फिर कृष्ण को किस प्रकार रोका जाए ?'

'हूँ ! तुम्हारी बात सच है—यहाँ हम निरुपाय है। अच्छा, जाकर यह घोषणा कर दो कि धनुर्यज्ञ की पूर्णाहुति परसों होगी, कल मल्लयुद्ध होगा।'

प्रद्योत के जाने के बाद कंस ने ताली बजाकर परिचारिका को बुलाया। उसने पूछा, 'त्रिवक्रा वापस आई ?'

'हाँ महाराज ! इस समय वह राजकुमारी के खण्ड में है।'

वृतघ्न बाहर प्रतीक्षा कर रहा था। वह अन्दर आया।

'वृतघ्न, प्रद्योत ने तुमसे कार्यक्रम में परिवर्तन होने के बारे में बताया न ?' कंस ने पूछा, 'तुम्हे यह सब कैसा लगा ?'

'बहुत ठीक नही लगा,' वृतघ्न ने कहा, 'शहर में उत्तेजना फैल रही है। नन्द के लड़कों ने लोगों पर अच्छा प्रभाव डाला है।'

'यह तो देख लिया जाएगा। परन्तु अब प्रतीक्षा करना ठीक नही। अपने आदमियों को तैयार रखना—ज़रा भी गफलत न हो ! बहुत-से यादव सरदार वहाँ उपस्थित रहेगे। तुम्हें संकेत दूँगा। अच्छा जाओ—जरा अगारक को भेजते जाना।'

'जैसी कृपानाथ की आज्ञा।' मगध के राजकुमार ने कहा और कंस से विदा ली।

त्रिवक्रा आज फूली नहीं समा रही थी। राजकुमारियो के बीच बैठकर वह हँस रही थी, मज़ाक कर रही थी और अपने घनश्याम प्रभु तथा

उनकी महिमा का अथक बखान कर रही थी। कंस की रानियो को तो इससे भय का ही अनुभव हुआ, परन्तु दूर-दूर से महोत्सव में भाग लेने के लिए आई हुई राजकुमारियाँ आश्चर्यविमुग्ध हो कृष्ण के विषय में अपना कौतूहल रोकने में असमर्थ थी। उनमें से दो स्त्रियो के अन्तर में एक-दूसरे से विरोधी भावनाएँ घर कर रह थी। राजा भीमक के पुत्र रुक्मी की स्त्री तो लाज के मारे अपना सिर भी ऊँचा नहीं कर सकती थी—एक ग्वाले ने उसके पति का अपमान किया और उसे इस अपराध की सजा देने वाला कोई नही था। यदि उसके अपने राज्य में ऐसा हुआ होता तो अपराधी का सिर धड़ से कभी का जुदा हो गया होता। त्रिवक्रा की बातों मे रस लेने वाली दूसरी राजकुमारी थी रुक्मिणी। रुक्मी की सोलह वर्ष की यह बहन अत्यन्त रूपवती थी। अपने भाई की उद्दण्डता से वह भली-भाँति परिचित थी। उसकी अक्ल ठिकाने लगानेवाले मोरपंखधारी किशोर की मोहिनी मूर्ति उसके हृदय में बस गई थी। इतनी सुकोमल देह में इतनी प्रचण्ड शक्ति का होना सचमुच आश्चर्य का विषय था। उसकी मादक आँखे अभी भी उसके मनश्चक्षु के समक्ष तैर रही थी।

त्रिवक्रा राजकुमारियो के आवास से बाहर निकली, तब उसे लगा कि कोई पीछे दौड़कर उसी की ओर आ रहा है। वह वही रुक गई। नजदीक आने पर वह रुक्मिणी जान पड़ी। आते ही त्रिवक्रा का हाथ पकड़कर उसने कहा, 'त्रिवक्रा, उस ग्वाले किशोर को बचाना—वह श्याम सुन्दर है न, उसे! ये लोग उसकी हत्या करने का प्रयास कर रहे है!'

'उसे कोई नही मार सकता, राजकुमारी! वह तो स्वय भगवान् हैं। परन्तु देखती हूँ कि आप उसके पीछे पागल हो रही है—आपकी आँखे ही सब भेद बता रही है।' त्रिवक्रा ने कहा।

'धत्! मैं जो कह रही हूँ उसे सुन! यहाँ कोई कुवलयापीड नामक दुष्ट जन है? कल वही उस छोकरे को मारने वाला है। कंस की रानियों में यही चर्चा हो रही थी। मैंने खुद उसे सुना है।' रुक्मिणी ने कहा।

'आपने और कुछ भी सुना है? जरा बताइए तो!'

'मैं जा रही हूँ। मेरे भाई को इसकी खबर लग जाए तो वह मुझे जीवित ही न छोड़े।' रुक्मिणी ने कहा और दौड़ती हुई वापस चली गई।

त्रिवक्रा विचार-सागर मे डूब गई ।

कुवलयापीड कोई आदमी नही था—वह तो एक महा भयानक हस्ति था । वह कल नन्दकुमार को मार डालेगा ? कैसे ? फिर भी गफलत में रहने का समय नही था । उसे अपने पति अगारक की याद आई । वर्षों पहले पति ने उसे त्याग दिया था । वह सबसे बड़ा महावत था और कुवलयापीड उसी की देख-रेख में रहता था । उसे इस बात की जानकारी अवश्य होनी चाहिए । क्षण-भर तो वह हिचकिचाई । अंगारक ने कुब्जा को विकृताग जानकर छोड़ दिया था; उसके अलावा दो और स्त्रियों के साथ उसने विवाह कर लिया था। उसके पास जाते त्रिवक्रा के अभिमान को चोट पहुँचती थी; परन्तु दूसरी ओर उसके 'प्रभु' की सेवा थी ।

अगारक का दर्जा काफ़ी ऊँचा था । हाथियों की सँभाल रखने, उन्हें युद्ध अथवा विशेष समारम्भों के लिए तैयार करने का भार उसी पर था । उसकी उम्र अब पचास के करीब हो गई थी । मध्य रात्रि हो चुकी थी, फिर भी वह अपने महल में जाग रहा था । उसकी एक स्त्री उसके पैर दबा रही थी और दूसरी पखा झल रही थी । परन्तु उसे किसी भी तरह चैन नही था । उसे एक अप्रिय कर्तव्य-भार की चिन्ता सता रही थी । उसकी दोनों स्त्रियाँ अन्दर-ही-अन्दर किसी के बारे में उत्साहपूर्वक बाते करती थीं, जिसे सुनकर अगारक को स्वय पर लज्जा आ रही थी । उसे उन स्त्रियों को लात मारकर चुप कराने का मन हुआ, फिर भी वह शान्त पड़ा रहा । अपने आस-पास दुखी पत्नियों का रहना उसे अच्छा नहीं लगा । इतने में दरवाजे पर घण्टा बज उठा । अंगारक भयभीत होकर उठ बैठा । इस समय कौन होगा ? आज अपने स्वामी कंस से वह इतनी बार मिल चुका था कि अब और उसके पास जाने की कल्पना से ही वह कॉप उठा ।

बड़ी स्त्री ने पति की ओर देखा । उसके चेहरे पर सम्मतिसूचक भाव देखकर वह उठी और दरवाज़ा खोल दिया । त्रिवक्रा अन्दर आई । सुडौल देह वाली इस सुन्दरी को भीतर आते देखकर सभी आश्चर्य-चकित रह गई । अगारक तो ऑखे मलने लगा और उसकी दोनों हृष्ट-पुष्ट स्त्रियाँ डरकर इस तरह काँपने लगीं मानो कोई प्रेत दीख गया हो ।

'तू कौन है ?' अंगारक ने पूछा। उसे अपनी आँखों पर विश्वास ही नहीं हो रहा था।

'मुझे भूल गए क्या, आर्यपुत्र ?' त्रिवक्रा ने हँसकर कहा।

'बहन, तेरी कुरूपता चली गई ?' बड़ी पत्नी ने आश्चर्य व्यक्त किया। उसकी ईर्ष्या-भरी दृष्टि आकर्षक त्रिवक्रा के अंग-अंग पर फिर रही थी। इस मोहिनी स्त्री के सामने वह स्वयं कितनी स्थूल लगती थी—सात-सात पुत्रों की माँ जो वह बन चुकी थी।

'यह तो मेरे प्रभु की कृपा है !' त्रिवक्रा ने कहा, 'आर्यपुत्र, वैसे तो हम वर्षों से नहीं मिले, परन्तु अपने प्रभु के चमत्कार की बात कहने के लिए मै आपके पास चली आई हूँ।'

'त्रिवक्रा, यह सब कैसे हुआ ? बैठ, सारी बातें मुझसे कह !' अंगारक ने कहा। वह भूल गया कि पिछले बीस वर्षों से वह इस स्त्री की अवहेलना करता आया है, उसे छोड़ चुका है और सारे महल के उप-हास की पात्र वह बन गई थी। त्रिवक्रा बैठी। उसके चेहरे पर आकर्षक मुस्कराहट थी। अगारक का आधा मन तो इसीने जीत लिया। त्रिवक्रा ने पानी माँगा और छोटी पत्नी उसे लेने दौड़ी।

'नन्द के पुत्र द्वारा किये गए चमत्कार की बात घर-घर हो रही है। मुझे बता तो सही कि आखिर हुआ क्या ?' अंगारक ने अपनी पत्नी के नवप्राप्त सौन्दर्य की ओर एकटक निहारते हुए कहा।

'नन्द का पुत्र देखने में कैसा है ?' बड़ी पत्नी ने पूछा।

छोटी बहू पानी लेकर आई। त्रिवक्रा ने पानी पिया और बोली, 'नन्द का पुत्र ! अरी, वह नन्द का पुत्र ही कहाँ है ? आर्यपुत्र, मै आपसे कुछ कहना चाहती हूँ, यदि आप उसे गुप्त रख सके तो !' उसने दोनो पत्नियों की ओर देखा।

'तुम लोग अन्दर जाओ !' अंगारक ने दोनों से कहा।

दोनों को ही यह जानने का कौतूहल हुआ कि यह रहस्य क्या है ; परन्तु पति की आज्ञा को भी टाला नहीं जा सकता था। त्रिवक्रा पर रोषपूर्ण दृष्टि डालती हुई वे दोनों चली गई।

'मुझे नन्द के पुत्र के बारे में बता, त्रिवक्रा ! आज तक तो मैं उसकी

बाते ही सुनता आया हूँ, पर अब तो उसे प्रत्यक्ष देखूँगा। तुम तो कोई अप्सरा ही बन गई हो, मालूम होता है !'

'वह नन्द का पुत्र नही, देवकी का आठवाँ पुत्र है। आपके स्वामी से हम सबको उबारने आया है।' उसने धीरे से कहा।

अगारक इन शब्दों को सुनकर आसपास देखने लगा। 'कहते है, दीवारों के भी कान होते है !'

'हे भगवान् !' उसने गहरी नि.श्वास लेकर कहा।

'आप इतने दुखी क्यों दिखाई पड़ते हैं, आर्यपुत्र ? हम सबके लिए एक नये प्रभात का उदय हो रहा है। क्या आप इस अत्याचारी शासन से त्रस्त नहीं ? एक दुष्ट की गुलामी से आपको घृणा नही आती ?' त्रिवक्रा ने पूछा।

'ऐसा मत कह—कोई सुन लेगा !' अंगारक ने कहा।

'कितनी बार आपका अपमान हुआ है ! कितनी बार एक जुल्मी सितमगर की मर्जी के अधीन आप हुए है ! परन्तु महर्षि नारद की भविष्यवाणी अब सच होगी ! हमारे तारणहार अब आ पहुँचे है !'

'सचमुच ही वह तारणहार है ?' अगारक ने पूछा।

'मेरी तरफ देखो ! प्रभु के सिवाय कौन मुझे एसा सौन्दर्य प्रदान कर सकता है ? मेरी कुरूपता को कौन दूर कर सकता है ? यज्ञ के धनुष को कौन तोड़ सकता है ? कल देखना। जुल्मी के पापों का हिसाब करने वह पहुँच गया होगा !' त्रिवक्रा ने श्रद्धा के साथ कहा।

'त्रिवक्रा, तुम्हें मेरी बदनसीबी का खयाल भी न होगा···मै बहुत दुखी हूँ।' अगारक ने कहा।

'क्या बात है ? मुझसे कहें। मैं देवकी के पुत्र का आशीर्वाद आपके लिए प्राप्त कर सकूँगी—वह मुझ पर बहुत दयालु हैं !' त्रिवक्रा ने गर्व से कहा।

'मुझे कोई नही बचा सकेगा···मेरा समय आ गया है···कल मैं इस संसार में नही रहूँगा···' अंगारक ने कहा। उसकी वाणी में निराशा झलक रही थी।

'परन्तु बात क्या है, मुझे बताइए तो सही ! शायद मैं आपकी कोई

सेवा कर सकूँ। देवकी के पुत्र और कुवलयापीड की कोई बात है ?'

'तुमसे किसने कहा ?' आँखे फाड़कर अगारक ने पूछा।

'देवकी के पुत्र को कोई नही मार सकता।' त्रिवक्रा ने कहा।

'मुझे ऐसी ही आज्ञा हुई है,' अगारक ने रुद्ध कण्ठ से कहा।

'अत्याचारी की आज्ञा का पालन करना पाप है।'

'पर, मै क्या करूँ ?'

'देवकी के पुत्र की प्रार्थना करो ओर मेरी बात सुनो।'

बीस वर्षो से जिसका परित्याग कर रखा था, उसी पत्नी की बात अंगारक ने एकचित्त हो, आभारसहित सुनी। फिर कुछ देर के लिए त्रिवक्रा अपने आवास पर गई और वहाँ से कुछ वनस्पति ले आई, और सारी रात अगारक तथा त्रिवक्रा महाभयंकर हाथी कुवलयापीड को वह वनस्पति खिलाते रहे।

३५

मदोन्मत्त गजराज

पिछले दो दिनों मे जो-कुछ मथुरा में घटा, उससे वृद्ध और तरुण सभी यादव अत्यन्त उत्तेजित हो उठे थे। यादव मात्र के सम्माननीय वृद्ध बाहुक का लापता होना, कंस के आदेश से राजधानी में आए सभी यादवों पर मगध के राजकुमार के आदमियों का पहरा रहना, देवकी के पुत्रों का मथुरा बुलाया जाना, त्रिवक्रा का चमत्कारी रूप-परिवर्तन, दिव्य धनुष का भंग—इन सब घटनाओं से यादवो को लगा कि यदि कोई चमत्कार तत्काल नहीं हुआ तो देवकी के पुत्रों का बचना असम्भव है,

और फिर हमारी स्थिति भी नाजुक हो जाएगी। इन्ही विचारों से प्रेरित होकर सभी यादव सरदार मध्य रात्रि में वसुदेव के महल मे मंत्रणा करने गये।

अति सशंकित और चौकन्नी तथा धीमी आवाज़ में वे सलाह कर रहे थे। किसी ने मथुरा से भाग निकलना ठीक समझा तो किसी ने अन्त तक डटे रहना। अक्रूर से सलाह माँगी गई तो उन्होने अविचलित श्रद्धा के साथ कहा, 'हमारी रक्षा के लिए देवकी का पुत्र आ पहुँचा है, इसलिए अब नारद की भविष्यवाणी अवश्य सिद्ध होगी।'

'परन्तु आर्य, नारद की भविष्यवाणी सत्य ही होगी, ऐसी क्या आपकी दृढ प्रतीति है ?' एक तरुण ने मानपूर्वक, ऊँची आवाज में पूछा।

'हाँ, मै देवकी के पुत्र से मिला हूँ और जानता हूँ कि वही हमारा तारणहार है,' अक्रूर ने उत्तर दिया।

'और यदि वह तारणहार नही हुआ तो ?' एक संशयात्मा ने पूछा।

'तो फिर यह समझ लेना चाहिए कि हमारा विनाश अवश्यम्भावी है। परन्तु मेरा विश्वास है कि ऐसा नहीं होगा।'

'क्या ही अच्छा होता यदि आपकी जैसी श्रद्धा हममें भी होती !'

'वह तारणहार ही है। त्रिवक्रा को उसने रोगमुक्त किया, रुक्मी का दर्पभग किया और दिव्य धनुष को तोड़ डाला। इससे अधिक आश्वासन तुम्हें और क्या चाहिए ?'

जिस समय अक्रूर ऐसा बोल रहे थे उसी समय दो आदमियों ने खड में प्रवेश किया। मन्द और अस्थिर प्रकाश में पहले तो उन्हे किसी ने पहचाना नहीं। सभी शान्त हो गए। तब गर्गाचार्य की वाणी निस्तब्धता को भग करती हुई सुनाई पड़ी, 'महानुभावो, देवकराज की उदारचरित पुत्री आप सबको अपनी दृढ़ प्रतिज्ञा सुनाने आई है।'

भय और आदरमिश्रित भावना के साथ सभी ने उधर देखा। देवकी ने जो कष्ट सहे थे और जैसा तपोमय जीवन वह बिता रही थी, उससे वह ऐसी लग रही थी मानो साक्षात् कोई दिव्यात्मा उतर आई हो। दीपक के तले खड़ी देवकी का मुख आत्मबलिदान की आभा से प्रदीप्त था। शब्द उसके मुँह से प्रयास करने पर भी निकल नहीं पा रहे थे;

फिर भी किसी प्रकार अत्यन्त क्षीण स्वर में वह बोली, 'महानुभावो, आपके समक्ष इस प्रकार आकर बोलने के लिए आप मुझे क्षमा करे।' इतना कहकर वह रुक गई। सभी उत्सुकतापूर्वक उसके कुछ और कहने की प्रतीक्षा करने लगे। 'मैंने निश्चय किया है कि,' भावावेग से उसकी आवाज़ काँप उठी, 'यदि मेरे पुत्रो की हत्या की गई तो मैं अग्निस्नान करूँगी।'

यादव सरदार स्तब्ध होकर इस प्रकार देख रहे थे मानो धरतीकम्प से सामने की जमीन खिसक गई हो। केवल अक्रूर शान्त और स्वस्थ रह सके। उन्होने कहा, 'देवक की उदारचरित पुत्री! तुम्हारे बालकों को कुछ हो इससे पहले हम सब मर-मिट चुके होगे। यह मेरा वचन है।'

देवकी जिस प्रकार आई थी उसी प्रकार शान्ति से वापस चली गई। निर्णय हो चुका था। यादव सरदार गम्भीर और कृतनिश्चय होकर अपने-अपने धाम लौट गए।

राजमहल की छत पर बार-बार चक्कर काटता हुआ कस भी उतना ही गम्भीर और कृतनिश्चय हो चुका था। वह सोच रहा था, 'अब तक मैंने यादवो के साथ पूरी सख्ती से काम नही लिया। युद्ध पर जाने से पूर्व, और नहीं तो विजयी सेना के साथ वापस आने पर मुझे उनका सहार कर देना चाहिए था। फिर, किसी को वृन्दावन भेजकर वसुदेव के पुत्रो का भी सफाया कर देना उचित था। खैर, कोई बात नही, अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। यादव सरदारो का तो आज रात को ही काम तमाम कर सकता था, परन्तु इतने सब राज-अतिथियों के सामने अपने ही वंश के सौ सरदारो की एक साथ हत्या करना भी तो सम्भव नही। आज वसुदेव के पुत्रो का ही कुछ उपाय किया जा सकता है। ग्रामवासियो के डेरे पर वे ठहरे हैं और उनके चमत्कारो की कथा सुन-सुनकर दल-के-दल मथुरावासी उन्हें देखने के लिए जा रहे हैं। पता नहीं क्यों, लोगों ने यह मान लिया है कि कृष्ण ईश्वर का अवतार है। इसलिए उसे कोई मारने का प्रयत्न करे तो निश्चय ही उपद्रव हो सकते है, और यदि जनता उलट गई तो ऐसी स्थिति में, जिन पर सम्पूर्ण विश्वास रखा जा सकता है वे मागधी सैनिक भी टिक नही सकेंगे।'

परन्तु इस मुश्किल से निकलने का भी कंस को एक मार्ग सुझाई दिया। उच्चपदस्थ अंगारक विश्वासपात्र अधिकारी था। मदोन्मत्त गजराज कुवलयापीड शिकार को हाथ से न जाने दे, ऐसा प्रबन्ध वह कर सकता था। यदि ऐसा हो तो कृष्ण का उपाय अपने-आप निकल आएगा और कोई उसे दोष भी नही दे सकेगा। सूर्योदय के कुछ घण्टे बाद, लोग इकट्ठा हो तब तक तो अगारक अपना काम पूरा कर लेगा और तब लोगों की तारणहारवाली अन्धश्रद्धा भी निर्मूल हो जाएगी। उसके बाद स्वयं राजमहल के झरोखे मे आएगा और तब मल्लयुद्ध शुरू होगा। उस समय लोगों की श्रद्धा नारद की भविष्यवाणी मे नही रहेगी और सभी आनन्दपूर्वक मल्लयुद्ध देखेंगे।

आशा से भरे हृदय के साथ कंस निद्रामग्न हुआ। नीद मे भी उसे सुख-सपने ही दिखाई दिए। अपने परम शत्रु को उसने कुवलयापीड के पैरों तले रौदे जाते देखा और प्रचड गजराज ने जब अपना भारी पैर कृष्ण के शरीर पर रखा तब उसकी हड्डियो को भी चटखती हुई उसने सुना।

सुबह होते ही कस जग पड़ा और शीघ्र ही अपने विश्वासपात्र कर्मचारियो की सहायता से स्नानादि से निवृत हो गया। तब इत्र और सुगन्ध लेकर त्रिवक्रा उपस्थित हुई। विकृताग, लंगड़ी और कुरूप त्रिवक्रा, जिसकी सब हँसी उड़ाते थे, आज अपूर्व सुन्दरी और सुघड़ अंगोंवाली रमणी दीख रही थी! कंस को विस्मय हुए बिना नहीं रहा। क्या यह चमत्कार देवकी के पुत्र ने ही किया?

'तुझे क्या हुआ त्रिवक्रा?' उसने पूछा।

'प्रभु, मै निरोग बन गई। अब बिलकुल अच्छी हूँ।' आनन्दपूर्वक मुस्कराती और अपने शरीर पर गर्व-भरी दृष्टि डालती हुई त्रिवक्रा बोली। इत्र की रुपहली पेटी उसने कस के समक्ष रखी। कंस के मन में फिर शंका जागी। क्या नारद की भविष्यवाणी अन्ततः सत्य ही सिद्ध होगी? उसे त्रिवक्रा को यह पूछने का साहस भी नही हुआ कि यह चमत्कार किसने किया। जल्दी से इत्र और सुगन्धित द्रव्य उसने अपने शरीर पर लगाये और परिचारिकों को विदा किया। अब वह कृष्ण को कुवलयापीड

के पैरों तले रौंदे जाने को देखने के लिए अधीर हो उठा। जल्दी से उसने अपना मुकुट और अलंकार धारण किये, कमर में तलवार खोसी और जिस मुख्य द्वार से कुवलयापीड लाया जानेवाला था, उसे अच्छी तरह देखा जा सके, इस हेतु खिड़की के पास जाकर खड़ा हो गया।

खिड़की के पास खड़े-खड़े कस को ऐसा लगा मानो समय की गति अत्यन्त मन्द हो गई है। बडी मुश्किल से वह धीरज रख पा रहा था। धीरे-धीरे लोगों को आते हुए उसने देखा। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र चौक में आकर अपने-अपने नियत स्थानों पर बैठ गए। मुख्य स्थान के आसपास राजकुमार वृतघ्न के आदमियों को व्यूहात्मक दृष्टि से खड़ा किया गया था। उस स्थान पर धीरे-धीरे यादव सरदार आकर बैठे। स्त्रियो की बैठक भी सब भर गई थी। रंग-बिरंगे वस्त्र धारण कर आयी हुई ये तमाम स्त्रियाँ आँखे फाड़-फाड़कर नन्द के पुत्रों को देखने के लिए सचेष्ट थी।

कुछ देर बाद शंखध्वनि गूँज उठी। कन्धों और जाँघ पर ताल ठोकते, राज्याश्रित पहलवान मैदान मे आए और चारों ओर घूम-घूमकर मल्ल-युद्ध के लिए लोगों को आमन्त्रण देने लगे। कंस को अपने पहलवानों पर बड़ा नाज था। चाणूर तथा मुष्टिक उनके सरदार थे। चाणूर पहाड़ के समान विशालकाय और भारी-भरकम था। मुष्टिक ऊँचे कद का था। विकसित स्नायुओंवाला यह दैत्य देखने में क्रूर और विरूप था।

अन्त में कुवलयापीड ने चौक में प्रवेश किया। सुनहरी जरी के वस्त्र पहनकर अंगारक उस पर महावत की जगह बैठा। प्रचंड देह तथा प्रबल दन्तशूल वाला यह गजराज बार-बार अपने लम्बे कान हिला रहा था। सोने के आभूषणों से सज्जित वह बड़ा भव्य लग रहा था। अन्ततः अपने स्थान पर आकर वह खड़ा हुआ, सूँड उठाकर उसने सलामी दी और आनन्दपूर्वक वातावरण की गन्ध लेने लगा।

कस को आश्चर्य हुआ कि सदा जोर से लम्बे-लम्बे डग मारने वाला कुवलयापीड आज मस्ती से धीरे-धीरे क्यों चल रहा है। उसकी आँखों मे सदा रोष और अधैर्य झलकता था, पर आज तो वह परम मगन था। इस परिवर्तन का क्या अर्थ हो सकता है ? यह मात्र उसकी कल्पना तो

नही ? नही, यह कल्पना नही हो सकती । कस ने इस प्रचड गजराज को कभी भी इस प्रकार स्नेहपूर्ण दृष्टि लोगों की ओर डालते नही देखा था । वह तो इस प्रकार झूमते हुए चल रहा था मानो किसी नये उल्लास का अनुभव कर रहा हो । अधिकांश लोगों को उसके क्रोधी स्वभाव का पता था, इसलिए उसे देखते ही वे अलग हट जाते थे । पर, जब अगारक ने मुख्य दरवाजे पर लाकर उसे रोका, तब एक के बाद एक पैर पर अपनी देह को झुकाकर कुवलयापीड मानो नृत्य करने का प्रयत्न करने लगा ।

लोगो के जो टोले चले आ रहे थे उनने कस को कुछ विचित्र सादृश्य दिखाई पड़ा । दो तरुणो के पीछे-पीछे संख्याबद्ध ग्रामजन और नगरवासी भी, कोई हथियार बाँधे और कोई बग़ैर हथियार के, चले आ रहे थे । स्त्री-पुरुष उन युवकों का पादस्पर्श करके उनकी पदधूलि मस्तक पर लगाने के लिए अधीर थे । वही दो तरुण ! उन्हें पहचानने में भूल होना सम्भव ही नही था । उनका वर्णन कंस ने सुना था । एक का वर्ण घन-श्याम था और उसने पीले वस्त्र धारण कर रखे थे । दूसरा प्रचंड शरीर और गौरवर्ण का था; उसके वस्त्र बादली रंग के थे । देवकी के आठवें पुत्र को कस ने देखा और उसके सारे तन-बदन में आग लग गई । भविष्यवाणी के अनुसार यही था उसका परम शत्रु—उसीके हाथों उसका वध होनेवाला था । परन्तु अब कुवलयापीड उसे ठिकाने लगा देगा ।

दोनो तरुण गजराज के नज़दीक आ पहुँचे । कंस साँस रोककर प्रतीक्षा कर रहा था कि कब हाथी उन्हें सूँड में उठाकर ज़मीन पर पछाड़े और दोनों की हड्डी-पसलियाँ चूर-चूर हो जाएँ । परन्तु यह क्या ? कंस को अपनी आँखो पर विश्वास नही हो रहा था । युवकों के नज़दीक आने पर कुवलयापीड ने सूँड हिलाकर उनका मार्ग रोका । तब कृष्ण ने उसे कुछ कहा और हाथी ने सूँड ऊँची कर जोर से साँस ली—परन्तु सदा की भाँति क्रोध से नही । कृष्ण ने ज़रा हटकर निकल जाने का प्रयास किया । हाथी ने उस तरफ अपनी सूँड बढाकर रास्ता रोका । कृष्ण तब दूसरी ओर मुडा, परन्तु हाथी ने उस ओर भी सूँड लम्बी की । परन्तु यह सब वह खेल-खेल मे ही कर रहा प्रतीत होता था । फिर भी बहुत-से लोग भय-भीत हो गए और कुछ तो हाथों मे भाले इत्यादि लेकर भी कृष्ण की

रक्षा करने के लिए भी दौड़ पड़े । शोरगुल और चीख-चिल्लाहट से हाथी के घबडाने का ही भय अधिक था, इसलिए कृष्ण ने हँसकर हाथ के इशारे से इन घबड़ाए हुए लोगों को रोका और स्वय निर्भय होकर हाथी के कान के पास जाकर कुछ मधुर स्वर मे कहा । स्त्री और पुरुषो का ही नही, पशुओं का हृदय हरना भी कृष्ण को आता था । कुवलयापीड उसकी ओर इस तरह देख रहा था मानो कोई बरसों से बिछुड़ा साथी मिला हो । विचित्र रीति से उसने अपना शरीर घुमाया और भाँति-भाँति की अंगभंगियो से लोगो का मनोरजन करने लगा ।

कंस को अपनी आँखो पर विश्वास नही हुआ । यह क्रोधोन्मत्त हाथी आज कुछ अपूर्व रीति से वर्तन कर रहा था । उसकी आँखों मे उल्लास चमक रहा था । आह ! वह अपनी सूँड कृष्ण की ओर इस तरह बढा रहा था मानो वह चाहता हो कि उसकी सूँड को कृष्ण थपथपाये । आसपास के लोगो की चेतावनी की परवाह किए बिना कृष्ण उसी तरह स्नेह-भरी वाणी में कुछ कहता हुआ गजराज की ओर बढा, जिस तरह वृन्दावन मे वह गाय-बैलों के साथ हिल-मिलकर बातें करता था । हाथी ने सूँड बढ़ाकर कृष्ण को ऊपर उठा लिया । लोगों मे भगदड मच गई । चारों ओर भय-भरी चीखें सुनाई पड़ने लगी । कई स्त्रियाँ तो बेहोश हो गईं । हाथी ने आहिस्ता से कृष्ण को ऊपर उठाया, मृदुतापूर्वक अपनी सूँड उसके चारों ओर लपेटी और फिर सूँड को नीची कर उसे जमीन पर खड़ा कर दिया ।

लोगो ने तुमुल हर्षनाद किया । जय-जयकार से सारा वातावरण गूँज उठा । कृष्ण बड़ी कोमलता के साथ हाथी की सूँड को सहलाने लगा और उस उग्र गजराज की आँखे एक अपूर्व स्पर्श-सुख से मुँदने लगी । पहले एक पैर पर, और फिर दूसरे पैर पर, इस प्रकार उसने अपना शरीर नीचे की ओर झुकाना शुरू किया । अन्ततः किसी प्रकार अपने विशाल पैर पीछे की ओर मोड़कर वह जमीन पर निढाल हुआ और अपनी विशाल सूँड को फैलाकर उसने फिर आँखें बन्द कर ली । ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह आनन्द-समाधि में डूब गया है ।

३६

महामल्ल चाणूर

कंस को स्वस्थ होने मे कुछ समय लगा । देवकी के पुत्रों ने दरबार मे प्रवेश किया । उन्होंने सुन्दर वस्त्र धारण कर रखे थे । 'जय-जय नन्दनन्दन' की उल्लासपूर्ण जयध्वनि से वातावरण गूँज उठा । घनश्याम वर्ण का छोटा भाई तुरन्त पहचाना जा सकता था, अपने ज्येष्ठ बन्धु के पीछे-पीछे वह विनम्र भाव से आ रहा था ।

क्या यही छोकरा उसका नाश करेगा ? कंस—अजेय विजेता कंस—के अहम् को गहरी चोट लगी। उसने दाँत पीसे और प्रण किया कि भविष्य-वाणी को वह अवश्य असत्य सिद्ध करेगा; वह आखिरी दम तक लड़ेगा और देवकी के दोनो पुत्रों को अपने दोनों हाथो से पीसकर रख देगा । कंस ने ताली बजाई । तुरन्त परिचारक उपस्थित हुआ ।

अपने श्रद्धेय सलाहकार अद्य को बुलाने की आज्ञा उसने दी ।

अद्य देखने में कोई विशिष्ट व्यक्ति नही जान पड़ता था । उसके वृद्ध चेहरे पर खुशामद-भरी मुस्कराहट सदा खिली रहती थी । अपने स्वामी कस को प्रसन्न रखने के लिए जो-जो दाँव-पेंच उसने खेले थे, वे सब उसके चेहरे पर की क्रूर रेखाओं से स्पष्ट परिलक्षित होते थे ।

'अद्य, नन्द का पुत्र दरबार में आया ? कुवलयापीड को क्या हुआ ?' कंस ने पूछा ।

'कोई कहता है कृष्ण ने उसे मार डाला; कोई कहता है कि स्पर्श मात्र से उसने हाथी का स्वभाव बदल दिया । मैंने आदमी को सही खबर लाने के लिए भेजा है ।' अद्य ने उत्तर दिया ।

'अब अंगारक कुछ काम न आ सकेगा । लगता है अपने मल्ल दर-बार मे आ गए है । थोड़ी ही देर में मेहमानो के साथ मुझे दरबार में जाना पड़ेगा ।'

'जैसी कृपानाथ की आज्ञा,' अद्य ने आज्ञा की प्रतीक्षा करते हुए कहा ।

'मल्ल मैंदान में उतरे, इसके पहले ही चाणूर को वह सन्देश दे देना कि नन्द के पुत्र को ठिकाने लगाने का काम अब उसके जिम्मे है।'

'यह कैसे होगा ?' अद्य ने नम्रता से पूछा, 'चाणूर एक बालक को बाहुयुद्ध में कैसे ललकार सकता है ? शास्त्रो मे तो इसका निषेध है।'

आगन्तुक अतिथियों की पदचाप आँगन मे सुनाई पड़ी। कस ने अद्य की ओर आग्नेय नेत्रो से देखा और पैर पछाड़ता हुआ बोला, 'यह कैसे होगा, यह जानने की मेरी तनिक भी इच्छा नही है। यह मेरी आज्ञा है और उसे इसका पालन करना है, मै तो यही जानता हूँ।' नही तो...' कस ने दुर्भावनासूचक दृष्टि अद्य की ओर डाली।

राज्य के अतिथि आ पहुँचे थे। बड़ी कठिनाई से कस ने स्वय पर नियंत्रण किया और अद्य को हाथ के इशारे से विदा देकर मेहमानों का स्वागत करने आगे बढ़ा। राजमहल के बीचो-बीच एक चतुष्कोण सभा-खण्ड था। उसके एक ओर कस, उसके अतिथि राजपुरुष, विविध कुलों के सरदार, उच्च अधिकारी इत्यादिकों के बैठने के लिए विशिष्ट शामियाना बनाया गया था। सभाखण्ड की दूसरी ओर ब्राह्मण, विभिन्न यादव-मडलियाँ, ग्रामवासी और प्रजाजनो के लिए विशाल और सुशोभित मण्डप बनाया गया था, और सभाखण्ड के बीच में मिट्टी और रेत बिछाकर मल्लयुद्ध के लिए वर्तुलाकार स्थान बनाया गया था।

सभी शामियाने ठसाठस भर गए थे। खिड़कियों और अटारियों में से रंग-बिरंगी साड़ियाँ और शाल पहने स्त्रियाँ झाँक रही थी। ग्रामवासियों का मण्डप तो सभी के आकर्षण का केन्द्र बन गया था। उसमें सबसे आगे नन्द के नेतृत्व में वृन्दावन के गोप-ग्वाल बैठे थे। कृष्ण और बलराम को सहज ही पहचाना जा सकता था। सबकी जबान पर उनका नाम था और उन्हें देखने के लिए शामियाने के पास छोटे-छोटे अनेक दल जमा हो रहे थे।

शखध्वनि हुई, और कंस तथा उसके अतिथियों के आगमन की सूचना मिलते ही सर्वत्र सन्नाटा छा गया। सदा की भाँति उनके स्वागतार्थ जो हर्षनाद सुनाई पड़ता था, वह आज कही नहीं सुनाई पड़ा। कस ने बड़ी मुश्किल से अपना चेहरा प्रसन्न रखा और आसपास दृष्टि

डालकर अपना आसन ग्रहण किया। उसके दाहिनी ओर मेहमान बैठे; बाई ओर वसुदेव, अक्रूर तथा अन्य यादव सरदारों ने आसन ग्रहण किया। प्रद्योत कंस के पीछे बैठा; उसके बगल में और वसुदेव के ठीक पीछे राजकुमार वृत्रघ्न और मागधी सरदार बैठे। केवल कुछ लोगो को छोड़कर, जिन्हें आनेवाले गम्भीर मुहूर्त की पूर्वसूचना नही थी, सभी के चेहरे गम्भीर थे।

बाहुयुद्ध के क्षेत्र में चाणूर, मुष्टिक और तोषल अपने स्वामी कस के आगमन पर विनयपूर्वक नमस्कार कर रहे थे। प्रत्येक के दोनों ओर उनके बारह पट्टशिष्य खड़े थे। अब ये शिष्य शंखध्वनि कर आज की प्रतियोगिता के आरम्भ की सूचना दे रहे थे। इन मल्लश्रेष्ठों और उनके शिष्यों के अतिरिक्त प्रायः दो सौ मल्ल और भी खड़े थे। उन्होने लंगोटे पहन रखे थे और शरीर पर शाले ओढ़ रखी थी, जिसका अर्थ था कि वे सभी राज्याश्रित मल्ल थे। चाणूर तो मल्लयुद्ध का सम्राट ही माना जाता था, इसलिए उसकी शाल सुनहरी थी।

बाहुयुद्ध का वह स्वर्णकाल था। द्वन्द्वयुद्ध और रणक्षेत्र मे भी बाहुयुद्ध का प्रचुर प्रयोग होता था। आदमी-आदमी के बीच झगड़ों के निराकरण के लिए आदि-काल से मानव बाहुयुद्ध का आश्रय लेता आया है; उसने इसे एक कला के रूप में भी विकसित कर लिया। उस समय श्रेणीबद्ध हथियारों का उपयोग होता था। जन-साधारण लाठी और भाले का उपयोग करते थे, सैनिक तलवार अथवा कटार का उपयोग करते; उच्च कुल के योद्धा गदा, परशु, लोह-चक्र और धनुष का उपयोग करते। युद्ध-कला के स्वामी परशुराम के प्रिय शस्त्र परशु का उपयोग तो इने-गिने लोग ही कर सकते थे। लोह-चक्र के उपयोग के लिए चपल हाथ और तीक्ष्ण दृष्टि की आवश्यकता रहती। धनुष-बाण का युद्ध में उपयोग करने के लिए दीर्घकाल तक शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक था। इन सभी शस्त्रों के किसी समय भी हाथ से नीचे गिर जाने अथवा छीने जाने की सम्भावना रहती। ऐसे अवसर पर बाहुयुद्ध की प्रवीणता ही सुरक्षा के लिए काम आती। इसीलिए इस युग मे सभी लोग न्यूनाधिक प्रमाण में बाहुयुद्ध में कुशलता अवश्य प्राप्त करते थे। राज-दरबारों

और समाज मे भी निष्णात् मल्लों का आदर होता था। राज्य द्वारा बड़ी-बड़ी व्यायामशालाएँ चलाई जाती और यदि कोई राजपुरुष बाहु-युद्ध मे श्रेष्ठता प्राप्त न करता, तो रणक्षेत्र मे उसके लिए अपनी प्राण-रक्षा करना कठिन हो जाता। कोई भी उत्सव बाहुयुद्ध की प्रतियोगिता के बिना सूना लगता। इस प्रकार बाहुयुद्ध के प्रति जनता मे प्रबल आकर्षण था।

रणक्षेत्र के अतिरिक्त, अन्य स्थानों पर होनेवाले बाहुयुद्धो में शास्त्रों द्वारा निश्चित नियम निर्धारित थे। ऐसे बाहुयुद्धो मे थोड़ी देर के लिए 'चित' हो जानेवाले प्रतिस्पर्धी को हारा हुआ मान लिया जाता और उसे फिर से नही ललकारा जा सकता था। ऐसे युद्धों में प्रतिस्पर्धी की हत्या तो शास्त्रों द्वारा सर्वथा निषिद्ध थी।

भेरी बज उठी, शंखनाद हुआ और चाणूर द्वारा सकेत दिए जाने पर सभी प्रतिस्पर्धी जोड़ियो ने अपने-अपने शाल उतारकर अनुचरो को दे दिए और स्पर्धा के लिए तैयार हो गए। चाणूर के हाथ ऊँचा करते ही प्रतियोगिता प्रारम्भ हो गई। तत्काल ही वातावरण गम्भीर हो गया। मल्लों ने एक-दूसरे को गिराने में अपना-अपना कमाल दिखाना शुरू किया। दावपेंच चलने लगे। किसी अच्छी जोड़ी की भिड़न्त होने पर लोगों में भारी उत्तेजना फैल जाती।

अन्त में विजयी प्रतिस्पर्धियों को पराजितों से अलग किया गया। एक ओर विजेता खड़े थे, दूसरी ओर परास्त मल्ल खड़े हो गए। अब चाणूर, मुष्टिक और तोषल बाहर निकले। दोनो के आगे-पीछे दो-दो शिष्य शंख फूंकते हुए चल रहे थे। चाणूर ऊँचे डील-डौल का था। गोल, सफाचट खोपड़ी और बड़ी तोंद वाली उसकी विशाल काया को देखते हुए डर लगता था। उसके स्नायु मांसल थे; वह चलता तो उसके एक-एक अंग मे से सौष्ठव झलकता था।

चाणूर प्रसन्न मुद्रा के साथ, एक के बाद एक शामियाने के पास खड़ा होकर विशेष अतिथियों के लिए सुरक्षित स्पर्धाओं के लिए प्रतिद्वन्द्वियो को ललकार रहा था। वृन्दावन के ग्वाले जहाँ बैंठे थे, उस शामियाने के पास वह रुका। आगे सुन्दर वस्त्रो मे सज्जित कृष्ण और बलराम

बैठे थे। उन्हें देखकर वह हँसा।

'नन्दराज, ये आपके पुत्र हैं ?' चाणूर ने नन्द से पूछा, 'राजपुत्रों जैसे दीखते है। ये प्रतियोगिता मे भाग क्यो नही लेते ?'

'नही, ये प्रतियोगिता में भाग नही लेगे,' नन्द ने कहा, 'ये तुम्हारी तरह प्रवीण नही; आखिर हम तो गाँववासी ही ठहरे !'

जब चाणूर इन दो भाइयों के सामने आकर ठहरा, तब प्रत्येक उपस्थित व्यक्ति की दृष्टि उस ओर उठी। सभी यह जानने के लिए उत्सुक थे कि अब क्या होगा ? नन्द के पुत्रों से प्रभावित व्यक्ति तो इन किशोरो की बाहुयुद्ध-कला की एक झाँकी देखने को उत्सुक थे। दूसरी ओर किसी भी प्रकार के सम्भावित छल-कपट के प्रति सशकित यादव सरदारों को चाणूर की यह चेष्टा कुत्सित जान पड़ी।

ग्रामवासियो के शामियाने के पीछे महल की अटारी पर यादव सरदारों के कुल की स्त्रियाँ खड़ी थीं, जिनमे से देवकी तो चाणूर को अपने पुत्रो के साथ बातचीत करते देखकर बहुत विचलित हो गई। दीवार का सहारा लेकर उसने किसी तरह अपने को सम्हाला। 'मेरे प्रभु, मेरे प्राणप्रिय कृष्ण···' इस प्रकार स्वगत कुछ बड़बड़ाते हुए उसने अपनी आँखे मूँद ली। फिर किसी तरह अपने को सम्हालकर देखने लगी कि नीचे क्या हो रहा है ?

'अपने बूढे बाप की बात क्यो सुन रहे हो ?' चाणूर ने कृष्ण-बलराम से कहा, 'मैंने तो सुना है कि तुम दोनो कुशल खिलाड़ी हो। तुम्हारे असाधारण पराक्रमो की बात भी लोगों की जबान पर सदा रहती है।' चाणूर के शब्दो में उपहास की स्पष्ट ध्वनि सुनाई पड़ रही थी। कृष्ण और बलराम चुप रहे।

'मैदान में आओ और अपना जौहर दिखाओ, छोकरो !' चाणूर ने ललकारा और अपनी जाँघ पर हाथ पटका। उसके एक शिष्य ने शखनाद किया। शखध्वनि और चाणूर के हाथ पटकने की आवाज सुनकर प्रत्येक यादव का हृदय फडक उठा। एक मात्र कस ही जानता था कि अब क्या होगा। उसके हाथ मूँछो पर फिर रहे थे और होंठों पर एक सहज मुस्कान थिरक रही थी।

चाणूर के उपहास-भरे शब्द सुनकर बलराम खौल उठा। नन्द की ओर देखकर उसने आज्ञा माँगी, परन्तु नन्द तो स्तब्ध ही बन गए थे।

'इस प्रकार मूर्ख की तरह पिता के सामने क्या देख रहा है?' चाणूर ने इतनी ऊँची आवाज मे कहा कि सारी सभा को सुनाई पड़े, और फिर कृष्ण की ओर देखकर अपमानसूचक स्वर मे प्रश्न किया, 'तुझे लड़ना नहीं आता?'

'तेरे साथ!' कृष्ण ने प्रतिप्रश्न किया। कृष्ण के शब्दों मे भी यथेष्ट उपहास था। 'मैं तो अभी बहुत छोटा हूँ।'

चाणूर की ललकार को स्वीकार करना प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया था, परन्तु कृष्ण को चाणूर के इरादे की खबर पड़ गई थी और वह जहाँ तक अति आवश्यक न हो जाए, वहाँ तक इस चुनौती को स्वीकार करने की इच्छा नही रखता था।

'चल-चल, नन्दकिशोर!' चाणूर ने कहा, 'इस बूढे के पास तुझे कुछ ऐसे दाँव-पेच सीखने को मिलेंगे, जो जीवन मे कभी नही भुलाए जा सकते।' चाणूर ने फिर एक बार चुनौती दी और जाँघ पर हाथ पटका। कृष्ण ने मस्तक हिलाया। चाणूर कृष्ण को बाहर खीच लाने के लिए आगे बढा।

'नही, नही, नही!' अक्रूर पुकार उठे। उन्होंने खड़े होकर कंस की तरफ देखा और कहा, 'चाणूर इस बालक के साथ बाहुयुद्ध नही कर सकता।'

यादव सरदारों ने इस विरोध का समर्थन किया। वसुदेव शान्त होकर चारों ओर देख रहे थे, परन्तु उनके हृदय मे तो आशा और आशका के बीच एक भयकर द्वन्द्व चल रहा था। चाणूर के खूनी दॉव-पेच से वह अपरिचित नहीं थे। चाणूर जब किसी के साथ गम्भीर रूप मे बाहुयुद्ध करता, तब वह खेल के नियमों का उल्लंघन नही करता था, परन्तु अपनी विशाल और दीर्घ काया का भार प्रतिस्पर्धी पर इस प्रकार डाल देता कि या तो उसका दम घुट जाता अथवा उसकी हड्डी-पसलियाँ टूट जातीं।

यादव स्त्रियाँ भी 'नही, नही, नहीं···' की पुकार मचा रही थी। परन्तु, शामियाने में जो गाँववासी उपस्थित थे, उन्होंने तो आज सबेरे

'जय कृष्ण, जय नन्दकिशोर' का जो जयसूत्र उच्चारित किया था, वह फिर उनके कण्ठों से फूट पड़ा। उनको लगा कि बाहुयुद्ध के सम्राट चाणूर ने अपने साथ लड़ने के लिए जब कृष्ण को पसन्द किया है तो यह तो गौरव का ही विषय है। अब बाहुयुद्ध अच्छी तरह जमेगा।

कृष्ण ने चाणूर की आँखों मे निर्भयता से झाँककर मुस्कराते हुए फिर मस्तक हिलाया।

'मेरे साथ लड़ने मे डर लगता है, दोस्त!' चाणूर ने मजाक में पूछा।

अक्रूर ने कस की ओर देखा। चाणूर की चेष्टा से कंस के चेहरे पर जो प्रसन्नता छा रही थी, उसे स्पष्ट देखा जा सकता था।

'अन्धकराज, यह तो घोर अन्याय है! बाहुयुद्ध की प्रणाली भंग हो रही है।' अक्रूर ने कहा।

कंस ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

'नही, नही, नही···!' यादव सरदार फिर से पुकार उठे।

'क्यों, डर लगता है?' चाणूर ने फिर से अपमान-भरे स्वर में पूछा।

'मेरे पिता की आज्ञा नही।'

'आज्ञा कैसे दे?' चाणूर ने कहा। 'वह जानता है कि तू तो केवल गोपियो के साथ रासलीला ही रच सकता है; सच है न!'

'हाँ मुझे रास रचाना आता है!' कृष्ण ने कहा। वह खड़ा हो गया और नन्द के सामने हाथ जोड़कर ऊँची आवाज़ मे बोल उठा, 'पिताजी अब मुझे नही रोके।'

कृष्ण ने निडरता से मस्तक ऊँचा उठाया, शिरस्त्राण, धोती और शाल अपने मित्र उद्धव के हाथ में सौंप दिए। केवल लंगोट मे खड़ा यह किशोर लावण्य और रूप में कामदेव को भी पराजित करे, इतना सुन्दर लग रहा था।

'चाणूर, मै तैयार हूँ,' उसने कहा।

चाणूर के खूनी इरादों से अपरिचित प्रजा जन 'जय-जय' पुकार उठे।

३७

भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई

बलराम क्रोध से काँपने लगा। चाणूर ने जब उसे ललकारा, तभी वह शायद उससे लड़ने के लिए तैयार हो जाता; किन्तु जब उचित समय और संयोग देखकर ही आगे बढ़ना होता, तब वह अपने छोटे भाई की पहल की प्रतीक्षा करता। कृष्ण का सकेत न मिले, तब तक वह स्वय कभी कोई काम पहले नही करता। कृष्ण ने जब चाणूर की चुनौती स्वीकार कर ली, तब भारी डीलडौल और सुपुष्ट देहवाला मुष्टिक बलराम के पास आया।

'क्यो, तेरा क्या विचार है, छोकरे ? तू क्यों हिचकिचा रहा है ? अथवा तू भी छोकरी ही है ?' बलराम के पास आकर उसने कहा।

बलराम की आँखों से अगारे बरसने लगे। कृष्ण ने चाणूर के साथ लड़ने की जब तत्परता दिखाई तो बलराम को फिर रोकने वाला कौन था ? उसने तो शिरस्त्राण, धोती इत्यादि भी खोलने की जरूरत नही समझी। वह तत्काल खड़ा हो गया और उसका सुपुष्ट दाहिना हाथ एकाएक मुष्टिक पर एक ऐसा प्रबल प्रहार कर बैठा कि जिससे मुष्टिक लड़खडा गया और गिरते-गिरते बचा।

क्षण-भर में बलराम अखाड़े में उतर आया और मुष्टिक के स्वस्थ होते ही उस पर बाघ की तरह टूट पड़ा। दोनों भयकर रूप से एक-दूसरे से गुँथ गए और ज़मीन पर गिर पडे। प्रेक्षक साँस रोककर इस बाहुयुद्ध को निहारने लगे। कई तो उत्तेजित होकर खड़े भी हो गए। जब भी मुष्टिक नीचे गिरता, तभी हजारों कण्ठों से हर्षध्वनि गूँज उठती।

कृष्ण भी अब अखाड़े मे उतर आया था। उसकी तीक्ष्ण दृष्टि ने अपने सामने खड़े विशालकाय प्रतिद्वन्द्वी की सुपुष्ट देह, दीर्घ बाहु और चंचल नेत्रों को माप लिया। फिर, अपनी भुजाओं और जाँघ पर हाथ पटककर जैसे ही चाणूर उसकी तरफ बढ़ा कि धीरे-धीरे राजपुरुषों के

लिए सुरक्षित शामियाने की ओर कृष्ण सरकने लगा। वह इस महामल्ल की देह और उसके आगे बढते कदमों को भली प्रकार तौल रहा था। चाणूर की आँख और गति मे भूखे अजगर की-सी मोहिनी थी, जो अपने प्रतिस्पर्धी को जड़वत् कर देती। परन्तु कृष्ण ने देखा कि चाणूर की वास्तविक शक्ति तो उसकी भारी देह और मासल स्नायुओं में थी। इसी का उपयोग प्रतिस्पर्धी अपने लाभ के लिए भी कर सकता था। तब कृष्ण के मन में एक नया विचार उत्पन्न हुआ। चाणूर का बायाँ पैर धरती पर धीरे पड़ता था, किसी अकस्मात् के कारण वह पैर जमीन पर अच्छी तरह टिक नही सकता था।

कृष्ण धीरे-धीरे चाणूर को राजपुरुषो के लिए सुरक्षित शामियाने की ओर ले जा रहा था। ऊपर से देखने में तो वह चाणूर के चगुल मे फँसता दीख रहा था; परन्तु वास्तव मे वह प्रत्येक बार चाणूर के प्रहार से बच निकलता था। अब वह कस के ठीक सामने पहुँच गया था। कृष्ण की चपल गति के साथ-साथ आगे बढने में चाणूर का दम फूल गया था। उसने कृष्ण को मात्र एक बालक ही समझा था और कभी सोचा भी नहीं था कि कृष्ण उसकी पकड़ में से इस खूबी के साथ निकल जाएगा। उसने दृढता से अपने होंठ भीचे और नज़दीक आकर अपनी दोनों बाहुओं में कृष्ण को जकड़ने का प्रयत्न करने लगा।

· कृष्ण बड़ी सफाई के साथ चाणूर की पकड़ से निकल गया और मौका मिलते ही उसके बाये पैर पर प्रहार किया। कृष्ण का अनुमान ठीक निकला। उसका वह पैर निर्बल था। अचानक प्रहार होने पर वह अपना सन्तुलन खो बैठा और उसकी भारी देह लगभग धराशायी हो गई; परन्तु अपनी शक्तिशाली बाहुओ की सहायता से वह गिरते-गिरते बचा।

इस महाकाय और दुःसह मल्ल को खड़े होने में तकलीफ हो रही थी। उसके इस प्रयत्न को देखकर समस्त समुदाय मे हास्य की लहर फूट पडी। आज तक अनन्य माने जानेवाले बाहुयुद्ध के इस सम्राट् को प्रतीति हुई कि लोगो की नजर में वह हास्यास्पद हो गया है। उसका क्रोध भड़क उठा। दूसरी ओर उसका सुकोमल प्रतिस्पर्धी उतना ही स्वस्थ

और प्रसन्न था और अपने सन्तुलित पैरो पर कूद रहा था। साधुवाद के नादो ने दोनों प्रतिस्पर्धियो का ध्यान विचलित किया और दोनो कुछ क्षण रुककर एक-दूसरे की ओर ताकने लगे। चारो ओर तालियो की गडगड़ाहट सुनाई पड़ रही थी। बलराम ने भी मुष्टिक को इतने जोर से धरती पर पटका कि उसकी खोपडी टूट गई। अखाड़े में वह बेहोश होकर पड़ा था। उसकी नाक में से रक्त बह रहा था।

चाणूर इससे उत्तेजित हो उठा; परन्तु कृष्ण बिलकुल स्वस्थ था। एक-दूसरे के सामने आकर वे फिर गुँथ गए। भयंकर द्वन्द्व शुरू हुआ। दोनो तरह-तरह के दाव-पेंच आजमा रहे थे और प्रतिपक्षी के दाव को विफल बना रहे थे। चाणूर को अपने भारी शरीर और दीर्घ अनुभव का सहारा था। परन्तु कृष्ण भी वृन्दावन में बाहुयुद्ध लड़ चुका था और उसके तमाम दाव-पेचो से परिचित था। इसलिए वह चाणूर के प्रत्येक दाव को निष्फल कर देता था। चाणूर के हाथ लम्बे थे तो कृष्ण की देह चपल थी। चाणूर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए अधीर हो उठा था। परन्तु कृष्ण उतना ही शान्त और धीर था।

चाणूर को जान पडा कि वह प्राय· थक चुका है, जबकि कृष्ण में थकावट का कोई चिह्न नही दिखाई पड़ता था। इसलिए उसनें अपनी मुष्टि का प्रयोग करने का निश्चय किया। उसका मुष्टि-प्रहार कभी खाली नही जाता था। जब भी उससे अपनी जीत की शका होने लगती, तभी वह मुष्टि-युद्ध पर उतर आता था। अपने लम्बे हाथों मे वह प्रतिस्पर्धी को जकड़कर और सारा ज़ोर लगाकर एक सबल मुष्टि-प्रहार से उसे ज़मीन पर पटक देता और फिर अपनी देह का सारा वजन उस पर डाल-कर उसकी हड्डी-पसलियाँ तोड़ देता, अथवा उसका दम घोटकर बेभान कर देता। इस शस्त्र का किसी के पास प्रतिकार न था। कई बार तो प्रतिस्पर्धी को इसमें अपनी जान भी गँवानी पड़ती। ऊपर से देखने पर तो यह मृत्यु आकस्मिक ही जान पड़ती, क्योकि बाहुयुद्ध के किसी भी नियम का भग इसमें नही होता था।

चाणूर ने यही दाँव आजमाया। वह कृष्ण पर पूरे बल के साथ टूट पड़ा। कृष्ण लड़खड़ा गया और धराशायी होने को ही था कि असाधारण

समय-सूचकता के साथ उसने अपना सन्तुलन प्राप्त कर लिया और चाणूर के हाथ को अपनी समग्र शक्ति से मोड़ना शुरू कर दिया। दोनों साथ ही ज़मीन पर गिर पड़े; परन्तु चाणूर कृष्ण के ऊपर गिर पड़ने के अपने प्रयत्न में निष्फल रहा। उसका प्रतिस्पर्धी असामान्य चपलता से सरक गया। चाणूर हताश होकर क्रोध से पागल बन गया। उसका अचूक माना जाने वाला दाँव भी निष्फल गया। अपनी पकड़ से कृष्ण को बच निकलते देखकर उसकी हत्यारी वृत्ति जाग उठी; अपने स्वामी की आज्ञा उसे याद आई। उसके दोनों हाथ कृष्ण के गले को टीपने के लिए लालायित हो उठे।

कृष्ण ने पहले से ही समझ लिया था कि ऐसा कुछ होगा। चाणूर उसके गले को जकड़ सके, इसके पहले ही वह खिसक गया और उसने कहा, 'धिक्-धिक् चाणूर !' प्रेक्षकों ने भी चाणूर को धिक्कारना शुरू किया और चारो ओर से 'धिक्-धिक्' की आवाजे आने लगी।

चाणूर के हाथ हवा में ही फैलकर रह गए। अन्त में वह ज़मीन पर हाथ टेककर खड़ा हुआ। रक्त-पिपासु दृष्टि से उसने कृष्ण की ओर देखा और आगे बढ़ा। कृष्ण अगल-बगल, आगे-पीछे खिसककर उसे खूब छका रहा था। वह चाणूर के हाथ का स्पर्श कर उसकी पकड़ में से छूट जाता और बगल में कूद पड़ता। चाणूर अब थक गया था। अपने कुशल प्रतिद्वन्द्वी के सामने और अधिक लडने की सामर्थ्य उसमें नही रह गई थी। उसकी दृष्टि भी अब क्षीण होने लगी थी। एकाएक चाणूर सँभले, इसके पहले ही कृष्ण चीते की-सी चपलता के साथ टूट पड़ा और उसे धराशायी कर दिया। बिजली के गिरने से जैसे कोई विशाल वृक्ष गिर पड़ता है, उसी तरह यह महामल्ल जमीन पर निढाल हो गया। फिर भी कृष्ण ने चाणूर पर की अपनी पकड़ को ढीला नही किया। वह उसकी छाती पर चढ बैठा। चारो ओर से सुनाई पड़ने वाली तालियों की गड़गड़ाहट की ओर ध्यान दिए बिना कृष्ण ने चाणूर की रक्तपिपासु आँखों की ओर देखकर कहा, 'चाणूर, हार मान ले; बचने का केवल यही रास्ता है।'

इसके उत्तर मे चाणूर ने अचानक कृष्ण को अपनी देह पर से फेंक देने का प्रयत्न किया, परन्तु कृष्ण ने चाणूर का मस्तक मज़बूती के साथ

ज़मीन पर दबा रखा था, इसलिए लाख कोशिश करने पर भी चाणूर अपने प्रयत्न में सफल नहीं हो सका। उसकी शक्ति क्षीण होने लगी। मस्तक ऊँचा करने के व्यर्थ प्रयत्नों के परिणामस्वरूप उसकी आँखो के स्नायुओं पर सूजन आ गई थी। चाणूर ने एक बार और प्रयास किया। उसने कृष्ण के गले को फिर से पकड़ने का प्रयास किया। चाणूर का इरादा कृष्ण से छिपा नही था। अब और उसकी तरफ़ दया दिखाने का कोई कारण नही रह गया था। उसने चाणूर का मस्तक छोड़कर उसकी नाक पर मुष्टि-प्रहार किया और उसकी आँख, मुँह और नाक पर भी घूंसे मारे। चाणूर की नाक टूट गई, उसके दाँत उखड़ गए, उसकी आँखे निस्तेज हो गई और नाक तथा मुँह से खून बहने लगा। वह बेहोश हो गया और उसका सारा चेहरा लहू-लुहान हो गया।

चारों ओर से 'साधु, साधु' की पुकार मच गई। यादवगण उत्साहित हो उठे और अपने-अपने स्थान से दौड़कर कृष्ण को अभिनन्दन देने लगे। घटनाएँ बड़ी तीव्र गति से घट रही थीं। कृष्ण ने कंस पर एक नज़र डाली। उसने देखा कि जब से चाणूर बेहोश हुआ, तब से कस हिंस्र-पशु की तरह दाँत पीस रहा है। फिर कंस अपने आसन पर से उठा, हाथ मे तलवार ली और शामियाने से बाहर जाने के लिए आगे बढ़ा ही था कि अक्रूर ने आकर उसका रास्ता रोका।

उसी क्षण एक मागधी सरदार ने कृष्ण के पिता वसुदेव के ऊपर तलवार का वार किया। वसुदेव भी अक्रूर के साथ ही खड़े हो गए थे। परन्तु मागधी सरदार प्रहार करे, इससे पहले ही सरदार प्रद्योत ने उसे धराशायी कर दिया। राज्य के अतिथि भी अपने-अपने आसन पर से उठ खड़े हुए और आवश्यकता होने पर प्राण-रक्षा के लिए अपने हाथों मे शस्त्र सँभालने लगे।

तभी कृष्ण ने राजाओं के लिए सुरक्षित शामियाने में भारी कोलाहल सुना। यादव सरदार अपने-अपने शस्त्र निकाल रहे थे। मागधी सरदारों ने उन पर अचानक हमला कर दिया था। यह सब एक साथ घटित हुआ। फिर भी कृष्ण ने सारी परिस्थिति को अच्छी तरह समझ लिया। मृत्यु के नज़दीक पहुँचे चाणूर को छोड़कर उसने एक डग आगे

अत्याचारी कंस की मृत देह पर खड़ा है और विजय का शखनाद फूंक रहा है।

आनन्द की प्रचण्ड लहरे चारों ओर से उठने लगी। सभी लोग इस तारणहार की ओर दौड़े। कृष्ण ने तलवार फेक दी और वहाँ गया, जहाँ हलधर से रक्षित वसुदेव खड़े थे। उसने अपने पिता को साष्टांग दण्डवत कर प्रणाम किया और नम्र भाव से कहा, 'पिताजी, आपके आशीर्वाद की याचना करना हूँ।' वसुदेव का कण्ठ अवरुद्ध हो गया। उन्होने अपने पुत्र को उठाया और हृदय से लगा लिया। अब उनके लिए आँसू रोकना असम्भव हो गया था। जिस पुत्र की उन्होने इतने समय से राह देखी थी, उसके कन्धे पर मस्तक डालकर वह फफक पड़े।

आकाशवाणी सत्य सिद्ध हुई।